राजनैतिक माला—नं० ३।

श्रीमान् गोखले के व्याख्यान।

हिन्दी संस्करण।

सादी १)
जिल्ददार १॥)

प्रथम संस्करण
१९१७

भारत सेवक-समिति,
प्रयाग।

अभ्युदय प्रेस, प्रयाग, मे
पद्मीप्रसाद पाण्डेय द्वारा मुद्रित।

भारतवर्ष के लिए स्वराज्य।

(दूसरा संस्करण।)

लेखक--मान० श्रीमान् श्रीनिवास शास्त्री,

अध्यक्ष, भारत-सेवक-समिति।

एक महीने के भीतर पहिला संस्करण बिक गया।
पृष्ठ संख्या १२५, दाम छ आना।

विषय सूची।

भारत का दावा—कुछ तुलनार्थ—योग्यता—स्कीम—आपत्तियां—क्या अंगरेज लोग शक्ति को छोड़ना पसन्द करेंगे—समाप्ति—परिशिष्ट।

मान० डाक्टर तेज बहादुर सप्रू—यदि आपने इस पुस्तक को अभी तक नहीं पढ़ा तो तुरन्त मंगाकर पढ़िये।

"लीडर," प्रयाग—पुस्तक अनोखी है। इसकी युक्तियों का जवाब कोई एंग्लो इंडियन पत्र आज तक नहीं दे सका। विषय की विवेचना परम प्रशंसनीय है।

"अभ्युदय," प्रयाग—इसकी जितनी प्रशंसा की जाय वह थोड़ी है। इतनी उत्तम पुस्तक इतने कम दामों पर हमें नहीं मालम और कहां मिल सकती है। सभी समालोचकों ने मुक्त कंठ से इसकी प्रशंसा की है।

—भारत सेवक-समिति,
प्रयाग।

लखनऊ कांग्रेस में स्वराज्य।

(दूसरा संस्करण)

पिछली कांग्रेस में स्वराज्य पर

श्रीमान् सुरेन्द्रनाथ बैनर्जी,
मान० पं० मदनमोहन मालवीय, श्रीमती एनी बेसंट,
श्रीमान् बाल गंगाधर तिलक, श्रीमती सरोजनी नायडू,
श्रीमान् विपिनचन्द्र पाल, श्रीमान् मजहरुल हक,
सर दिनशा पेटिट, मान० तेजबहादुर सप्रू,
आदि के व्याख्यान।

"प्रताप", कानपुर—पुस्तक में लखनऊ की कांग्रेस में स्वराज्य के प्रस्ताव पर दिये गये बड़े बड़े विद्वानों और देश की उज्ज्वल मूर्तियों के व्याख्यानों का संग्रह है। पुस्तक स्वराज्य प्राप्ति की जबरदस्त और अकाट्य दलीलों और स्वराज्यवादियों के मुखालिफों को दिये गये मुंहतोड़ उत्तरों से भरी पड़ी है। अन्त में माननीय मालवीय जी का वह सारगर्भित, मर्मस्पर्शी व्याख्यान भी पुस्तक में जोड़ दिया गया है जो उन्होंने सभापति को धन्यवाद देते हुए कांग्रेस के अन्तिम दिन दिया था। दाम, चार आना।

भारत-सेवक-समिति,
प्रयाग।

विषय-सूची।

—०—

तीसरा भाग--शिक्षा-सम्बंधी।

चौथा भाग--फुटकर।

पुस्तक सिवन्त में पेज नं० १७ से ३२ उलटे छप गया है पाठक महाशय उपर्युक्त सूची के अनुसार उसे ५२ से ६७ तक सुधार कर पढ़ने की कृपा करें।

भूमिका।



भारत सेवक-समिति प्रयाग, श्रीमान गोखले के व्याख्यानों के हिन्दी संस्करण के प्रकाशन से अपने को कृतकृत्य समझती है, और उसे आशा है कि श्रीमान् गोखले के व्याख्यान हिन्दी-साहित्य के राजनैतिक अंग की पूर्ति विशेष रूप से करेंगे। ये व्याख्यान कितने निर्भीक, गम्भीर, और महत्व पूर्ण है। इस पर कुछ कहने की हमें आवश्यकता नहीं। वास्तव में वे भारतवर्ष की उच्चतम आकांक्षाओं और हमारी वर्तमान राजनैतिक स्थिति को अपूर्व रूप से चित्रित करते हैं। हमें आशा है कि पाठक इनका बारबार ध्यानपूर्वक पाठ और मनन करेंगे।

अनुवाद के विषय में हम केवल इतना ही कहना है कि वह स्वतन्त्र है। भाव पर न कि भाषा पर विशेष ध्यान दिया गया है। और हिन्दी साहित्य की वर्तमान अवस्था को देखते हुए हमारी सम्मति में इसी नियम का पालन अधिकतर उपयोगी है। दूसरे अनुवाद एक ही लेखनी का फल नहीं है। कई मित्रों ने श्रीमान् गोखले की स्मृति पर प्रेमाञ्जलि को अर्पित करने की इच्छा से प्रेरित होकर अनुवाद किया है। १९०२ और १९०६ की बजट वाली स्पीचों को बाबू गोपाल नारायण सेन सिंह, बी० ए०, ने, राजविद्रोही कानून, बंगाल और बंगाली, सुधार के प्रस्ताव तथा विद्यार्थी और राजनीति को "सत्य शोधक" जी ने, औरंगाबाद (गया) के बाबू

असौरी कृष्ण प्रकाश सिंह ने "अवनत जातियों का सुधार", "हम लोगों की राजनैतिक स्थिति" और 'भारत के प्रति इङ्गलैंड का कर्त्तव्य" को, और बाबू केदारनाथ गुप्त ने "दादाभाई नौरोजी, "रानाडे," "सर फीरोजशाह मेहता" और फरगुसन कालेज से विदाई को अनुवादित किया। शेष व्याख्यानों के अधिकाश का अनुवाद एक अन्य सज्जन ने किया है। प्रूफ देखने मे प० भगवानदीन पाठक ने विशेष रूप से सहायता दी है। इस परम उदार सहायता के लिए समिति सब सज्जनों को हार्दिक धन्यवाद देती है। बिना इनकी सहायता के पुस्तक इतनी जल्दी कदापि न निकल सकती।

भारत सेवक समिति
प्रयाग, १२ ६ १९१७

वेङ्कटेशनारायण तिवारी।



गोपालकृष्ण गोखले

गोपाल कृष्ण गोखले ।

[गोपाल कृष्ण गोखले का जन्म मई, १८६६, में हुआ। अठारह वर्ष की उम्र में बी० ए० पास कर, वे १८८५ में दक्षिण शिक्षा सम्बन्धी समिति के आजन्म सभासद हुए। सार्वजनिक सभा, पूने, के मंत्री और उसके मुखपत्र के सार्वजनिक त्रैमासिक पत्रिका के सम्पादक १८८६ से १८९६ तक रहे। १८९७ में वेल्बी कमीशन के सामने साक्षी देने के लिए वे इंगलैण्ड गये। दो वर्ष तक बम्बई की प्रान्तिक व्यवस्थापक कौंसिल के सदस्य रहने के बाद, १९०१ में इम्पीरियल कौंसिल के मेम्बर चुने गये, और मृत्यु के समय तक इस कौंसिल में वे बम्बई के प्रतिनिधि रहे। १९०५ में कांग्रेस के काशी वाले अधिवेशन के सभापति हुए। १९०५, १९०६, १९०७, १९०८, १९१० और १९११ १४ में वे किसी न किसी राष्ट्रीय काम से इंगलैंड गये और मार्ले मिन्टो के रिफार्म्स के निर्णय में उन्होंने बहुत भाग लिया। १९०५ में भारत सेवक समिति की संस्थापना हुई। १९१२ से १९१५ तक वे पब्लिक सर्विसेज कमीशन के मेम्बर थे। १९१२ में वे दक्षिण अफ्रिका गये और वहां के प्रवासी हिन्दुस्तानियों की स्थिति के सुधारने में बहुत बड़ा भाग लिया, १९ फरवरी, १९१५ में उनकी जीवन लीला का संवरण हुआ।]

फरवरी १६,१६१५, को गोपाल कृष्ण गोखले के स्वर्गवास पर, प्रयाग के "लीडर" ने भाग्य के मर्म भेदी आघात से कातर होकर लिखा था कि इस तीस कोटि के भारत में गोखले को यम से बचाने के लिए हम और किसी भारतवासी का विछोह सहर्ष सह लेते। यद्यपि यह कथन ताजे घाव का कारुणिक क्रन्दन था, परन्तु आज भी जब उनको संसार छोड़े दो वर्ष से अधिक हो गये हैं वह अक्षरशः सत्य है। उनकी असामयिक मृत्यु ने सारे देश को ऐसा रुलाया जैसा आज तक हम कभी न रोये थे, और उनकी मृत्यु ने यह चरितार्थ कर दिखाया जो उनका जीवन दावे के साथ उद्घोषित करता था कि हम भारतीय एक जाति हैं, और एक राष्ट्र हो सकते हैं। वह इस संसार से उठ गये, परन्तु हमारे देश के दुर्भाग्य से आज कोई सावित्री भारतवर्ष में नहीं है जो यम के पाश से उनके मृतक शरीर को छुड़ा लाती। अब हमारे लिए सिर्फ उनके जीवन का उज्ज्वल उदाहरण बाकी है, और उनके शिक्षा पूर्ण उपदेश इस समय पर भी उतने ही महत्व पूर्ण हैं जितने वे उस समय थे जब वे उनके मुख से स्वदेश प्रेम की ज्वाला से तपते हुए पहिले पहले निकले थे। उनका नाम भारतीय इतिहास में सदा इसलिए जीवित रहेगा कि एक साधारण घराने का बालक भारतवर्ष के लिए कैसे जी और मर सकता है। यह सत्य है कि वे हिन्दुस्तान को पराधीनता से स्वराज्य के उच्च शिखर तक न पहुंचा सके। लेकिन इसमें न कमी उनकी समय की, और यद्यपि उनको उत्थान के उषा का स्वागत देखना न बदा था परन्तु मृत्यु के समय पर उनको यह विश्वास हो गया था कि निशीथ निशा शीघ्र ही स्वर्णमय प्रभात में विकसित हो जायगी।

जैसा वे प्राय कहा करते थे, उनको और उनके सहयोगियो को पराजय ही के पथ पर चलना पड़ा था, उनके उत्तराधिकारियो का यह सौभाग्य होगा कि वे देश सेवा में विजय लाभ करें। आजन्म उन्होंने इसी आशा से काम किया कि उनके चले जाने के बाद देशभक्तों का मार्ग सुलभ हो। गोखले अब हम लोगों के साथ नहीं हैं, परन्तु जब तक हिन्दुस्तान में निष्काम सेवा का आदर है और देशभक्ति का मान है, तब तक भारतवासी उनके नाम पर कृतज्ञता के सुरभित पुष्पों की अंजलि निरन्तर चढ़ाते रहेंगे।

प्रभाव का रहस्य।

भारतवर्ष के ऊपर उनके इस अद्भुत और अद्वितीय प्रभाव का क्या रहस्य था? जन्म से एक किन्तु व्यक्तिगत विशिष्टता से हमारे हृदयों के राजा, हिन्दुस्तान के आधुनिक इतिहास में कोई दूसरा भारतवासी ऐसा नहीं हुआ है जिसकी मृत्यु से लोग वर्ण, जाति और मत के भेद को शोक में भूल कर वैसे ही रोवें जैसा कोई अपने प्रिय के वियोग में कातर हो उठे। और न केवल यह दशा किसी एक ही प्रान्त की थी। जितना उनका आदर लोग बम्बई में करते थे, उस से कुछ भी कम मान उनका संयुक्त प्रान्त या मद्रास में न था। जनता उन में भारतीयता की मूर्ति को पूजती थी, और उनके जीवन में भारतीय इतिहास के उन प्रशंसित आदर्शों का सजीव संचार था, जिनके सामने भारतवासी सदा से सिर झुकाते चले आये हैं। उनमें मानसिक प्रौढ़ता का, नैतिक उत्कृष्टता का वैसा ही सम्बन्ध था जैसा मालती में सौन्दर्य और सुरभि। पर यह ठीक है कि उनकी सी मानसिक शक्तियां किसी देश और

काल में दुर्लभ हैं ; लेकिन उनसे अधिक प्रतिभाशाली मनुष्य हुए और होंगे, और वीरप्रसूता भारत भूमि के गर्भ से इस अवनत अवस्था में भी ऐसे मनीषी नरपुंगव पैदा होते जाते हैं जो इस बात में उनसे कहीं चढ़े बढ़े हैं। गोखले—इस ऐतिहासिक नाम के पहले प्रशंसासूचक शब्द का प्रयोग नितान्त धृष्टता है—अपनी वाणी के जादू से वे कौंसिल और जनता दोनों ही पर विचित्र प्रभाव डालते थे, और क्या कांग्रेस में, और क्या कौंसिल में, लोग उनकी मधुर और गम्भीर शब्दावली से मोहित होकर चित्रित हो जाते थे, लेकिन हिन्दुस्तान के बोलनेवालों में उनकी गणना प्रथम न थी। इसमें सन्देह नहीं कि गोखले सरस्वती के बड़े भक्त थे और उनका पाण्डित्य उतना ही विस्तृत था जितनी उसमें गम्भीरता थी। पाश्चात्य साहित्य का उन्हें उतना ही उत्तम ज्ञान था, जितनी भारतीय साहित्य की उन्हें प्रौढ़ अभिज्ञता थी। किन्तु इसमें भी सन्देह नहीं कि हिन्दुस्तान में उनसे बढ़कर पण्डित हुए हैं। राजनैतिक क्षेत्र में भी वे अद्वितीय नहीं कहे जा सकते हैं। उन्हों ने देश के बालकों की शिक्षा में अपने जीवन के बहुत बड़े भाग को समर्पित कर दिया था, लेकिन यह कौन कह [illegible] है कि उन से [illegible] आचार्य भारत में नहीं। इनमें [illegible] एक भी विशेषता [illegible] काफी थी कि वे भारत के [illegible] में से होते, इन सब विशेषताओं का एक ही व्यक्ति [illegible] योग उनके अतुल [illegible]। उनकी अपार [illegible] कि जो [illegible] होती थी और [illegible], और जिस की [illegible] आयु की गति के साथ मन्द होने के सिवाय दिन पर दिन अधिक तेजोमयी होती जाती थी, उनका निष्काम सेवा का व्रत और किशोरावस्था ही में देश हित के लिए

भीष्म के समान दरिद्रता का पाणिग्रहण, उनकी उच्चकोटि की मानसिक विशिष्टता, उनका निर्मल और अकलंकित जीवन, उनकी पारस्परिक व्यवहार में सत्यता, निश्छलता और स्वार्थ विस्मृति, उनकी विरोधियो के प्रति निष्पक्षता, और उदारता, अपने मित्रों में उनकी श्रद्धा और विश्वास, तथा उनकी भारतीयता जो न जन्म और न धर्म के बन्धनो से परिमित थी, ये उस प्रेम और विश्वास के कारण थे, जो हिन्दू और मुसलमानो को उनकी ओर विशेष रूप से खींचते थे। जिनका उनके साथ घनिष्ठ सम्बन्ध रहा है उनको मालूम है कि भूलकर भी क्षुद्र विचार और सकीर्ण भाव उनके पास तक न फटकने पाते थे। उनके प्रेरक भाव सदा उच्च और शुद्ध होते थे। घड़ी भर के लिए स्वार्थ के उत्तेजक उद्देश से वे कर्त्तव्य पथ से विचलित नहीं हुए। न एक पल भी अपने हित के लिए उन्होंने दिया, अपना सारा जीवन देश सेवा की पुनीत वेदी पर अर्पण कर दिया था। वे भारत ही के लिए जीते थे, और भारत ही के लिए उन्होंने मृत्यु का असामयिक स्पर्श किया। जो भारतवर्ष के मित्र थे ही उनके भी मित्र थे और भारत का शत्रु, चाहे जितना बड़ा आदमी वह क्यों न हो, उनकी दृष्टि में कभी सम्मान का पात्र न था। जिसको माता से प्यार था वही उन्हें भी प्यारा था, और जो उनकी पूज्य भगवती का आदर करना न जानता था उसके साथ उनका कुछ सम्बन्ध न था। भारत के लिए उन्होंने उनसे मित्रता की, जिनकी मित्रता से माता के उद्धार में सहायता की आशा थी। और वही उनका शत्रु था जो भारत की उन्नति का विरोधी था, और ऐसे व्यक्ति को शक्तिहीन करने के लिए वे निर्भीकता और उस कुशलता से, जो उनमें

ही थी, वे सदा कटिबद्ध थे। भारत और भारतवासियों के लिए वे जिये और मरे, भारतवासियों ने भी कृतज्ञता का अनमोल प्रेमोपहार जीवन में और उनके मृत्यु होने पर उनके ऊपर समर्पित किया। वे कुसमय में मरे किन्तु उनका नाम और उनके जीवन का उदाहरण इस बात का साक्षी है कि भारत जननी आज भी उसी प्रकार वीर प्रसूता बनी है। जैसी वह तब थी जब उसके सुपूतों की कीर्ति दुन्दुभि का उत्तेजक निनाद संसार के गर्भ गुहरों तक में प्रतिध्वनित होता था।

उनका स्वदेश-प्रेम।

ऐसे महापुरुष के चरित्र का चित्रण योग्य से योग्य लेखनी के लिए बहुत ही कठिन कार्य है। फिर, अभी हम सब उनके समय के इतने निकट हैं कि निष्पक्ष आलोचना करना प्रायः असम्भव है। इन पंक्तियों के लेखक में जहां इस कार्य के सम्पादन की ओर बहुत सी बातों की कमी है वहां उनसे उसका समीप सम्बन्ध विशेष रूप से इस काम का ठीक ढंग से करने के लिए उसके मार्ग में बाधक है। किन्तु इस चित्रण का उद्देश उनके विचारों और नीति के अन्तिम परिणामों का विवेचन नहीं है। और उनके आदर्शों तथा प्रेरक अभिप्रायों को जानने के उन्हीं को विशेष अवसर मिल सकते हैं। जिन्हें उनके चरणों में बैठकर उपदेश पाने का सौभाग्य प्राप्त था। यदि विवेक द्वारा चरित्र के समझने का प्रयत्न किया जाय तो समीपवर्ती को इस ओर साधारण लेखक से अधिक सफलता हो सकती है।

गोखले से मिलने पर उनके गुणों में से जो सब से अधिक प्रभाव दर्शक के हृदय पर डालता था वह उनकी देशभक्ति

थी। देश का प्राचीन गौरव, उसकी वर्तमान शोचनीय दशा, उसके इतिहास की ज्वलन्त घटनायें और भाग्य के पलटे, भविष्य के लिए आशायें और आशंकायें, आपस की फूट और विदेशी शासन की—यद्यपि वे इगलैंड और भारत के सम्बन्ध को विधि की कृपामयी लीलाओं में गिनते थे—लज्जा और अपमान, सोते और जागते उनकी आखों के सामने नाचा करती थी। वे उस वीर महाराष्ट्र में उत्पन्न हुए थे, जिस के स्वाधीन राष्ट्र के पूर्ण अधिकार का नाश थोडे ही वर्ष पूर्व हुआ था। इसलिए पराधीनता की सुनहली जजीर उन्हें उन अन्य प्रान्तवालों से अधिक खलती थी, जो बहुत पहिले अपनी स्वाधीनता को खो चुके हैं। उनमें जातीय अभिमान कूट कूट कर भरा था। मृदंग के खिचे हुए तारो की तरह, उनकी प्रकृति छोटी से छोटी घटना के अगुलि स्पर्श से प्रभावित होती थी। उनके स्वदेशानुराग की ज्वाला की लपट दिन प्रति दिन बढती ही जाती थी, और उसकी पावन अग्नि में उन्होंने "अहम्" को सर्वथा जला दिया था। वे चाहते थे कि ससार की सभ्य जातियो में भारत का वही उच्च स्थान भविष्य में हो जो हमारा पहिले था। अपने देश वासियो की उच्च से उच्च आशाओं और आकाक्षाओं मे उन्हें पूर्ण विश्वास था, और यद्यपि वे उनकी कमजोरियो को भली भाति जानते थे और इसीलिए अपनी नीति के निर्धारण में वास्तविक स्थिति को सदा दृष्टिगोचर रखते थे परन्तु वे यह भी समझते थे कि संसार भारत के बिना दीन रहेगा और मनुष्य जाति के इतिहास के भावी अध्यायों में जो घटनायें भारतीय राष्ट्रीयता की कीर्ति लेखनी से लिखी जायंगी, उन्हें कोई अन्य जाति लिखने में समर्थ न

होगी। उनके गुरु रानाडे का यह दृढ विश्वास था कि इस देश के निवासी संसार की जातियों में विशेष प्रकार से "खुदा के बन्दे हैं" गोखले का भी यही दृढ विश्वास था। इस समय जब चारों ओर स्वराज्य की आकाशभेदी वाणी से सोती हुई जाति अपने ईश्वरीय भाग्य के महत्त्व के प्रति धीरे धीरे जाग रही है, हमारे बहुत से एंग्लो इन्डियन मित्र गोखले का नाम लेकर रो रहे हैं, "हाय! वे न हुए, नहीं तो ऐसे उद्दण्ड प्रस्ताव कांग्रेसवाले न उठाते!" लेकिन ब्रिटिश मंत्रिमंडल के शिक्षा-सचिव, मिस्टर हरबर्ट फिशर को जो भारतीय पब्लिक कमीशन के एक मेम्बर थे, ऐसी भ्रान्ति कदापि न थी। गोखले की मृत्यु पर उन्हों ने लंडन के प्रसिद्ध साप्ताहिक "नेशन" में उनके विषय में प्रशंसात्मक लेख लिखा था, जिसमें उन्हों ने कहा है कि बहस के लिए गोखले यह मान लेते थे कि भारत में उन्नति की गति मन्द होनी चाहिए, और सुधार धीरे धीरे ही हो सकते हैं, परन्तु उनके हृदय में यह भाव सदा दृढ रहता था कि भारत अपने भाग्य के पूर्ण विकास के लिए इस समय पर भी पूरी तरह से तैयार है और वे इस आशा में रहते थे कि जापान के समान भारत में भी अचानक ज्योति फैल जाय। जो उनके पास रहते थे वे जानते हैं कि यदि किसी भी कारण से ब्रिटिश शासन भारत से उठ जाय तो उस अवस्था में गोखले को दृढ निश्चय और विश्वास था कि उनके देशवासी शासन के भार को लेंगे। वे कहते थे कि "हम लोगों ने एक प्रकार से अंगरेजी सल्तनत को मंजूर कर लिया है। इस लिए जहां धर्म्म हमें उसका विरोध करने से रोकता है वहां उस शासन पर इसका अनिवार्य दायित्व है कि वह हमें साम्राज्य में अपरिमित और

स्वतंत्र उन्नति और विकास के समान अवसर दे। किसी अन्य विदेशीय राष्ट्र की पराधीनता की आशंका मात्र उनको अचिन्त्य और असह्य थी। शब्द नहीं मिल सकते, जिन के द्वारा उस भीषण क्रोध, और तिरस्कार का वर्णन किया जाय जो उनके चेहरे पर इस सम्बन्ध में दिखाई देते थे। साम्राज्य में स्वाधीन भारत उनका आदर्श था।

जहां उनको अपने देश के उज्ज्वल भविष्य में विश्वास था वहां वे परिस्थिति के महत्व को भी न भूलते थे। यदि उनके नेत्र आदर्श के स्वर्ण शिखर को रात दिन एकटक देखते रहते थे तो साथ ही वे आदर्श की सीमा और उस तक पहुंचने के परिमित साधनों को भी अच्छी तरह से जानते थे। वह समझते थे कि सच्ची उन्नति का नाम वृद्धि है, विकार नहीं—राष्ट्र सजीव है, मृतक पदार्थ नहीं। स्थायी उन्नति क्रम क्रम से होती है। वे इतिहास के अर्थ को अच्छी तरह से अनुभव करते थे कि जैसे बालक पैदा होते ही यौवन का अधिकारी नहीं, वैसे ही जादू से अचानक जाति पूर्ण राष्ट्रीय जीवन को नहीं प्राप्त कर सकती है। यदि भारतीयता का अद्भुत मंदिर संसार में सर्वाङ्ग सुन्दर बनेगा तो तभी जब उसकी नींव रेत पर नहीं किन्तु चट्टान पर रक्खी जाय। और इसके लिए कि नींव चिरस्थायी और सबल हो, यह आवश्यक है कि वह जड ही विस्तृत और मजबूत पत्थरों की बनाई जाय। इस व्यापक दृष्टि से—और यह उनकी देश भक्ति की एक विशेषता थी,— हिन्दुस्तान उनके लिए अंगरेजी पढे लिखे लोगों का मुल्क न था। उनका भारत महलों में न था किन्तु साधारण झोंपड़ों में। वे साधारण व्यक्ति की उन्नति से, इने गिने भाग्यशाली आदमियो की तरक्की से, जाति की उन्नति को नहीं जाचते थे।

यद्यपि उन्होंने फरगुसन कालेज के कमरों में अपने अठारह वर्ष विताये परन्तु उनको जितनी फिक्र प्रारम्भिक शिक्षा को मुफ्त और लाजिमी बनाने की थी उतनी किसी दूसरी बात की न थी। और इसके दोहराने की कोई आवश्यकता नहीं है कि यदि आज लोकमत इस विषय के विश्वव्यापी महत्व और उसकी निरन्तर आवश्यकता को अनुभव करने लगा है तो यह उन्हीं के प्रचण्ड उद्योग का फल है। अछूत जातियो के सुधार पर भी वे इसी भाव से ज़ोर देते थे। स्त्री शिक्षा केवल इसीलिए आवश्यक नहीं कि स्त्रियां उपन्यास पढ सकें या मञ्च से व्याख्यान दें, परन्तु इसलिए कि वे जाति के पथ मे अवरोधक न हों, वे जाति का सच्ची और सुयोग्य मातायें बनें, जिससे भावी सन्तान राष्ट्र की सेना मे योग्य स्थान ले सके। इसीलिए यद्यपि जन्म और संस्कारों से वे हिन्दू थे और हिन्दुत्व की छाप उनके प्रत्येक गुण विशेष पर दिखाई देती थी, किन्तु सार्वजनिक क्षेत्र में और प्रश्न के विवेचन में वे भारतीय पहलू ही पर ज़ोर देते थे। उनके लिए भारतीय जातीयता एक स्वप्न न थी, उनके जीवन में वह साकार और सजीव दिखाई देती थी। विरले ही राजनैतिक नेता ऐसे आज दिन भारत मे मिलेंगे, जो इस आदर्श को अपने जीवन का मूल सिद्धान्त मानकर लोक सेवा करते हैं। एक बड़ी सुन्दर उपमा द्वारा वह वर्तमान स्थिति का वर्णन किया करते थे। वे कहते थे कि भारत की दशा एक त्रिकोण के समान है, जिसकी दो भुजायें मिलकर तीसरी भुजा से बड़ी होती हैं। भारत में उसी तरह तीन प्रधान शक्तियो का संघर्ष है; हिन्दू, मुसलमान और एंग्लो इण्डियन। इनमें से कोई दो मिलकर तीसरे को दबा सकते हैं। इसीलिए वे हिन्दू और मुसलमानो

में मेल की परमावश्यकता को अपने जीवन के उच्च आदर्शों में गिनते थे। एक बार श्रीमती सरोजनी नायडू से उनकी बातें हो रही थी। हिन्दू मुसलमानों के मेल की भी बात छिड़ गई। श्रीमती सरोजनी ने कहा कि पांच साल के भीतर दोनों दल मिल जायगे। इस पर गोखले ने कहा कि यदि तुम्हारे और मेरे जीवन काल में भी ऐसा होना सम्भव हो तो देश बड़ भागी होगा। साल ही भर बाद लखनऊ में लीग का जलसा हुआ और श्रीमती नायडू भी उस में पधारी थी, इसी अधिवेशन में पहिलेपहल लीग ने भारत में स्वराज्य के आदर्श को स्वीकृत किया था। इस सन्देशे को लेकर जब श्रीमती सरोजनी पूने में उनसे मिली उस समय वे बीमारी से बहुत कमजोर हो गये थे। परन्तु इस समाचार ने उनको इतना प्रफुल्ल और उत्सुक बना दिया था कि वे खुशी में व्यक्ति के क्लेशों को बिलकुल भूल गये, और श्रीमती से बार बार यह पूछते थे कि क्या यह समाचार सत्य है और क्या मुसलमान फिर पलट न जायगे। उनके आश्वासन दिलाने पर लीग के सम्बन्ध में छोटी से छोटी बात को कई दफा उन्हों ने उन से पूछा। उसी शाम को श्रीमती सरोजनी उन से फिर मिलने को गई, और जब गोखले उनके साथ पुस्तकालय में जाने के लिए सीढियों पर चढने लगे तो श्रीमती नायडू ने उन से कहा कि आप इतने बीमार हैं, सीढियों पर क्यों चढ रहे हैं। गोखले ने कहा, "आप ने आज मुझे जो समाचार सुनाया है, उसने मुझ में नई जाने डालदी है और जीवन सग्राम में फिर से तलवार उठाने की शक्ति मुझ में आ गई।" ऐसे ही जब दक्षिण अफ्रिका में निष्क्रिय प्रतिरोध शुरू हो गया था और वहां की सरकार के उग्र आचरण से कर्मवीर गांधी के जेल

आने की आशंका थी, गोखले को रातों दिन चैन नही पडता था। वे प्रवासी भारतवासियों के विदेश में अनादर के राष्ट्रीय अपमान को सह नहीं सकते थे। उन दिनों में गोखले दिल्ली में थे। एक रात को लगभग दो बजे उनके कमरे में टहलने की आहट उनके एक प्रिय शिष्य को सुनाई पडी। उठकर शिष्य ने उनके कमरे में झाक कर देखा कि वे टहल रहे हैं। उस समय गोखले का स्वास्थ्य बहुत खराब था। बीमारी में इतनी व्यग्रता और प्रयास से हानि पर जोर देने और सोने के लिए आग्रह करने पर उन्होंने कहा, "दक्षिण अफ्रिका में हिन्दुस्तानी इतनी यातनाएं भाग रहे हैं और गाधी जेल जाने को हैं। यह कैसे सम्भव है कि मैं शान्ति से बैठू।" पब्लिक सर्विस कमीशन के सामने गाखले को दिन प्रतिदिन एग्लो इडियन गवाहियो के हिन्दुस्तानियो पर अयोग्यता के लाछनों को सुनने से जो अपार क्लेश होता था उसका वर्णन कठिन है। और इसमें सन्देह नहीं कि उनके स्वास्थ्य पर इसका बहुत बडा असर पडा। इतना अधिक दु ख उनको और किसी बात से न होता था। जितना भारत की निन्दा सुनने से। और कमीशन के दिनों में वे प्राय कहा करते थे कि इन गवाहों के अपमानजनक बयान सुनते सुनते मेरे खून सूखता जाता है। एक बार उनके एक मित्र ने साग्रह उनसे स्वास्थ्य का अधिक ध्यान रखने के लिए कहा। उत्तर में गोखले ने कहा कि मरना तो एक दिन है ही किन्तु भारत की दशा को देख कर चुप बैठना मेरे लिए असम्भव है। मैं चाहता हू कि जब तक मेरे शरीर में श्वास है तब तक एक पल भी ऐसा न बीते जो माता की सेवा में न लगा सकू।" उनके लिए मृत्यु उस जीवन से कहीं अधिक

प्रिय थी, जिसका एक निमिष मात्र भी भारत के चरणों में न समर्पित हो। श्रीमती सरोजनी नायडू के शब्दों में, मातृभूमि उनकी स्वामिनी और माता, हृदय की पूज्य देवी और प्रिय तम पुत्री थी। उनके लिए इससे बढ़कर कोई दूसरा सुख नहीं था कि भारत का विभव बढ़े। उनके जीवन की एकमात्र यही लालसा थी कि अपना हृदय, तन, मन और धन उन्हीं के लिए श्रीचरणों में श्रद्धा के साथ अर्पण करें। इसके सामने उनके दूसरे सामान या सुख, विभव या कीर्ति, अपमान या पराजय सब क्षुद्र थे वह भारत के सेवक थे, और संसार में इससे बढ़कर किसी भारतवासी के लिए अधिक क्या कहा जा सकता है।

उनका आत्मसमर्पण और त्याग।

उनकी देश में तल्लीनता साधारण आदमियो के स्वदेशानुराग की तरह मजाक या छुट्टी के समय दिल बहलाने की बात न थी। वह यह जानते थे कि जैसे भारत के प्राचीन इतिहास में ईश्वर की खोज में ध्रुव ने और सत्यवान की रक्षा में यम का पीछा करती हुई सावित्री ने संसार और जीवन को तिलाञ्जलि दे दी, वैसे ही आधुनिक समय में ध्रुव का त्याग, सावित्री की लगन प्रह्लाद का आत्मसमर्पण और लक्ष्मण की कार्यक्षमता देश रक्षा के लिए आवश्यक हैं। तप और त्याग हमारे जातीय इतिहास में सबसे अधिक प्रशंसित है और प्राचीन भारत की गरिमा के निर्माता पूज्य ऋषि और मुनि प्रकृति को जीतने के लिए इन्हीं साधनों का आश्रय लेते थे। जो अब भारत के उद्धार का बीड़ा उठाते हैं उनको भी "मैं" की बलि देने के लिए तैयार रहना चाहिये। गोखले ने

जाने की आशंका थी, गोखले को रातों दिन चैन नहीं पडता था। वे प्रवासी भारतवासियों के विदेश में अनादर के राष्ट्रीय अपमान को सह नहीं सकते थे। उन दिनों में गोखले दिल्ली में थे। एक रात को लगभग दो बजे उनके कमरे में टहलने की आहट उनके एक प्रिय शिष्य को सुनाई पडी। उठकर शिष्य ने उनके कमरे में झांक कर देखा कि वे टहल रहे हैं। उस समय गोखले का स्वास्थ्य बहुत खराब था। बीमारी में इतनी व्यग्रता और प्रयास से हानि पर जोर देने और सोने के लिए आग्रह करने पर उन्होंने कहा, "दक्षिण अफ्रिका में हिन्दुस्तानी इतनी यातनाएं भाग रहे हैं और गाधी जेल जाते को हैं। यह कैसे सम्भव है कि मैं शान्ति से बैठूं।" पब्लिक सर्विस कमीशन के सामने गोखले को दिन प्रदिन एंग्लो इडियन गवाहियों के हिन्दुस्तानियों पर अयोग्यता के लाछनों को सुनने से जो अपार क्लेश होता था उसका वर्णन कठिन है। और इसमें सन्देह नहीं कि उनके स्वास्थ्य पर इसका बहुत बडा असर पडा। इतना अधिक दुःख उनको और किसी बात से न होता था। जितना भारत की निन्दा सुनने से। और कमीशन के दिनों में वे प्राय कहा करते थे कि इन गवाहों के अपमानजनक बयान सुनते सुनते मेरे खून सूखता जाता है। एक बार उनके एक मित्र ने साग्रह उनसे स्वास्थ्य का अधिक ध्यान रखने के लिए कहा। उत्तर में गोखले ने कहा कि मरना तो एक दिन है ही किन्तु भारत की दशा को देख कर चुप बैठना मेरे लिए असम्भव है। मैं चाहता हूं कि जब तक मेरे शरीर में श्वास है तब तक एक पल भी ऐसा न बीते जो माता की सेवा में न लगा सकूं।" उनके लिए मृत्यु उस जीवन से कहीं अधिक

प्रिय थी, जिसका एक निमिष मात्र भी भारत के चरणों में न समर्पित हो। श्रीमती सरोजनी नायडू के शब्दों में, मातृभूमि उनकी स्वामिनी और माता, हृदय की पूज्य देवी और प्रिय तम पुत्री थी। उनके लिए इससे बढ़कर कोई दूसरा सुख नहीं था कि भारत का विभव बढ़े। उनके जीवन की एकमात्र यही लालसा थी कि अपना हृदय, तन, मन और धन उसी के लिए श्रीचरणों में श्रद्धा के साथ अर्पण करें। इसके सामने उनको दूसरे सामान या सुख, विभव या कीर्ति, अपमान या पराजय सब क्षुद्र थे वह भारत के सेवक थे, और संसार में इससे बढ़कर किसी भारतवासी के लिए अधिक क्या कहा जा सकता है।

उनका आत्मसमर्पण और त्याग।

उनकी देश में तल्लीनता साधारण आदमियो के स्वदेशा नुराग की तरह मजाक या छुट्टी के समय दिल बहलाने की बात न थी। वह यह जानते थे कि जैसे भारत के प्राचीन इतिहास में ईश्वर की खोज में ध्रुव ने और सत्यवान की रक्षा में यम का पीछा करती हुई सावित्री ने संसार और जीवन को तिलाञ्जलि दे दी, वैसे ही आधुनिक समय में ध्रुव का त्याग, सावित्री की लगन प्रह्लाद का आत्मसमर्पण और लक्ष्मण की कार्यक्षमता देश भक्त के लिए आवश्यक हैं। तप और त्याग हमारे जातीय इतिहास में सबसे अधिक प्रशंसित है और प्राचीन भारत की गरिमा के निर्माता पूज्य ऋषि और मुनि प्रकृति को जीतने के लिए इन्हीं साधनो का आश्रय लेते थे। जो अब भारत के उत्थान का बीड़ा उठाते हैं उनको भी "मैं" की बलि देने के लिए तैयार रहना चाहिये। गोखले ने

त्याग और तप से इस पवित्र काम में आत्म समर्पण किया। अठारह वर्ष की उम्र में, जब आमा रंजित भविष्य उनको आदर से स्वार्थ साधन के पथ पर चलने को प्रोत्साहित कर रहा था, गोखले ने फरगुसन कालेज में नाममात्र के वेतन पर बीस वर्ष तक सेवा का कठिन व्रत धारण किया और उस समय मरणान्त तक वे उसी धर्म का अनुसरण करते चले गये। यदि वे चाहते तो विपुल धन के स्वामी होते। उनको कई रियासतों की दीवानी स्वीकार करने को दी गई। भारत-सचिव की कौंसिल में प्रथम भारतीय मेम्बर होने का गौरव उनको मिल सकता था। वाइसराय की कार्य कारिणी कौंसिल में वे आसानी से जा सकते थे परन्तु उनके सामने ये सब तुच्छ थी। इसी भाव से उन्होंने के० सी० आई० ई० की उच्च पदवी को भी विनम्रता के साथ अस्वीकार किया, यद्यपि इस देश के अनेक सज्जन इन सम्मानों को, पाने के लिए अपनी आत्मा को शैतान के हाथ बेचने तक को उत्सुक रहते हैं। वह गरीब ही पैदा हुए थे, और गरीब ही वे मरे-पर जो स्थान उनका आज भारतीय इतिहास है वह पर राजे महाराजों तक को प्राप्त है? फिर, संसार के सभी देशों में सार्वजनिक नेता अपने नाम के लिए जमीन आसमान के कुलाबे एक करने को तैयार रहते हैं। और वे इसकी सिद्धि में सार्वजनिक कार्यों तक को तहस नहस कर देश के विद्रोही बन जाते हैं। गोखले में यह कमजोरी कदापि न थी। १९१२ में जब उनका देश में स्थान बहुत ऊंचा था, गोखले प्रारम्भिक शिक्षा बिल के पक्ष में लोक मत को जाग्रत करने का प्रबल प्रयत्न कर रहे थे, सर फीरोज शाह मेहता उसके खिलाफ थे, और आर यदि गोखले चाहते

तो बम्बई में जैसे अन्य प्रान्तों में, एक प्रभावशाली समिति बन सकती थी। किन्तु मेहता को वे अपना नेता मानते थे, और इसी भाव से प्रेरित होकर उन्होंने खुलकर उसका विरोध न किया और बम्बई में लीग न बनी। नेता के प्रति अनुयायी का जो धर्म्म है उसका उन्हें सदा ध्यान रहता था। और इस देश में जहां लोग नेता के सेहरा को अपने हाथों से अपने सिर पर बांधा करते हैं, और स्वार्थ से नेताओं को अपदस्थ करने की नीयत से दूसरों की टोपी उतारने ही में सारा जीवन खतम कर देते हैं, गोखले का उज्ज्वल उदाहरण अनुकरणीय है। गोखले ने रानाडे के चरणों में जो शिक्षा पाई थी उसमें सबसे अनमोल यह थी कि सार्वजनिक कामों में व्यक्तित्व का विचार कदापि न करना चाहिये। सन् १८६७ में गोखले के ऊपर अत्यन्त अनुचित और अनुदार आक्रमण पार्लामेन्ट के कई मेम्बरों ने किये थे। उन्हों ने इन आक्रमणों का समाचार रानाडे के मकान पर पढ़ा था वह इतने व्यथित हुए कि क्रोध से बरामदे में जाकर टहलने लगे। रानाडे को जब इसका पता लगा तब उन्हों ने उन से इसका कारण पूछा। बात जानने पर उन्हों ने कहा "गोपाल राव, इसे भूल जाओ और इन आक्रमणों का उत्तर देना तुम्हारे लिए उचित नहीं।" जब तक उन्हों ने गोखले से इसका वचन न ले लिया कि वे उत्तर न देंगे तब तक उन्हें अपने पास से उठने न दिया। इसी शिक्षा का यह फल था कि गोखले ने अपने सार्वजनिक जीवन में व्यक्तिगत अपवादों और आक्रमणों का उत्तर नहा दिया। उनके व्याख्यानों में व्यक्तिगत आक्षेपों की बू तक न मिलेगी।

त्याग और तप से इस पवित्र काम में आत्म समर्पण किया। अठारह वर्ष की उम्र में, जब आशा रंजित भविष्य उनको आदर से स्वार्थ साधन के पथ पर चलने को प्रोत्साहित कर रहा था, गोखले ने फरगुसन कालेज में नाममात्र के वेतन पर बीस वर्ष तक सेवा का कठिन व्रत धारण किया और उस समय मरणान्त तक वे उसी धर्म का अनुसरण करते चले गये। यदि वे चाहते तो विपुल धन के स्वामी होते। उनको कई रियासतों की दीवानी स्वीकार करने को दी गई। भारत सचिव की कौंसिल में प्रथम भारतीय मेम्बर होने का गौरव उनको मिल सकता था। वाइसराय की कार्य कारिणी कौंसिल में वे आसानी से जा सकते थे परन्तु उनके सामने ये सब तुच्छ थीं। इसी भाव से उन्होंने के० सी० आई० ई० की उच्च पदवी को भी विनम्रता के साथ अस्वीकार किया, यद्यपि इस देश के अनेक सज्जन इन सम्मानों को, पाने के लिए अपनी आत्मा को शैतान के हाथ बेचने तक को उत्सुक रहते हैं। वह गरीब ही पैदा हुए थे, और गरीब ही वे मरे-पर जो स्थान उनका आज भारतीय इतिहास है वह पर राजे महाराजों तक को प्राप्त है? फिर, संसार के सभी देशों में सार्वजनिक नेता अपने नाम के लिए जमीन आसमान के कुलावे एक करने को तैयार रहते हैं। और वे इसकी सिद्धि में सार्वजनिक कार्यों तक को तहस नहस कर देश के विद्रोही बन जाते हैं। गोखले में यह कमजोरी कदापि न थी। १९१२ में जब उनका देश में स्थान बहुत ऊंचा था, गोखले प्रारम्भिक शिक्षा बिल के पक्ष में लोक मत को जाग्रत करने का प्रबल प्रयत्न कर रहे थे, सर फीरोज शाह मेहता उसके खिलाफ थे; और अगर यदि गोखले चाहते

तो बम्बई में जैसे अन्य प्रान्तों में, एक प्रभावशाली समिति बन सकती थी। किन्तु मेहता को वे अपना नेता मानते थे, और इसी भाव से प्रेरित होकर उन्होंने खुलकर उनका विरोध न किया और बम्बई में लीग न बनी। नेता के प्रति अनुयायी का जो धर्म है उसका उन्हें सदा ध्यान रहता था। और इस देश में जहां लोग नेता के सेहरा को अपने हाथों से अपने सिर पर बांधा करते हैं, और स्वार्थ से नेताओं को अपदस्थ करने की नीयत से दूसरों की टोपी उतारने ही में सारा जीवन खत्म कर देते हैं, गोखले का उज्ज्वल उदाहरण अनुकरणीय है। गोखले ने रानाडे के चरणों में जो शिक्षा पाई थी उसमें सबसे अनमोल यह थी कि सार्वजनिक कामों में व्यक्तित्व का विचार कदापि न करना चाहिये। सन् १८६७ में गोखले के ऊपर अत्यन्त अनुचित और अनुदार आक्रमण पार्लामेन्ट के कई मेम्बरों ने किये थे। उन्हों ने इन आक्रमणों का समाचार रानाडे के मकान पर पढ़ा था वह इतने व्यथित हुए कि क्रोध से बरामदे में जाकर टहलने लगे। रानाडे को जब इसका पता लगा तब उन्हों ने उन से इसका कारण पूछा। बात जानने पर उन्हों ने कहा "गोपाल राव, इसे भूल जाओ और इन आक्रमणों का उत्तर देना तुम्हारे लिए उचित नहीं।" जब तक उन्हों ने गोखले से इसका वचन न ले लिया कि वे उत्तर न देंगे तब तक उन्हें अपने पास से उठने न दिया। इसी शिक्षा का यह फल था कि गोखले ने अपने सार्वजनिक जीवन में व्यक्तिगत अपवादों और आक्रमणों का उत्तर नहीं दिया। उन के व्याख्यानों में व्यक्तिगत आक्षेपों की बू तक न मिलेगी।

कांग्रेस और कौंसिल।

शुरू से ही गोखले कांग्रेस के अनुयायी थे कांग्रेस के सिद्धान्तों में उन्हें पूर्ण विश्वास था, कांग्रेस आन्दोलन के वे एक उज्ज्वल रत्न थे। १६०५ में बनारस की कांग्रेस में सभापति के आसन से उन्हों ने जो व्याख्यान दिया था, वह निर्भीक ओजस्विता का अपूर्व उदाहरण है। जब वह बम्बई की कौंसिल में थे तब उनकी बजट सम्बन्धी स्पीचों से उनका सिक्का जम गया था सन् १६०२ में वाइसराय की कौंसिल में वजटवाली स्पीच से उनका नाम सारे देश में प्रख्यात हो गया, और आर० सी० दत्त ने उसको पढकर यह कहा था कि ये ही भारत के भावी नेता होंगे। १६०४ में "आसिलस् सीक्रेट बिल" पर उनकी जो स्पीच हुई थी उसका जवाब लार्ड कर्जन की अनुपस्थिति में कोई दूसरा सरकारी प्रतिनिधि न दे सका। यह निस्सन्देह है कि भारतीय कौंसिल में इनसे बढकर दूसरा गैर-सरकारी मेम्बर आज तक नहीं गया, और बजट पर बहस उनके उठ जाने के बाद राम के बिना रामायण सी हो गई है। यद्यपि सरकार उनके प्रस्तावों का विरोध करती जाती थी किन्तु अवसर मिलते ही उन्हीं के अनुसार चलने की चेष्टा भी करती थी। और कौंसिल में उनकी अपूर्व सफलता को देखकर उनकी मृत्यु पर लार्ड कर्जन ने कहा था कि संसार की किसी सभा में उनका प्रथम स्थान होता।

लेख बहुत बढ गया है, और विषय के किनारे ही पर लेखनी अभी तक पडी है। इसलिए अधिक न लिखकर उनके जीवन के सम्बन्ध में हम वेही शब्द उद्धृत करते हैं जो

रानाडे के विषय में उन्होंने कहे थे —"रानाडे के प्रति हमारा केवल यही कर्तव्य नहीं है कि हम उनकी मृत्यु पर शोक प्रकट करें। उनके जीवन के संदेश को हम सब को पवित्र और अनुकरणीय समझना चाहिये । जिन सिद्धान्तों की पूर्ति के लिए उन्होंने सारे जीवन परिश्रम किया—सब के लिए विस्तृत स्वाधीनता और मनुष्य के मनुष्यत्व का सार पूर्ण गौरव—वे अन्त में अवश्य ही विजयी होंगे, चाहे जितना अंधकार मय भविष्य समय समय पर क्यों न दिखाई दे। किन्तु हम सब उस विजय के दिवस को शीघ्र लाने का परिश्रम कर सकते हैं, और इसीमें हमारे जीवन का गौरव है —"मातृभमि के लिए काम करो और आत्म त्यागी बनो।"

हमारी यह हार्दिक प्राथना है कि पाठक इन व्याख्यानो को पढ़कर देश की दशा को समझें, उनके उपदेशों का मनन करें और उनके शब्दों से देश सेवा के व्रत का संकल्प करें जिसमें भारतवासी संसार में वही स्थान पायें, जो हमारी प्राचीन सभ्यता और गरिमा के से अधिक उज्ज्वल हो।



"मैं मातृभूमि के लिये अपनी आकांक्षाओं की सीमा को अनन्त और अपरिमेय मानता हूं। मैं स्वदेशवासियों को अपने देश को उसी वेदी पर देखना चाहता हूं जिस पर अन्य देशवासी अपनी भूमि में खड़े हैं। मैं, जातिपांति का कोई भेद नहीं मान, चाहता हूं कि स्वदेशवासी नरनारी अप्रतिरोधित तथा अनियन्त्रित रूप से उन्नति के उच्चतम शिखर को प्राप्त करें। मैं चाहता हूं कि संसार के महान राष्ट्रों के बीच भारतवर्ष भी राजनैतिक, औद्योगिक, धार्मिक साहित्यिक, वैज्ञानिक विषयों में स्पर्धा की वस्तु न रहकर उचित स्थान प्राप्त करे। मैं इन सब बातों की आकांक्षा करता हूं और साथ ही साथ विश्वास भी करता हूं कि मेरी सारी लालसाएं वस्तुतः तथा सारतः इसी प्यारी भूमि में चरितार्थ भी होंगी"।

—गोपाल कृष्ण गोखले।

"मैं मातृभूमि के लिये अपनी आकांक्षाओं की सीमा को अनन्त और अपरिमेय मानता हूं। मैं स्वदेशवासियों को अपने देश को उसी वेदी पर देखना चाहता हूं जिस पर अन्य देशवासी अपनी भूमि में खड़े हैं। मैं, जातिपाति का कोई भेद नहीं मान, चाहता हूं कि स्वदेशवासी नरनारी अप्रतिरोधित तथा अनियन्त्रित रूप से उन्नति के उच्चतम शिखर को प्राप्त करें। मैं चाहता हूं कि संसार के महान राष्ट्रों के बीच भारतवर्ष भी राजनैतिक, औद्योगिक, धार्मिक साहित्यिक, वैज्ञानिक विषयों में स्पर्धा की वस्तु न रहकर उचित स्थान प्राप्त करे। मैं इन सब बातों की आकांक्षा करता हूं और साथ ही साथ विश्वास भी करता हूं कि मेरी सारी लालसाएं वस्तुतः तथा सारत इसी प्यारी भूमि में चरितार्थ भी होंगी"।

—गोपाल कृष्ण गोखले।

प्रथम भाग



आर्थिक

भारतीय बजट ।



(बड़े लाट की व्यवस्थापक सभा में बुधवार २६ मार्च १६०२ को लार्ड कर्जन के सभापतित्व में माननीय मि० गोखले की यह पहली बजट स्पीच हुई)।

श्रीमन् ! मुझे भय है कि मैं उन बधाइयों में जो मा० अर्थ सचिव को पारसाल के वार्षिक हिसाब में एक बड़ी रकम की बचत होने पर दी गई है, सम्मिलित नहीं हो सकता। आज तक सरकारी आय-व्यय के इतिहास में ७ करोड़ की बचत नहीं देखी सुनी गई, विशेषकर जब ऐसी बचते कई साल से होती आती हैं और यह उस अवस्था में जब देश में बराबर दुष्काल रहा है। मेरी समझ में इससे यह साफ झलकता है कि प्रजा की अवस्था से सरकार की आय का कोई सम्बन्ध नहीं है। इसमें सन्देह नहीं कि इस विषय पर जितना मैं सोचता हूँ—मुझे विश्वास है कि मेरे स्पष्ट भाषण के लिए आप क्षमा करेंगे—मेरी यही धारणा होती है कि इस सरकारी बचत से देश को दोहरी हानि पहुँचती है। पहले तो इस बचत का होना ही बुरा है। अर्थाभाव और कष्ट के दिनों में सरकार को जितने धन की जरूरत है उससे अधिक लेना ही बुरा है। दूसरा अनर्थ इससे यह होता है कि उसके आधार पर तरह तरह की मिथ्या भावनाएं उत्पन्न होती हैं। और जो कुछ होता है वह तो होता ही है, साथ ही साथ भारत सचिव के मन में आशाओं की बाढ़ आने लगती है, और वह समझ बैठते हैं कि

इस सर्वश्रेष्ठ देश में जो कुछ भी हो रहा है वह अच्छा ही हो रहा है। थोडी सी जाच से पता लगता है कि यह सरकारी बचत सम्पूर्ण रूप से सिक्के विभाग की बचत है, और उसके होने का कारण यह है कि इस समय भी सरकार उसी परिमाण से कर वसूल कर रही है जिस परिमाण से रुपये के बहुत कम मूल्य पर चलने के समय सरकारी खर्च पूरा करने के लिए आवश्यक होता था। सन् १८६४—६५ में रुपये का सबसे कम मूल्य था। उस वक्त औसत रूप से एक रुपया १३.१ पेन्स को पडता था। रुपये का भाव जब इस प्रकार गिर रहा था उस समय खर्च चलाने के लिये सरकार को बराबर एक बडी रकम से कर की वृद्धि करनी पडी, जिसका फल यह हुआ कि १८६४—६५ मे जब रुपये की लागत बहुत ही थोडी थी, सरकारी आय-व्यय के चिट्ठे मे ७० लाख की बचत दिखाई गई। उस तारीख के आगे सिक्के के इन्तजाम के लिए १८६३ म जो कानून बनाया गया, उससे लाभ दिखाई देने लगा। रुपये का निर्ख सोने के लिहाज से बढता गया। १८६५—६६ म एक रुपये के बदले म १३.६४ पेन्स मिलते थे। उस वर्ष सरकारी बचत डेढ करोड हुई। १८६६—६७ और १८६७-६८ म विनिमय की दर १४.४५ और १५.३ पेन्स रही पर इन दोनों वर्षों में अकाल पडा और उसके दूसरे साल सरहद्दी लडाई में भी बहुत खर्च पडने के कारण सब लगा कर अकाल-पीडितों की रक्षा और फौजी खर्च में पहले साल २.१ करोड और दूसरे साल ६.२ करोड का व्यय हुआ। नतीजा इसका यह हुआ कि १८६६—६७ साल के सरकारी हिसाब में १.७ करोड का और १८६७—६८ में ५.३६ करोड का घाटा हुआ।

। प्रत्यक्ष है कि यदि सरकार को यह असाधारण व्यय न

उठाना पडता तो दोनों ही साल के हिसाब में बचत दिख लाई पडती। विशेष कर १८९७—९८ में अनुमान ४ करोड की बचत होती। सन् १८९८—९९ में करीब करीब रुपये का भाव १६ पेन्स हो गया। और इस तरह उस साल सरहद्दी लडाई के लिये १ करोड रुपया निकालने पर भी २ ९६ करोड की बचत रही। हम लोग जानते हैं कि एक्सचेन्ज की दर में यदि ३ पेन्स की तेजी हुई अर्थात् रुपये का भाव १३ से १६ पेन्स हो गया तो केवल होमचार्ज पर ही भारत सरकार को ४ और ५ करोड के बीच में लाभ होने लगता है। मेरे विचार में तो सरकार की पिछले कई सालों की असामान्य बचत का इसी से पता लग जाता है। नीचे दिये हुये हिसाब से बहुत बातें समझ में आती हैं। आय-व्यय का अन्दाजा भी मिल जाता है, जैसा उसमें रुपये के बढाये हुए निर्ख से अंतर पडता है।

साल	घाटा या बचत	करोड	युद्ध और अकाल के असामान्य व्यय	विशेष कर लेने से बचत	टिप्पणी
१८९७	—५ ३६	„	९ २१	३ ८५	युद्ध और अकाल
१८९८	+ ३ ९६	„	१ ९९	५ ०५	सरहद्दी तैयारी
१८९९–००	+ ४ १६,	„	३ ५	७ ६६	अकाल
१९००–०१	+ २ ५	„	६ ३५	८ ८५	„
१९०१–०२	+ ७	„	१	८	
५ वर्ष का जोड़	१२.२६		२१ १५	३३ ४१	

अगर युद्ध और अकाल के लिये विशेष व्यय न होता तो नये रुपये की दर से देश की आमदनी शासन-व्यय कम से कम ६½ करोड़ प्रति वर्ष अधिक होती। भारतीय सेना के दक्षिण अफ्रीका और चीन देश में चले जाने के कारण जो बचत हुई, इसके अलावा अकाल के कारण जो खर्च हुआ, तथा इसका ध्यान रखते हुए कि अफीम से आमदनी पहले की अपेक्षा बहुत अच्छी हुई यहां तक कि उसके होने की ऐसी आशा न थी और न फिर हो सकती है, इन सबका विचार करते हुए भी हम सरकारी खर्च के ऊपर सरकारी आमदनी की वार्षिक ५ करोड़ रुपये की बचत रखलें तो अनुचित न होगा। इतनी ही बचत सरकार को 'होम चार्ज' पर एक्सचेन्ज का भाव १३ पेन्स से १६ पेन्स चढ़ जाने के कारण और होती है। पिछले १६ साल में सरकारी हिसाब में जब कभी घाटा बैठा है तो अर्थ सचिव ने उसका कारण रुपये के निर्ख का गिरना बताया है, और नये करों के लगाने की आवश्यकता दिखलाते हुए देश को, दिवालिया होने से बचाने का यही उपाय बताया है। सन १८८५-८६ से बाद १२ वर्ष तक, जबसे, सर आकलैंड कालविन ने कौन्सिल में सरकारी हिसाब का सालाना समझौता करते समय कुछ ऐसी बात बताई जो पीछे बिलकुल सत्य निकलीं और कहा कि हमारे काम का ढंग बदल रहा है तथा उस राजकर की नीति पर जिसका सन १८८२ में निर्णय हुआ था, हमें पुनः विचार करना पड़ेगा। उस समय से १८८६-६७ तक बराबर अर्थ-सचिव की यही कोशिश रही है कि सरकारी आय चाहे जैसी हो घटी बढ़ी बनी रहे चाहे आर्थिक स्थिति कितनी भी बदल रही हो। उन्हें सदा यही धुन रहती थी कि वे सब तरह के वास्तविक या काल्पनिक भय और

कष्ट के लिये पहले से तयार रहे। इस प्रकार कोई साल ऐसा नहीं जाता था जब अर्थ विभाग की शासन-नीति में कुछ उलट पुलट न होता हो। सरकारी आमदनी से, अकाल निवारण के लिये, जो धन अलग किया जाता था वह सन १८८६—८७ में ३ साल के लिये रोक दिया गया, पुनः दो साल के लिए कम कर दिया गया और अन्त में एकदम बन्द कर दिया गया। इन १२ वर्षों में दो बार (१८८७ ८८ और १८९२ ९३) राजकर का वह अंश जो प्रान्तीय सरकारों को दिया जाता था कम कर दिया गया और उससे भारतीय सरकार के कोष में पुनः १.० करोड़ की वृद्धि हुई १८८७ ८८ में ६४ लाख और १८९२-९३ में ४२ लाख। इसके अतिरिक्त इसी बीच में तीन बार (१८८६ ८७, १८९० ९१ और १८९४ ९५ में) प्रान्तीय सरकारें भारतीय सरकार के कोष में विशेष चन्दा देने के लिये बाध्य की गईं। पर उस समय के अर्थ कष्ट से बचने का प्रधान उपाय निरन्तर राजकर की वृद्धि करना था। इन १२ सालों में ९ साल बराबर नये कर लगाये गये। सन् १८८६ में इन्कम टेक्स से श्रीगणेश हुआ। फिर धड़ाधड़ सन् १८८७ ८८ (जून १८८८) में नमक के ऊपर कर बढ़ाया गया, मिट्टी के तेल पर कर पटवारियों के लिये महसूल और १८८८-८९ में इन्कम टेक्स का बर्मा तक विस्तार हुआ। विलायती शराब पर महसूल १८८९ ९० में बढ़ा, देशी बिअर पर १८९० ९१ में कर लगा बर्मा में बाहर से आई हुई नमकीन मछली पर १८९२ ९३ में महसूल आरम्भ हुआ, बाहर से आये माल पर कीमत के अनुसार प्रति सैकड़ा पांच की दर से सन १८९३ ९४ में महसूल फिर से लगाया गया पर उसमें सूती कपड़े शामिल नहीं किये गये। वही महसूल १८९४ ९५ में सूती

कपड़ों पर लगा दिया गया। सन १८९६ में महसूल की दर में कुछ रदबदल हुई। ५ सैकड़ा महसूल देशी बने हुए सूत पर से उठा दिया गया। बाहर से आये कपड़ों पर ५ के स्थान में केवल ३ सैकड़ा महसूल रह गया—इससे ५० लाख का नुकसान हुआ। यह नुकसान मैन्चेस्टर के जुलाहों के चिल्लाने पर रियायत करने के कारण हुआ। साथ ही इस देश के कारखानों में तैयार हुए कपड़ों के बाहर जाने पर उनपर ३½ सैकड़ा महसूल बैठाया गया, जिसमें भारतीय सौदागर अनुचित लाभ न उठाने पावें। सबके पीछे १८९९ में उस चीनी पर महसूल लगाया गया जिसे भारत में सस्ता बेचने के लिये विलायत वाले अपने व्यापारियों को आर्थिक सहायता देते थे।

इन सब उपायों से पिछले १६ वर्ष में सब मिलाकर १२ ३० करोड़ वार्षिक विशेष राजकर लिया गया। इसका यहां अन्त न समझिये। इसी बीच में भूमि-कर की भी आपही आप बहुत वृद्धि हुई है। अकेले साधारण लगान ही की वृद्धि २ ८२ करोड़ हुई। इसकी वसूली म पर अचम्भे की बात यह है कि सन १८९६-९७ और १९०१-०२ जब देश में दो घोर दुर्भिक्ष पड़े) में इस वसूली का औसत १७ ४३ मिलिअन पौन्ड रहा जब पिछले ८ वर्षों में १८९०-९१ और १८९५ ९६ तक का औसत १६ ६७ मिलिअन पौन्ड था।

इन दोनों मदों में जो कर की वृद्धि हुई उन्हें जोड़कर देखने से मालूम होता है कि पहले से राजकर अब १५ करोड़ अधिक हो गया है।

इस प्रकार एक कर के ऊपर दूसरे कर को निरन्तर बढाना और दुःखी प्रजा के बोझ को गुरुतर करना कहीं नहीं देखा गया है। भारतवर्ष में १८५७ के विद्रोह के बाद अवश्य कुछ साल तक राजकर में वृद्धि की गई थी पर उस समय थोड़े ही दिनों में देश की बडी अच्छी दशा हो गई थी और बिना किसी कष्ट वा झगड़े के लोगों ने उसका सहन कर लिया था। इधर गत १६ वर्षों में देश की कृषि और उद्योग दोनों ही काम मन्दे पड गये और उसपर भी प्रतिवर्ष इससे बढ बढ कर लगान लिया जा रहा था और इसके लिये बहाना यह था कि इससे आर्थिक अवस्था सुरक्षित रहेगी।

लगातार टेक्स के बढाने का मुख्य परिणाम यह हुआ है कि जितने धन की सरकार को आवश्यकता है उससे कहीं अधिक टेक्स वसूल किया जा रहा है। इसी तरह जबरदस्ती बढाये हुए करों के द्वारा उनकी स्वाभाविक वृद्धि के कारण नहीं—सरकार ने न केवल सब प्रकार के खर्च ही चलाये वरन एक बहुत बडी रकम की बचत कर ली है जिसे देखकर यूरोप के धनाढ्य देशों को भी ईर्षा होती होगी।

केवल सरकारी आय व्यय का हिसाब बराबर करने के लिये नहीं पर क्लेश और विपत्ति के काल में भी एक निरन्तर बढती हुई रकम की बचत करने के लिए टैक्स का बलपूर्वक लेना किसी भी कर प्रणाली की व्यवस्था के अनुकूल नहीं है। पाश्चात्य देशों में असाधारण खर्च कर्ज लेकर चलाया जाता है। ऐसा करने का यह उद्देश्य होता है कि चाहे सरकार को रुपये की कितनी भी जरूरत क्यों न हो पर ऐसा न हो

कि टैक्सों के एकाएक बढ जाने से देश के व्यापार और उद्योग की यथाक्रम उन्नति में कोई बाधा पडने का भय हो। भारतवर्ष में जहा ऐसे प्रश्नों पर अर्थशास्त्र की दृष्टि से कम विचार किया जाता है और जहा किसी मात्रा का व्यय उसी साल की आय से चुकाने की नीति का एक अनुचित सीमा तक पालन किया जाता है, वहा अर्थविभाग के शासकों को केवल इतनी ही चिन्ता नहीं होती कि आपत्ति में और समृद्धि में एकसा निर्वाह हो जाय, वे तो ऊपर से प्रतिवर्ष बडी रकम की बचत भी चाहते हैं, माननीय अर्थसचिव अपने बजट के लेखे में "सैनिक सेवा" शीर्षक में लिखते हैं —

"इसका ध्यान रखना चाहिये कि भारत अपनी मालगुज़ारी से नई युद्ध सामग्रियों का खर्च तथा सैनिक विभाग के कई मुख्य अंगों के सुधार का खर्च सहन कर रहा है। मेरा विश्वास है कि यह काम दूसरे देशों में बिना किसी प्रकार का ऋण लिये नहीं चला है। अतः इङ्गलैड में किलेबन्दी और सिपाहियों के रहने के लिए घर बनवाने का असाधारण सामरिक व्यय ऋण लेकर चलाया गया है जो पीछे से मालगुज़ारी की किस्त में चुकता किया जायगा। यदि वर्तमान शान्ति से लाभ उठाकर यह कठिन कार्य हम बिना कर्ज लिये ही और भारत की भविष्यत् जनता पर स्थायी बोझ डाले बिना सपादन कर सकें तो हम लोग अपने को एक ऐसे कार्य करने के लिए बधाई दे सकेंगे जिसे करने का साहस यूरोप के बडी सम्पत्तिशाली जातियों को भी नहीं हुआ है।"

इस अवतरण के प्रत्येक शब्द पर टिप्पणी हो सकती है। यह तो पूछिये कि जिस काम के लिये यूरोप वालों को साहस

ठीक नहीं हुआ, उसे भारत ने किस तरह कर दिखलाया। इसका स्पष्ट उत्तर तो यह है कि उन देशों में कर का संग्रह और उसके व्यय करने का भार वहां की प्रतिनिधि सभाओं के हाथ में है। भारतवर्ष में कर देने वालों को इन बातों के निर्णय में कोई कानूनी अधिकार नहीं है। यदि हम लोगों की कोई राय ली जाती और देश का शासन भिन्न २ दो दलों के द्वारा सञ्चालित होता और वे दोनों दल हम लोगों को प्रसन्न रखने और हमारी सहायता प्राप्त करने के इच्छुक होते तो आज अर्थसचिव कोई दूसरी ही कथा कहते। खैर, हम यहां पर इतना जरूर कहेंगे कि पश्चिमी देशों की प्रजा को राय का अधिकार होने के कारण उसके मत का जो आदर है वह अर्थसम्बन्धी शासन में हमें भी मिलना चाहिये। जैसा श्रीमान ने स्वयं कहा है, सरकार को चाहिये कि वह प्रजा की आवश्यकताओं को बुद्धिमानी से अनुभव करे।

यह भी हुआ, यूरोप की समृद्ध, धनशाली जातियां जिस काम को करने से भागती थीं, उसके करने के उपरान्त ७? वर्ष के भीतर अनुमान ५० करोड़ के असाधारण व्यय चलाने के सिवा 'निरन्तर बढ़ती हुई रुपयों की बचत" भी हुई। यह इस बात का प्रत्यक्ष प्रमाण है, जैसा कर्नल चेस्नी ने नाइन्टीन्थ सेंचुरी एण्ड आफ्टर की मार्च की संख्या में लिखा भी है कि प्रजा से उचित परिमाण से अधिक धन लिया जा रहा है, अर्थात् सरकारी कर का बोझ अकारण ही बहुत —
कर रक्खा गया है। जो सरकारी खर्च होता है उसे
के लिये करों के लगाने की बात तो समझ में आती
और दुर्दिन के समय में भी करों का ज्यों का
"एक निरन्तर ... रुपयों की बचत" ...

भाये समझ में नहीं आसकती। जो कुछ हो, जिन लोगों ने इस देश की आर्थिक अवस्था की गति का अध्ययन किया है वे इस बात को मानेंगे कि केवल इसीका ध्यान रखने हुए कि सरकार को एक निरन्तर बढ़ती हुई सख्या की "बचत" हुई है और वह आमदनी के बढ़ने के कारण नहीं वरन टैक्स के बलपूर्वक बढ़ाने से, यह नहीं कहा जा सकता जैसा लार्ड जार्ज हैमिल्टन कहा करते है, कि यह देश के सुखी और सम्पन्न होने का प्रमाण है या जैसा मा० सर एडवर्ड ला का कथन है।

ऐसे लोगो के लिये एक दुखी देश के सरकारी कोष का भरा पूरा होना—कोई गूढ़ समस्या नहीं है। वे जानते है कि जातीय कर का परिमाण उस अवस्था में भी जब सरकार उसे कम कर सकती है अकारण ही बहुत ऊंचा रक्खा गया है।

इस प्रश्न पर इन विचारो को रखते हुए मुझे इस बात का अत्यन्त शोक है कि पिछले ८ साल म सरकार को लगातार बचत होने पर भी उस इधर १६ वर्ष के भीतर प्रजा पर बढ़े हुए करों के बोझे को हलका करना स्वीकार नहा हुआ। इसमें सन्देह नहीं कि सरकार ने जो अनुमान २ करोड के लगान का बकाया माफ किया ह उसके लिये सारा देश उसका अनुगृहीत है। सरकार का यह उदार और निर्भीक कार्य दुर्भिक्ष के दिनों में भी बकाया न छोड़ने की पुरानी और कठोर नीति से या लोगों को बहुत ही हर्षवर्द्धक हुआ है। शिक्षा के लिये ४० लाख का विशेष दान भी देश भर में उचित आदर पावेगा। पर मेरी शिकायत तो माननीय अर्थ सचिव के आगामी साल के लिये

व्यय का प्रस्ताव करने में भय नहीं, श्रीमान् दिखलाते पर हैं। जब पिछले ४ वर्षों में इतनी बड़ी भारी बचत होती आई है और इस समय कोई विपत्ति के बादल भी नहीं मंडरा रहे हैं तब वे इस पर भी बजट में सिर्फ सवा लाख की ही बचत क्यों रखते हैं जब उनका उससे तिगुनी बचत रखना अधिक युक्ति संगत तथा उनकी मितव्ययता का सूचक होता। सरकारी आय की अवस्था पर यदि थोड़ा भी हम विचार करें जैसा पिछले ८ साल की बचत से उसका पता चलता है तो और कामों के साथ साथ वे निमक के ऊपर आठ आने मन का जो महसूल पीछे से लगाया है उठा लेते, एक से कम १०००) तक की आय पर इन्कम टैक्स छोड़ देते, देश के भीतर तयार किये हुए सूती माल के ऊपर से महसूल हटा लेते और फिर भी उस साल बचत दिखला सकते थे। श्रीमान् जिस उलझन में प्रजा ने जो पिछले १६ साल में एक टैक्स के बाद दूसरा टैक्स सहन किया है उसके बदले में ऊपर कहे हुए तीन महसूलों का हटा लेना उन पर कोई बड़ा एहसान करना नहीं है। आय के उस अंश के सम्बन्धमें जिसपर इन्कम टैक्स माफ होना चाहिये, स्वयं गवर्नमेंट ने राय दी है कि आय के कुछ अधिक बढ़ने पर टैक्स माफ होना चाहिये। आपने भी अपनी पहली बजट-स्पीच में इसे स्वीकार किया है। देशी सूती माल पर से महसूल बहुत शीघ्र उठालेना चाहिये। इसलिए नहीं कि सूती व्यापार की हानि हो रही है विशेषकर इस साल में सिक्का के सम्बन्ध में बने हुए सरकारी कानून से बड़ी हानि हुई है। देशी सूती माल के ऊपर से, सस्ता दरिद्र भारतवासियों की ओर न्याय दृष्टि से देखकर महसूल उठा लेना चाहिये
पर भी उस महसूल का भार पड़ता है

और दुर्भिक्ष से, कृषि और उद्योग की कमी से तथा सिक्का सम्बन्धी कानून से बहुत तंग हुए हैं और अभी तक बेदम से हो रहे हैं।

इस सम्बन्ध में मैं गवर्नमेंट का ध्यान उस व्याख्यान की ओर आकृष्ट करना चाहता हूं जो मेरे मित्र माननीय मि० मोजेज़ ने बम्बई के चेम्बर आफ कामर्स के वार्षिकोत्सव के अवसर पर दिया था। उनके विषय में यह नहीं कहा जा सकता कि सरकारी कार्रवाई की जो टीका टिप्पणी करते हैं, द्रोह भाव से करते हैं। उनमें प्रजा और सरकार दोनों ही का विश्वास है। वे अपने व्याख्यान में स्पष्टता और ज़ोर के साथ उस हानि का वर्णन करते हैं जो सरकार के सिक्के के सम्बन्ध के कानून से हमारे बढ़ते हुए सूत के व्यापार को पहुंची है। वह कहते हैं कि सूत के कारखानों का करीब करीब दीवाला ही निकल चला है। प्रायः २५ कारखानों का काम बन्द होनेवाला है और उनमें कितने ही नये कारखाने सिर्फ तिहाई लागत पर नीलाम हो रहे हैं। नये मिलों के चलने से हमारे जनसाधारण को जो आर्थिक कष्ट पहुंचा है उसका भी मिस्टर मोजेज़ ने उल्लेख किया है।

निमक के महसूल को कम करने के विषय में हम नहीं समझते कि किसी को यह दिखलाने की आवश्यकता है कि इससे हमारे निर्धन भारती भाइयों को बड़ी भारी हानि पहुंच रही है। सरकार ने स्वयं इस हानि को माना है। पर वर्तमान समय में जब हम लोगों की बात बहुत कम स्मरण रहती है हम आशा है कि यहां उन महानुभावों का कथन उद्धृत करना जिनपर भारत का शासन निर्भर है लाभदायक होगा।

सन् १८८८ में इस महसूल को बढ़ाते समय सर जेम्स वेस्ट लैन्ड ने जो उस समय अर्थ सचिव थे, सरकार की ओर से कहा था "बडे सकोच से सरकार इस महसल को बढाने के लिये वाध्य होती है।" सर जान गोर्स्ट ने जो उस समय अन्डर सेक्रेटरी के पद पर थे कुछ दिनों के वाद हाउस आफ कामन्स सभा में भाषण करते हुए इसी प्रकार खेद प्रकट किया था। लार्ड क्रास ने जो उस समय सेक्रेटरी आफ स्टेट थे, भारत सरकार को अपना डिस्पैच भेजते समय ता० १२ अप्रेल १८८८ को इस तरह लिखा था—"निमक के महसूल की वृद्धि को छोडकर मुझे आपकी सरकार की और किसी कार्रवाई पर कुछ नहीं कहना है। मैं इसका विरोध नहीं करता कि आपकी सरकार ने जो वर्तमान स्थिति में इसके बढाने का निश्चय अनिवार्य समझा है वह अनुचित है। पर यह मेरा दृढ विश्वास है कि यह वृद्धि थोडे ही समय के लिये होगी और जहा तक सम्भव होगा शीघ्र उसे पहले के निर्ख पर लाने का यत्न किया जायगा।"

श्रीमान् ने उसपर भारत सरकार के निकट निम्नलिखित आलोचनायें पेश की थीं —

जनता के उस भाग पर जो बहुत ही दरिद्र है नये टैक्स का साधारण समय में भी लगाना मेरे लिये दु ख का विषय है, विशेष कर जब वह जीवन के आवश्यक पदार्थ पर लगाया जाता है। पर यहा और वातों का ध्यान न रखकर जिनके कारण यह उचित और न्यायसगत है, निमक के महसूल को बहुत थोडा रखने के सम्बन्ध में - है। १८७७ में सरकार की यह नीति थी

दाम पर जितना चाहें उतना निमक खरीद सकें, उनका यह विश्वास था कि जिस बात में प्रजा का हित है उसी से सरकारी आय की भी वृद्धि सम्भव है, और उचित प्रणाली यह होगी कि निमक की खपत न रुके और उसपर बहुतही थोडा महसूल लिया जाय। इसी नीति की असाधारण सफलता हुई है, महसूल के कम होने से और दूसरे कारणों से इसकी खपत बढ़ गई है। इस समय इस मद से सरकारी आय उस समय से कहीं अधिक है जब १८७७ में पहले पहल इसके सुधार हुए थे। मेरा विश्वास है कि यदि महसूल की वृद्धि द्वारा इसकी खपत नहीं रोकी गई तो भविष्यत में इससे आय बढती ही जायगी

लार्ड क्रास ने दो बार इङ्गलेन्ड की एक पब्लिक मीटिङ्ग में अपना विचार प्रकट किया, "मुझे पूरा विश्वास है कि जितनी ही शीघ्र हो नमक के महसूल की बढती रद्द कर देनी चाहिये"। उसी साल मार्च के महीने में बड़े लाट की सभा में इन्कम टैक्स को उठा देने के प्रस्ताव के सम्बन्ध में व्याख्यान देते हुए सर डेविड वैविर ने इस प्रकार कहा — "मैं समझता हू कि सरकार के लिए यह निन्दा नहीं परन्तु परिहास की बात होगी यदि नमक के ऊपर का महसूल ज्यों का त्यों रक्खा गया और इन्कमटैक्स उठा दिया गया!" सन् १८८० म सर जान गार्स्ट ने हाउस आफ कामन्स में भारतीय बजट पर बोलते हुए कहा था 'निस्सन्देह (नमक का) महसूल उठा देने योग्य है और उठा भी दिया जायगा जैसे ही सरकारी कोष की अवस्था अच्छी हुई।" उसी तरह लार्ड जार्ज हैमिल्टन ने स्वय हाउस आफ कामन्स में भारतीय बजट की आलोचना करते हुए,

नमक वाले महसूल को शीघ्र उठा देने पर ज़ोर दिया था, और कहा था कि इसके बराबर और कोई दूसरा महसूल भारतवासियों को असहनीय नहीं है। बार बार इन विचारों के प्रकट करने पर भी बड़े अचम्भे की बात ही नहीं, बल्कि खेद और निराशा की बात भी है, कि सरकार ने इस वर्तमान अवसर पर ऐसे दुखदायी टेक्स को नहीं उठाया। प्रोफेसर फासेट का कथन है कि मनुष्य-जीवन के लिए नमक वैसाही आवश्यक है जैसे पीने का जल और स्वास लेने की हवा और यह उन्हीं की तरह मुफ्त भी मिलना चाहिये। यहा पर यह उल्लेख के योग्य है कि पिछले १४ साल में नमक का खर्च जैसे का वैसा ही रहा है, जितनी आबादी बढी उस हिसाब से भी इसका खर्च नहीं बढा। सन् १८८८ में महसूल के कम हो जाने पर ४ साल के अन्दर पहले से १८ सैकडे अधिक खर्च हो गया पर इधर १४ साल में केवल ६ सैकडा खर्च बढ़ा। इससे स्पष्ट है कि नीरोग रहने के लिए जितना नमक खाना आवश्यक है, औसत रूप से इस देश में उससे बहुत कम खर्च होता है।

श्रीमन्, सरकार के लिये अर्थ-कष्ट के समय जैसे नये करों को लेने का अधिकार है वैसे ही बचत के साल में उसमें कमी करना उसका कर्तव्य है। प्रतिवर्ष बचत होने से किफायत नहीं होती बल्कि इसके विरुद्ध समझदार सरकार को भी बचत के रुपये को फजूल कामों में उडाने का लालच होता है। यह बात सभी देशों में देखी गई है पर विशेष कर भारत में यह बहुत ठीक है क्योंकि और देशों की प्रजा अपनी सरकार से खर्च का हिसाब समझती है पर यहा तो यह बखेड़ा ही नहीं है।

सब तरह से किफायत, शासन के प्रत्येक विभाग के खर्च में कमी करना और इसका भी ध्यान रखना कि काम में अंतर न पडे, यही राजकोष के प्रबन्ध का मूल सिद्धान्त होना चाहिये जिसमें महसूलों का बोझ जहा तक सभव हो हलका रह और देशी उद्योग-धन्धे में कोई रुकावट न आने पाये। हाल म सिक्के के सम्बन्ध म सरकारी नीति जैसी हुई है उस स इस नियम का पालन करना और भी जरूरी होगया है। इसमें सन्देह नही कि इस नीति से एक्सचेन्ज में बडी स्थिरता आगई है और इसने अर्थसचिव को बहुत अन्देशो से भी बचा दिया है, किन्तु अन्त में जब बाजार भाव का निपटारा होगा तो जान पड़ेगा कि देश की बहुसख्यक कर देनी वाली प्रजा पर कैसा असह्नीय बोझ आगिरा है। यह ठीक है कि रुपयो के टकसाल से निकलने में जो रुकावट हुई उससे उसका निर्ख बढ गया पर उसी परिमाण और शीघ्रता से बाजार में चीजों का भाव नहीं घटा बढा। यह तो मानी हुई बात थी, क्योंकि भारत जैसे पिछडे हुए देश में परपरा की रीति का अतिक्रम करने में समय लगा ही चाहे। दुर्भिक्ष के कारण पिछले कई सालों में इस घटी बढी के होने में और भी देर होगई पर यह तो निश्चय है कि आज नहीं तो कल रुपये के निर्ख को बलात् बढा देने के कारण सब चीजों की कीमत एकाएक गिर जायगी। और जब यह होगा तो सरकार जमीन के जोतने वालो से कर के रूप म ८० फी सैकडा अधिक लेने लगेगी और उसी हिसाब से अपने नौकरों को भी अधिक वेतन देगी। जनसाधारण के लिये यह बोझ असहनीय हो जायगा। इसके पहिले ही पिछले कई साल के अकाल मे उन्हें चादी से रुपया गढवाने म, जब रुपया महँगा हो चला था पर उसका निर्ख

बाजार में नहीं बढ़ा था बहुत घाटा उठाना पड़ा था। जब बाजार भाव में घट बढ़ होगी तो एक विचित्र बात यह देखने में आवेगी कि उन साहूकारों को जिन्होंने खेतिहरों को रुपया उधार दिया है सरकार की ओर से उधार दिये हुए धन पर ४० फी सैकड़ा इनाम मिल जायगा अर्थात् वे देनदारों से ४० फी सैकड़ा अधिक वसूल कर सकेंगे। और यह सरकार की कभी नियत न रही होगी। सिक्के के सम्बन्ध में सरकारी नीति से खेतिहरों को जो हानि पहुच रही है और पहुंचेगी उसका विचार करते हुए मैं समझता हू सरकार के लिये यह आवश्यक है कि वह यथासाध्य टक्स को कम करके उस क्षति को पूर्ण करे।

श्रीमन्! टैक्स की दर का निर्धारण और सरकारी आय के प्रबन्ध पर विचार करते समय दो मुख्य बातों का ध्यान होना चाहिये। प्रथम यह कि हम उस देश के सरकारी आय व्यय का विचार कर रहे है जिसकी मालगुजारी का एक बड़ा भाग सैनिक और राजनैतिक बन्धनों के कारण देश के बाहर खर्च होता है पर उसके बदले में कुछ हाथ नहीं आता, दूसरे यह कि हमारे सामने उस देश के राजकोष का प्रश्न है जो लार्ड जार्ज हैमिल्टन के शब्दों में केवल निर्धन अति निर्धन ही नहीं है वरन् जिसकी अधिकांश आबादी दिनों दिन उन आर्थिक शक्तियों के प्रभाव से जो ब्रिटिश राज्य की बदौलत यहां आई हैं गरीब होती जाती है। यह सत्य है कि देश की यह बढ़ती हुई दरिद्रता सरकार की ओर से नहीं स्वीकार की जा रही है इसके विरुद्ध बड़े से बड़े अफसर उसके सुखी होने ही की बात चलाते है। पर हम बड़ी विनय के साथ इतना कहने का साहस करते है कि हम लोग जो इस कठिन

काल की विपदाओं के बीच में रहते हैं, यह जानते हैं कि भारतवासियों की दशा के विषय में ऐसी बहलानेवाली बातों का कोई प्रमाण नहीं है और इसीलिए हम भारत की उस गिरती और मरती हुई प्रजा की ओर से प्रार्थना करते हैं कि देश के बढ़ते हुए दारिद्र को बिना सकोच के स्वीकार कर लिया जावे और सरकार की शक्ति इसके दूर करने के उपायो में लगाई जाय। माननीय अर्थसचिव महोदय पारसाल के महसूल की वृद्धि को सुख समृद्धि का चिन्ह समझते हैं। यदि इस बात का विचार न किया जाय कि एक साल के हिसाब से कोई नतीजा नहीं निकाला जा सकता तब भी हम पारसाल के हिसाब में कोई ऐसी बात नहीं पाते जिससे माननीय महोदय के मत का समर्थन हो। देशवासियों में अधिकाश जिन की आर्थिक अवस्था का यही प्रश्न है चीनी या सूती माल से जो बहुधा बारीक आते हैं कोई सरोकार नहीं रखते। बाहर से जो चाँदी आती है उससे भी उन्हें सम्बन्ध नहीं क्योंकि पारसाल दुर्भिक्ष का समय था इसलिये गरीब आदमियों ने खरीदने के बदले जो कुछ अपने पास था उसे भी बेच डाला। मिट्टी के तेल की आमदनी में बढ़ती इस बात की सूचक है कि देशी तेल के स्थान पर इसका व्यवहार बढ़ रहा है और इसका सबब कुछ ऐसी अंग्रेजी कम्पनियों की कोशिश है जो तेल का काम करती हैं, और रेलों का खुलना। कहीं कहीं रसोई के काम में भी लकड़ी की जगह तेल ही जलाया जाता है। इन कारणों से हम समझते हैं कि माननीय महोदय जो पारसाल के महसूल की वृद्धि से नतीजा निकालते हैं वह उचित नहीं है। जमीन के लगान, एक्साइज और स्टाम्प से महसूल की वृद्धि के आधार पर भी भारत की बढ़ती हुई

समृद्धि का अनुमान किया जाता है पर लगान की वृद्धि तो जबरदस्ती की वृद्धि है। वह इकतरफा इन्तजाम है। इजाफा लगान दीजिये या जमीन से बेदखल होइये और रोजी का जो आखरी सिलसिला है उससे भी हाथ धोइये! आबकारी में महसूल में जो वृद्धि हुई और वह जहा तक मादक वस्तुओं के प्रचार के कारण हुई है यही बतलाती है कि आबकारी विभाग की कार्रवाई से और उन लोगों के प्रति जो एक सीमा तक मादक वस्तुओं के व्यवहार करने के अधिकारी समझे जाते हैं दयाभाव दिखलाने के कारण देश में नशाखोरी बढ रही है। ब्रिटिश राज्य के पहले अधिकारियों की ऐसी हस्ती नहीं थी। पर इसका फल क्या है, केवल क्लेश, जो देश की उन्नति और समृद्धि के ठीक प्रतिकूल है। मदिरा ऐसी वस्तुओं में नहीं है जिसे अपनी औक़ात भर लोग कम बेश खरीदते हों। जब आदमी नशा पीने लगता है तो वह खाना भी छोड देता है और उसे अपनी स्त्री बच्चों की सुध भी भूल जाती है! सिर्फ उस विषैली मदिरा की हवस बुझाने की लगी रहती है। उसी भाति स्टाम्प से सरकारी आय बढने का अर्थ, मामला मुकदमो की बढती है जो साफ साफ इस बात का प्रमाण है कि लोग आपस में बहुत लड भिड रहे हैं, उनके सम्पत्तिशाली होने का प्रमाण यह नहीं। श्रीमन् वह कर जिसके परिमाण से प्रजा की आर्थिक अवस्था का ठीक ठीक पता चलता है इन्कम टेक्स और नमक का महसूल है। पहले से तो मध्यम और उत्तम श्रेणी वालों की दशा मालूम होती है और पिछले से जनसाधारण की। इधर हम यह देखते हैं कि इन दोनों मदों से सरकारी आय कई साल से ज्यों को त्यों रही है। नमक का महसूल

नो उस हिसाब से भी नहीं बढा जितना कि आबादी की बढती से बढना चाहिये था। इससे कहना पडता है कि प्रजा दिनों दिन धनी और सुखी नहीं हो रही है।

श्रीमन्, आपने पारसाल की बजट स्पीच में इस प्रश्न पर विचार किया था और कुछ हिसाब की जाच के बाद आपने यह सम्मति दी थी कि भारतीय आर्थिक अवस्था की प्रवृत्ति इस समय उन्नति की ओर है, अवनति की ओर नहीं। आप की जाच पडताल की विधि में बहुत सी त्रुटियां थीं जिसे आपने स्पष्ट रूप से माना भी था। श्रीमन् मैं समझता हूं, कि प्रति स्त्री पुरुष की औसतः आय निकालने से केवल प्रजा की आर्थिक दशा का अकों में अनुमान हो सकता है। इस दृष्टि से हमारी आय का औसत चाहे वह १८) या २०), २७) या ३०) रु० फी आदमी पर हो बहुत थोडा है और इस बात को प्रमाणित करता है कि हम लोग बडे निर्धन हैं। पर इन अङ्कों के द्वारा जब यह दिखलाने की कोशिश की जाती है कि हमारी आर्थिक अवस्था उन्नति पर है तो उसमें आपत्ति की जा सकती है, क्योंकि उसमें बहुत सी बातें जो अटकल से मानली गई हैं विश्वास योग्य नहीं है। यद्यपि भारत-वासियों की औसत आय का इस प्रकार निश्चय करना कि सब को सतोष हो जाय असम्भव है तथापि कुछ ऐसे प्रमाण हैं जिससे इस समस्या को समझने में हमें सहायता मिल सकती है। और यह प्रमाण साफ साफ बताते हैं कि जनता का अधिकाश, यही नहीं कि कोई उन्नति नहीं कर रहा है वरन् आर्थिक अवस्था में प्रतिदिन हीन होता जाता है। मेरे पास कुछ मानचित्र हैं जिन्हें मैंने बहुत सी सरकारी रिपोर्टों से सकलित किया है जैसे कि (१) मनुष्यगणना का लेखा

(२) जन्म मरण का लेखा (३) नमक के खर्च का हिसाब (४) गत १६ वर्ष में कृषि की उपज का लेखा (५) ब्रिटिश भारत मे भूमि का वह क्षेत्रफल जो बोया जाता है (६) और वह जिसमें अच्छी फसल होती है (७) कुछ माल का आयात और निर्यात इनसे यह बातें सिद्ध होती हैं —

(१) जनसंख्या की वृद्धि पिछले दस साल मे जितनी होनी चाहिये थी उससे बहुत कम हुई। बाज प्रान्तों की आबादी वास्तव में घट रही है।

(२) सन् १८८४ ई० से बराबर १००० पीछे मृत्यु संख्या बढती ही जाती है जिससे स्पष्ट है कि ऐसे लोग अब बढ रहे हे जिन्हें पूरा भोजन नहीं मिलता।

(३) इस देश में नमक का खर्च वैसे ही उस परिमाण तक नहीं पहुंचता जितना कि मनुष्य को निरोग रखने के लिये जरूरी हे पर इधर जिस हिसाब से आबादी बढी है उतना भी इसका खर्च नहीं बढा।

(४) गत दस साल में कृषि का कार्य देश भर में बहुत ही मन्दा रहा।

(५) पुराने प्रान्तों में जोत का क्षेत्रफल घट रहा हे।

(६) बढिया फस्ल की जोत भी घटती जाती है।

(७) आयात और निर्यात की भी वही कथा है। अच्छी फसल घटती जाती हे। मवेशियों की बहुत सी संख्या मर रही हे। फसल के नाश, जानवरों की मरी और दुर्भिक्ष के दिनों में दूसरी प्रकार से कृषकों को जो क्षति पहुची हे वह अनुमान ३०० करोड रुपये के कूती गई हे। इसके अतिरिक्त इसका भी निर्विवाद प्रमाण मिला है कि भूमि की उर्वरता

भी बहुत शीघ्र घटती जाती है और उसका कारण है निरन्तर भूमि का जोता जाना और उसमें, खाद का न डालना। सर जेम्स केयर्ड ने इसपर बहुत जोर देकर लिखा है —

"बिना अन्तर दिये फसल पर फसल उपजाई जाती है जिससे क्रमश यहा की भूमि उर्वरता से शून्य हो रही है।"

डाक्टर वोयलकर ने भी ऐसी ही राय दी थी। कृषकों का ऋण भी भयानक रूप से बढ रहा है। मिस्टर बेन संयुक्त प्रान्त के विषय में लिखते हैं "खेतिहरों की ¾ सख्या को ग्रीष्म काल के कष्ट का सामना करने के लिये साहूकारों की शरण लेनी पडती है।"

बम्बई के विषय में मैकडानल कमीशन ने इस प्रकार लिखा था "कम से कम बम्बई हाते के चोथाई काश्तकारों के हाथ से जमीन निकल गई है। अनुमान से भी कम लोग ऋण से मुक्त हैं और शेष खेतिहर थोडे बहुत ऋणी हैं

इसी तरह मैं समझता हू, और प्रमाण मिलता है कि मध्य प्रदेश और पजाब का भी यही हाल है।

इन्हीं बातों को जब एक साथ ध्यान में लाते हैं तो यह विश्वास हुए बिना नहीं रहता कि भारत के सर्वसाधारण की आर्थिक दशा बराबर बिगड रही है। मुझे इसबात का बड़ा शोक है कि ऐसी शोचनीय दशा ससार भर के औद्योगिक इतिहास में कहीं नहीं मिलती। येही हमारे किसान चाहे उन्हें जिस तरह देखिये, अन्य किसी देशवालों से मेहनत, सादगी और किफायतशारी तथा दुःखों के सहन करनेमें कम नहीं हैं उन्होंने ५० साल से ऊपर निर्विघ्न शान्ति का उपभोग किया है पर इस अवधि के अन्त में पहले से भी उनकी बुरी दशा

हो रही है। श्रीमन्, मैं कहता हूं, ऐसी दु:खप्रद और आश्चर्य जनक घटना पर सरकार को शीघ्र ही विचार करना चाहिये और मैं यह भी विश्वास करता हूं कि अब इस बात को सरकार किसी तरह नहीं टाल सकेगी। यह कहा गया है कि यदि नमूने के तौर पर कुछ गावों की दशा का अनुसन्धान किया जाय तो इस सम्बन्ध में बहुत सी शंकायें और मिथ्या धारणायें दूर हो जायँगी। पर सरकार की ओर से उत्तर मिलता है कि ऐसे अनुसन्धानों से कोई लाभ नहीं है क्योंकि पहिले वे किये जा चुके हैं। इसमें सन्देह नहीं कि इसकी बहुत सी जाच हो चुकी है और उसमें बहुत सी काम की बातों का पता मिला है पर वह सब दबा दी गई हैं, प्रकट नहीं की गईं। समझ में नहीं आता कि ऐसा क्यों किया जाता है! विशेष कर जब यह आर्थिक दशा की बातें हैं और उनकी छान बीन में सरकार को गैर सरकारी जिज्ञासुओं से सहकारिता स्वीकार करनी चाहियें। मैं साहस के साथ कह सकता हूं कि यदि सरकार की ओर से सन् १८८२ की क्रोमर साहब वाली तहकीकात, १८८७-८८ की उफरिन साहब वाली तहकीकात और अन्त में १८९१-९२ वाली गुप्त तहकीकात के कागजात प्रकाशित किये जायें तो सर्वसाधारण को बड़ी सहायता मिले। यही हाल है गावों की निम्न श्रेणी की स्थिति के परिचायक अङ्कों के उस लेख का जो १८९८ के अकाल कमीशन के लिए प्रान्तिक सरकार ने प्रस्तुत किया था। तथा उस लेख का जिसकी चर्चा परसाल आपने बजट स्पीच में की थी और जो कहा गया है कि १८९८ के अकाल कमीशन के लिए तैयार हुआ था, साथ ही उस परिशिष्ट का जो १८९१ के अकाल कमीशन की रिपोर्ट में लगा था तथा कृषकों के ऋण सम्बन्धी

उस लेख का भी जिसका उल्लेख पंजाब के लेफ्टिनेन्ट गवर्नर ने पंजाब लैंड एलिनिएशन बिलवाली स्पीच में किया था। ये सब सरकारी कागजात अकारण ही सर्वसाधारण से छिपाकर रक्खे गये हैं। मैं समझता हूं कि वे देश की आर्थिक अवस्था का सच्चा परिचय पाने में आपको बडी सहायता पहुंचायेंगे यदि इन कागजात के प्रकाशन का प्रबन्ध करदेंगे।

श्रीमन्! मैंने अभी तक यही दिखलाने का यत्न किया है कि (१) पिछले ४ साल की बचत की बडी रकम केवल सिक्के विभाग की बचत है, (२) इस देश में बहुत अधिक कर लिया जाता है और उसे कम करना चाहिये, (३) यह कि भारतवर्ष न केवल एक बडा निर्धन देश है वरन् इसकी दरिद्रता बराबर बढ़ रही है और इसलिए इसके राजकोष के प्रबन्ध में इस मुख्य बात का सदा ध्यान रखना चाहिये। प्रजावत्सल लार्ड रिपन के आधिपत्य के बाद यहां के राजकोष का कुछ ऐसा ढंग रहा है जिससे मालूम होता है कि शासन में भारतवासियों का हित नहीं, औरों का हित देखा जाता है। जैसे, हमारे अल्प कोष से युद्ध द्वारा ब्रिटिश राज्य का प्रसार किया गया है पर उससे भारतवासियों का क्या लाभ हुआ? इङ्गलिस्तान के सौदागरों के लिए यहां तक रेल खोली गई कि आजतक उतनी खुली ही नहीं थीं। कई बार तो अर्थसचिव ने प्रतिवाद भी किया, पर सुनता कौन है। यह ऐसी नीति थी जिससे अन्य कैसा ही लाभ क्यों न हो पर कृषि के अतिरिक्त देशी उद्योग धन्धे भी नष्ट होगये और सब के सब कृषि के आश्रित हो गये, यह रेल का प्रसार अभी तक जारी है पर दूसरी ओर जिससे सारे देश को आशा है प्रायः उपेक्षा दिखलाई गई है,

और देखिये बड़े अफसरों के हित की बात सब से पहले आती है। अनकवेनेन्टेड सिविलियनों को पेन्शन लेते समय एक रुपये में १ शिलिंग ६ पेन्स तक लेने की रियायत है। यूरोपियन अफसरों को बट्टे का अलाउन्स अलग मिलता है। सेना का खर्च इस बीच में ६ ५ करोड़ से भी बढ़ गया है और यूरोपियन सिपाहियों की वेतन वृद्धि होने के कारण १½ करोड़ और बढ़ेगा, उधर "होमचार्ज" ३ मिलिअन पौन्ड से अलग बढ़ गया है, यह सब हुआ पर इस अंतर में शिक्षा का खर्च मालगुजारी से केवल २० लाख से बढ़ा और दूसरे आंतरिक सुधार वैसे के वैसे पड़े रहे। कृषकों की दिनों दिन अधिक कमी होने की बात हाल में बहुत सुनने में आती है पर कोई ऐसा उपाय जिससे उनको सहारा मिले और जिसके लिए आवश्यकतानुसार सरकार अपनी तरफ से कुछ खर्च करने को तैयार हो नहीं किया जा रहा है। हर्ष की बात है कि पिछले ३ वर्षों में सरकार की नीति में कुछ आशाजनक परिवर्तन हो चला है। श्रीमान ने सरहद की स्थिति बहुत अच्छी कर दी है और इस पक्ष में यह और भी उल्लेख योग्य है कि आपके इस देश में इस उच्च पद पर आरूढ होने के बहुत पूर्व आपके एक भाषण से यह प्रतीत हुआ था कि आप विजय द्वारा ब्रिटिश राज्य की सीमा बढ़ानेवालों के दल में हैं। हाल में लगान के प्रश्न पर जो सरकारी रिजोल्यूशन निकला है उसकी विवादग्रस्त बातों से हमारा चाहे जितना मतभेद हो पर हम इतना जरूर कहेंगे कि उससे प्रजा की ओर सरकार की गहरी सहानुभूति अवश्य प्रकट होती है और यदि उस उदार नीति का उचित रूपसे पालन किया गया जो भावितव्य गवर्नमेन्ट के अनुसरण करने के लिए निर्धारि

हुई है तो इसके लिए प्रजा उसकी बड़ी अनुग्रहीत होगी। इस सम्बन्ध में मैं यह कहना चाहता हूँ कि जो कुछ बम्बई हातावालों के उलाहने थे उसकी सत्यता स्वय सरकार ने मान ली है जैसे कि यह स्वीकार कर लिया गया है कि गुजरात में लगान का परिमाण बहुत ज्यादा है। दूसरे बन्दोबस्त में नियम के विरुद्ध बहुत गड़बड़ी हुई है यह भी मान लिया गया है। इसमें यह बड़े ज़ोर के साथ लिखा गया है कि जहाँ किसी कारण से कृषि की दशा खराब हो गई वहाँ सरकारी लगान में कमी हो जानी चाहिये जिसमें किसानों का क्लेश हलका हो पर इसका प्रमाण मिलता है कि कितनी ही अवस्था में लोगों का क्लेश सरकारी लगान के पूरा पूरा भरने में बहुत बढ़ गया था और इस पर भी उसके हिस्से में कमी नहीं की गई। जो हो अब लगान की वसूली में अधिक दम देने की आशा दिलाई गई है ताकि फसल में कमी वेशी और गेतिहरों की स्थिति के अनुसार ही वह वसूल किया जाय। इस स्पष्ट स्वीकृति और उदार आश्वासन के पश्चात् यह स्मरण करना कि पारसाल बम्बई सरकार के रेवन्यू मेम्बर ने अपने भाषण में कहा था कि इकरारनामा आखिर इकरारनामा ही है और चाहे सरकार अपनी ओर से दुःखी प्रजा की सहायता करे परन्तु दावे के साथ उसे माँगने का अधिकार नहीं है, बड़ा रोचक मालूम होता है। नहरों के विषय में यह निश्चित है कि श्रीमान् उचित रूप से शीघ्र ही इसकी प्रधानता पर ध्यान देंगे। श्रीमान् के सन्मुख पुलिस सुधार, प्रान्तिक राजधन प्रबन्ध, कृषि सम्बन्धी बैंक, प्रारम्भिक, उद्योग, शिल्प और कृषि शिक्षा के प्रश्न भी हैं उन पर पूर्ण रूप से आप विचार कर रहे हैं। सभी ओर कुछ ऐसे चिह्न

दिखाई पड़ते हैं जिनसे आशा होती है कि १६ वर्ष के बाद सरकारी कौन्सिल में फिर भी आन्तरिक सुधार का समय आयेगा, उसी समय चित में आशा और निराशाओं का मिश्रित आवेग भी उत्पन्न होता है क्योंकि आपके शासन के ३ साल बीत चुके अब शेष दो साल में कौन कह सकता है कि क्या होगा और क्या न होगा। श्रीमान् आज तक इस देश में ऐसा आर्थिक कष्ट कभी नहीं देखा गया जैसा वर्तमान समय में उपस्थित है, इसलिये अधूड़े उपायों से काम चलाने का नहीं है। भारतीय वाइसराय के पटल पर केवल "कार्यकुशलता" का आदर्श नहीं वरन् "निर्भीक और उदार राजनीतिनिपुणता" लिखा होना चाहिये। यदि एक शताब्दी के भीतर प्रशिया अपनी कुर्री की आबादी को धनी और सुखी किसानों के रूप में परिणत कर सका तो क्या अङ्गरेज राजनीतिज्ञ भारत के स्वतन्त्र कृषकों को दासवृत्ति की अधोगति प्राप्त करने देंगे। यदि पुराने प्रान्तों में जहां वे शर्तें पूरी होगई हैं जिनका वर्णन सर स्टैफोर्ड नार्थकोट साहब ने अपने डिस्पैच में किया है तो प्रजा का इससे बड़ा कल्याण हो। टाइम्स आफ इन्डिया के एक सम्वाददाता ने एक ऐसी लेखमाला में जिसकी ओर सब का ध्यान आकृष्ट हुआ है बड़े जोर के साथ उन अनर्थों को दिखलाया है जो बार बार के बन्दोबस्त से हुआ करते हैं उसमें यह भी लिखा है कि भूमि में कृषक जो सुधार करते हैं उसपर भी नियमविरुद्ध टैक्स लगता है, ऐसी भूमि पर लगान लिया जाता है जिसमें लगान की बिलकुल गुंजाइश नहीं और यह भी कि कृषकों की दशा बराबर बिगड़ती ही जाती है। रैयतवारी प्रदेशों में स्थायी बन्दोबस्त करने की चर्चा चलाने में कम से कम

स्तान मे मिल भी गया तो बाहर का आक्रमण रोकने के लिए भी पूरी है। पर उस समय रशिया के साथ मुठभेड़ होने का इतना भय था कि उसके सामने कोई किसी की सुनता ही नहीं था और सेना के बढाने का जो प्रस्ताव किया गया उसके अनुसार वह बढा दी गई। यह सेना की वृद्धि अकेले भारत ही म नहीं, ब्रिटिश राज्य के ओर भागों में भी हुई और मिस्टर ग्लडस्टन ने उसके लिये (Vote of Credit) लिया। पर आश्चर्य की बात तो यह है कि और जगह भय के शान्त होते ही सेना की संख्या घटा दी गई पर भारत में वह ज्यों की त्यों बनी रही। फल इसका यह हुआ कि सर आकलेन्ड कालविन और उनके साथियों ने जो भविष्यद्वाणी की थी वह सच निकली और साल लगते लगते अपर बर्मा पर चढाई की गई, देश जीत लिया गया और वह ब्रिटिश भारत में मिला भी लिया गया। खर इस बात का दूसरा प्रमाण कि फौज की वृद्धि में भारत का कोई प्रयोजन न था यह है कि पिछले दो सालों से २०,००० से ऊपर सैनिक भारत के बाहर इम्पीरियल गवर्नमेंट का काम कर रहे हैं और यद्यपि इन दो सालों के बीच में एक में प्रचण्ड दुर्भिक्ष पड़ा पर देश में अचल शान्ति का राज्य रहा। मुझे याद है इस कौन्सिल की पहिली ही स्पीच में आपने बतलाया था कि जब तक आप भारत के अधिष्ठाता हैं सेना में कमी होने की कोई आशा नहीं है। अब यदि इस समय ३ साल पहले के विचार में परिवर्तन न हुआ हो तब भी मैं इतना कहने का साहस करता हूं कि चाहे भारत की स्थायी सेना में कमी न हो पर भारतवासियों की ओर से उस सेना के खर्च में किफायत होना चाहिये। सेना की कितनी संख्या भारत में होनी चाहिये यह गूढ इम्पीरियल नीति

की बात है उसमें हम लोगों को बोलने का अधिकार नहीं। परं इतना कहने का हम लोगों को दावा है कि यदि भारत की आवश्यकता से यहां अधिक सेना है जैसा अभी मैंने दिखलाया तो न्याय की बात यह है कि उसके व्यय का एक अंश इम्पीरियल गवर्नमेंट भी सहन करे। यदि अपना विचार संकीर्ण करके थोड़ी देर के लिये यह मान लें कि भारत में ब्रिटिश राज्य की रक्षा के लिये इस सेना की जरूरत है तब भी हम कह सकते हैं कि इसमें इङ्गलैंड की उतनी ही हित की बात है जितनी हम लोगों की, इसलिये उचित है कि उसके खर्च का एक हिस्सा इङ्गलैंड बरदाश्त करे। यदि ऐसा किया जाय, यदि भारतीय, सरकारी नौकरियों पर अधिक नियुक्त किये जायँ, तो खास कर विशेष विभाग में सरकार टैक्स भी कम कर सकेगी और शिक्षा के प्रसार, औद्योगिक उन्नति (जापानी सरकार के ढंग पर) और दूसरे सुधारों के लिये धन निकाल सकेगी। तभी भारत का राजधन दृढ़ आधार पर रह सकता है और तभी भारत ऐसे निर्धन देश के राजकोष का ठीक उपयोग हो सकता है। श्रीमन! आपने उस दिन अपने भाषण में बड़ी ओजस्विता के साथ इस बात की आवश्यकता दिखलाई थी कि अब भारतवासियों को चाहिये कि वे अपने संकीर्ण विचार छोड़ दें और अंग्रेजों के साथ साथ सारे ब्रिटिश साम्राज्य के लिये उस नई संयोगात्मक देशभक्ति को स्थान दें जिसकी इस सुअवसर पर जरूरत है। यह एक ऐसी आकांक्षा है जो हम लोगों में भी बहुतेरों को प्रिय है। पर इसके पूर्ण होने के पहले दोनों पक्षों को अपना हित बहुत कुछ एक कर देना पड़ेगा और भारतवासियों को ब्रिटिश राज्य में इस समय

अंग्रेज जाति जरा कल्पना से काम ले और मन ही मन अपने को हम लोगों के स्थान में मान ले तब वह हम लोगों के मनोभाव का अनुमान कर सकेगी। कहा जाता है कि भारत वासियों के प्रति अत्यल्प दयाभाव बड़ा काम करता है। यह बिलकुल सच है। भला लार्ड रिपन के समय में देशी समाचारपत्रों की राजभक्ति में कोई सन्देह कर सकता था? सामयिक पत्रों में उस समय कटु शब्द व्यवहार किये जाते थे जरूर पर भारत वासियों की ओर से नहीं। श्रीमन, आवश्यकता है इस बात की कि हम यह समझने लगें कि हमारा शासन वास्तव में राष्ट्रीय शासन है चाहे उसका बाहरी रूप कैसा ही हो—ऐसा शासन जो सब बातों के ऊपर प्रजा का कल्याण रखता है, जो भारत वासियों के दूसरों से द्वारा लाञ्छित होने पर वैसा ही क्रोध करता हो मानो वह लाञ्छना अंगरेजों ही पर लगाई गई हो और जो सब तरह भारतवासियों की आर्थिक और नैतिक भलाई के लिए यत्न करता है वह राजनीतिज्ञ जो भारत वासियों के बीच प्रेम भाव उत्पन्न करेगा वह इस देश की बड़ी उत्कृष्ट सेवा करेगा और सदा के लिए हम लोगों के अनुराग का भाजन होगा। नहीं नहीं वह अपने देश की भी सच्ची सेवा कर सकेगा। संकीर्ण साम्राज्य भाव से वह यह नहीं समझता है कि सारा संसार एक ही जाति के लिए बना है और दूसरी जितनी जातियां हैं वह उसके चरणों में रहने के लिए ही जन्मी है वरन उस श्रेष्ठ साम्राज्य भाव से वह ब्रिटिश राज्य के अन्तर्गत सभी मनुष्यों को इस राज्य के उपकार और सन्मान में सम्मिलित होने का अवसर देता है। श्रीमन् मैंने यह सब बातें आपके सन्मुख इस विचार से नहीं कही है कि आप भारत के वाइसराय है वरन जैसा सब लोग समझते है,

आप अपने देश में लौटने पर इससे भी अधिक उत्तरदायित्व और प्रभुत्व लाभ करेंगे। यदि हम लोगों की यह आशा फलीभूत हुई तो इस देश की शासन नीति को आप पहले से अधिक मोड़ सकेंगे जैसी हम लोगों की उत्कट इच्छा है। इसी आशा से मैंने आज कुछ कहा है और मुझे विश्वास है कि यद्यपि मैंने अपने कथन में कुछ असामान्य स्पष्टता का व्यवहार करने की धृष्टता की है तथापि यदि मेरी तुच्छ बुद्धि में राजभक्ति का सब से उत्तम लक्षण है, तो इसके लिए आप क्षमा करेंगे।

१९०६ का बजट।

नमक का टैक्स।

श्रीमन, आज दूसरी बार माननीय मिस्टर बेकर ने कौंसिल के सामने बजट पेश किया है। उस सीमा का विचार करते हुए जिसके भीतर वह बजट तैयार कर सकते थे यह बड़ा मनोहर और सन्तोषप्रद चिट्ठा है। आय व्यय के चिट्ठा में प्रसादगुण के लिए इसे बहुत ऊंचा स्थान मिलेगा। माननीय महोदय ने नमक की खपत के ऊपर इस टैक्स में कमी के प्रभाव के सम्बन्ध में जो कुछ लिखा है उसे पढ़कर मुझे विशेष प्रसन्नता हुई है। बहुत दिन नहीं हुए। एक समय था जब कौंसिल में यह कहने की रीति चल पड़ी थी कि जनता के ऊपर नमक का महसूल बहुत ही कम है और इससे उसकी खपत में कोई अन्तर नहीं पड़ सकता। यदि किसी समय सरकार इस महसूल को फिर से बढ़ाने के लिए विवश हुई तो मुझे आशा है कि उस काल के अर्थसचिव मेरे माननीय मित्र की साक्षी को याद करेंगे जो उन्होंने इसको घटाने के फल के विषय में दी है और फिर कोई इस बात का खण्डन करने का साहस न करेगा कि नमक जैसी आवश्यक खाद्य वस्तु के सम्बन्ध में उपयुक्त नीति यही है कि बढ़ते हुए खर्च पर क्रमश थोड़े परिमाण से टैक्स लगाकर आय बढ़ायें।

वर्तमान समय में भी महसूल का परिमाण असली लागत से प्रति सैकडा १६०० गुणा अधिक है और मुझे पूरा विश्वास है कि माननीय महोदय को अपने शासन काल में ही इसमें और भी कमी करने का दूसरा अवकाश मिलेगा जिससे सारे भारत में एक ही महसूल वर्मा के बराबर अर्थात मन पीछे १) हो जायगा। महसूल की इस कमी के पहले भारत में नमक का खर्च प्रति मनुष्य ५ सेर था। अब वह ५½ सेर हो गया है पर अब भी यह वर्मा के खर्च से जहा यह प्रति मनुष्य ८½ सेर है। बहुत कम है।

श्रीमन, भूमि के ऊपर से छोटे छोटे करों के उठा देने और डिस्ट्रिक्ट और लोकल बोर्ड के कोष से प्रान्तिक आवश्यकताओं के लिए धन लेने की प्रथा को बन्द कर देने का बहुत अच्छा फल होगा। मैं उस नीति को बड़े सन्तोष के साथ देखता हू जिसके अनुसार यह सब सुधार हो रहे हैं। मुझे खेद इतना ही है कि बम्बई प्रान्त उस निवृत्ति से कोई लाभ नहीं उठा सकता जो अभी प्रदान की गई है और यदि अभी समय है तो दो एक मैं ऐसी सूरतें बताऊंगा जिनसे माननीय अर्थ सचिव हम लोगों की उसी आधार पर सहायता कर सकते हैं जिसपर उन्होंने दूसरे प्रान्तों को निवृत्ति दी है। एक तो उस क्षति के विषय में कहना है जो हमारे लोकल बोर्ड को सरकार की ओर से लगान की मुअत्तली या मुआफी होने पर सहनी पड़ती है। इन बोर्डस की आय का प्रधान अंश भूमि के ऊपर एक आने के कर से आता है इसलिए दुर्भिक्ष के कारण जब सरकार उस लगान का कोई अंश कुछ दिनों के लिए छोड़ देती है या बिलकुल माफ कर देती है तो १ आने वाला कर जो उसके साथ ही चुकाया जाना है

आप ही आप नष्ट हो जाता है। गवर्नमेन्ट ने हिसाब लगाया है कि इस साल लगान की वह रकम जो कुछ दिनों के लिए रोक दी जायगी या मुआफ कर दी जायगी, ५० लाख रु० ठहरेगी। इसका मतलब यह हुआ कि लोकल बोर्ड की आय में इस साल ३ लाख के ऊपर घाटा होगा। एक आने के कर से बम्बई हाते भर में ३० लाख की आमदनी होती है। जिसमें से ३ लाख की कमी कोई मामूली बात नहीं है। इसके अलावा यह घाटा सारे हाते के ऊपर बटा हुआ नहीं है, यह खास खास जिलों को उठाना पड़ेगा। इससे यह अभिप्राय निकला कि उन जिलों में बोर्ड के पास बहुत जरूरी कामों के लिए भी पैसा न होगा। मैं इसलिए प्रस्ताव करता हूँ कि प्रान्तिक आय से जो दान बोर्डस को दिया जाता है वह ३ लाख से बढ़ा दिया जाय या जितना भी एक आने का कर प्रान्तिक मालगुजारी के साथ जोड़ दिया गया हो या माफ कर दिया गया हो उसके बदले में प्रान्तिक गवर्नमेन्ट चाहे तो भारत सरकार से हरजाना भी ले सकती है। मैं समझता हूँ, पंजाब में चाल पर काम होता है। वहां बोर्ड अपना कर पूरा पूरा वसूल कर लेती है चाहे प्रान्तिक सरकार कृषकों के साथ कैसी ही रियायत करे। मैं आपसे यही प्रार्थना करता हूँ कि हमारे बोर्डस के साथ भी वैसा ही बर्ताव किया जाय। माननीय अर्थसचिव के लिए बोर्डस की रक्षा करने का दूसरा उपाय यह है कि वे बोर्डस को अकालपीड़ितों की सहायता करने का "फैमीन कोड" के अनुसार जो भार है उससे मुक्त करदें। कोड के नियम में अकालपीड़ितों की रक्षा सब से पहले बोर्डस को अपने धन से करना कर्तव्य है और उसके पीछे प्रान्तिक या भारत सरकार पर इसका उत्तरदायित्व है। हम जानते हैं कि

इन बोर्डस के पास उन उद्देश्यों की पूर्ति के लिए भी, यथोचित धन नहीं है जिनके वास्ते यह संस्था बनी है जैसे कि शिक्षा, सफाई, स्वास्थ्यपालन और सडक आदि। अब इनके अलावा उनके ऊपर अकालपीडितों की सहायता का कठिन भार डालना क्या है मानो उन्हें किसी भी उपयोगी काम के करने में असमर्थ कर देना है। पिछले दस सालों में बराबर एक से एक दुर्दिन आते रहे हैं, ४ बडे बडे अकाल पडे हैं, स्थानीय संस्थाओं के क्लेश प्लेग के प्रकोप और उसके निवारण के उपाय करने में और भी बढ गये हैं, इसके परिणाम से बम्बई प्रान्त भर के बोर्ड स को यह दुर्दशा हो गई कि उनका दिवाला ही निकला समझिये। जो साहाय्य मैं माग रहा हू यह यद्यपि बहुत थोडा है पर इस समय वह अवश्य बहुत उपयोगी ठहरेगा और मुझे पूरा भरोसा है कि जैसे माननीय महोदय पूर्व में स्थानीय सन्थाओं के साथ सहानुभूति रखते आये हैं वैसे ही इस बार भी वह साहाय्य देना आवश्यक और न्याय संगत समझेंगे।

पूर्व इसके कि मैं उन बडे प्रश्नों की चर्चा करु जिस पर आज मुझे कुछ विशेष वक्तव्य है मैं दो प्रस्ताव करना चाहता हू और अर्थसचिव से एक बात भी पूछना चाहता हू। मेरा पहला प्रस्ताव तो यह है कि आप व्यय के चिट्ठे में, जैसा वह तालिका नं० १ में दिया होता है, रेल और नहर के शीर्ष के नीचे ... नी साल के आय-व्यय के चि...

कि २६ और २७ मिलियन के बडे बडे अक लिखने की जगह यदि सरकारी चिट्ठे में आय के खाने में केवल २½ मिलियन की रकम लिखी जाय और दूसरी ओर यह अलग दिखलाया जाय कि कुल आमदनी खर्च इतना हुआ तो उससे सरकार की असली आय और व्यय का अच्छा अन्दाजा मिल सकता है। रेल और नहर के ऊपर का खर्च व्यापारिक आधार पर उधार ली हुई पूजी से होता है। उसमें जितना ही ज्यादा रुपया लगाया जावेगा, उससे आमदनी भी बढती जायगी। वास्तव में वह अधिक पूजी लगाने तथा और और कारणों से इधर बहुत बढ रही है यहा तक कि दस साल में करीब करीब दूनी हो गई है और जहा १८९६ ९७ में वह १५½ मिलियन थी, आज २९ मिलियन हो गई है, पर उससे देश की आय मे वैसी कुछ वृद्धि नही होती। उससे जो नकद मुनाफा होता है वही सरकार का लाभ है। जापान में जहा सब बातें लोग वैज्ञानिक ढग से करते हैं, सरकारी रेल के हिसाब में जैसा मैंने बतलाया है उसी रीति से काम करते हैं। वहा के आय व्यय के चिट्ठे में आय के खाने में केवल मुनाफा दिखलाते हैं, पर हमारे यहा जैसा लिखने का रिवाज है उससे बहुत भ्रम होता है यहा तक कि वे लोग भी जिन्हें बहुत कुछ जानने का सुभीता है धोखे में आ गये हैं। इसी तरह दो साल हुए भारतीय सरकार के सैनिक सदस्य सर एडमन्ड एलिस ने एक बिलकुल अनहोनी बात उडाई कि यद्यपि हाल में सेना का खर्च बढ गया है पर वह उस हिसाब से नहीं बढा है जिससे कि भारत सरकार की आय बढी है और बढ रही है। और जब मैंने उनका ध्यान इस भूल की ओर आकृष्ट किया तो वह रेल और नहर की कच्ची आय को सरकार की आय में शामिल करते हुए बहस करने लगे

और अपनी बात से जरा भी न टले। वे बराबर कहते गये कि कोई कारण नहीं कि मैं उन अंकों पर विश्वास न करूं जो मैंने पढ़े हैं।

मेरा दूसरा प्रस्ताव यह है कि लोकल बोर्ड का जमा खर्च जो प्रान्तिक रेट्स के नाम के नीचे दिया रहता है, भारत सरकार के हिसाब से जुदा कर दिया जाय। यह बहुत छोटी रकम होती है, साल में केवल २ मिलियन पर इससे बड़ी गड़बड़ी मचती है। शिक्षा ही को लीजिये। स्टेटमेन्ट नं० बी० के देखने से यह मालूम पड़ता है कि शिक्षा में २ मिलियन खर्च होता है पर असल में यह होता है १ मिलियन, बाकी लोकल बोर्ड का खर्च सरकारी हिसाब में मिला दिया जाता है, यह ठीक है कि प्रान्तिक और लोकल का शीर्ष भ्रम दूर करने के लिए दिया होता है, पर उसमें फिर एक भ्रम होता है क्योंकि लोकल से म्यूनिसिपल का भी मतलब निकलता है, पर भारतसरकार के हिसाब में केवल बोर्ड का जमा खर्च होता है, म्यूनिसिपैलिटी का नहीं। मुझे विश्वास है कि माननीय महोदय यह साधारण पर आवश्यक सुधार कर देंगे। यदि मेरे प्रस्ताव स्वीकृत हो गये तो हम लोगों की असली सरकारी आय ५२ मिलियन उतरेगी, ८७ मिलियन नहीं जैसा कि तालिका नं० १ से जान पड़ता है। और एक बात जो मुझे दर्याफ़्त करनी है वह गोल्ड रिजर्व फन्ड तथा सिक्के विभाग की बचत के विषय में है। लार्ड कर्ज़न ने दो साल हुए यह कहा था कि "यह फन्ड तब तक जमा होता जायगा जब तक वह १० मिलियन पौन्ड न हो जायगा। बस इस रकम से हम लोगों का काम चल

जायगा और उससे एक्सचेञ्ज में पूरी स्थिरता आजायगी।" फन्ड इस सीमा तक कभी का पहुच गया और वह १२ मिलियन पौन्ड से अधिक जा लगा है मैं समझता हूं कि माननीय अर्थ सचिव के लिए उचित है कि वे हम लोगों को अब यह बता दें कि आगे चलकर सिक्के की बचत से क्या किया जायगा। मिश्र व्याज के हिसाब से वह फन्ड जमा होता जायगा, हम समझते हैं जहा वह है वहीं उसे छोड़ देना चाहिये। उसपर ६ साल के अन्दर प्रति वर्ष औसत २ मिलियन की जो आय हुई है उसे अब से कृषकों को कर्ज देकर साहूकारों के उपद्रव से उनकी रक्षा करनी चाहिये। इस प्रकार उससे कासाल खरीदने की अपेक्षा अधिक आय होगी। इस नीति के अनुसरण से उन लोगों को भी कुछ सहारा होगा जिन्हें सिक्का सम्बन्धी कानून से जोर का धक्का पहुचा है। यदि वह जनता के अर्थलाभ के कामों में भी लगाया जाय जैसे कि रेल नहर इत्यादि। और उसी कदर सरकार कर्ज लेना बन्द कर दे तो वह कासोल में रुपया लगाने से कहीं अच्छी व्यवस्था हो। अपना रुपया २॥ सैकडे सूद पर लगाना और जरूरत पडने पर दूसरों से ३॥ सैकडे रुपया कर्ज लेना इस दोषपूर्ण नीति का कोई प्रतिकार नहीं है।

श्रीमन्, हमारा आर्थिक प्रबन्ध शासन की कई महत्वपूर्ण नीतियो पर निर्भर है और जब तक उनमें कोई मौलिक परिवर्तन नहीं होता तब तक सरकारी मालगुजारी का ऐसा प्रयोग जिससे प्रजा का पूरा हित हो असम्भव है। ऐसे प्रश्नों में सबसे प्रधान पर साथ ही कठिन और नाजुक, सेना का प्रश्न है। श्रीमन्, मुझे भय है कि सरकार की फाजी

नीति का प्रतिवाद् चाहे हमारे लिए यह अरण्यरोदन ही क्यों न हो, हमें जब अवसर मिलेगा करते जायँगे क्योंकि-यदि इसका समुचित समाधान हो गया तो उसके साथ ही हमारे सभी बड़े हित साधन हो जायँगे। इसके अतिरिक्त यदि कोई समय ऐसा हो सकता था कि जब हमारी बात सुनी जाती तो यह वर्तमान समय है। अभी एशिया खण्ड की राजनीति की स्थिति में एक गहन परिवर्तन हो गया है। जापान की विजय से मध्य और पूर्वी एशिया में शान्ति स्थापित हो गई है। सदा के लिए यूरोपवालों का चीनियों पर धावा रुक गया है। रूस की शक्ति छिन्न हो गई है अब एशिया से उसकी माया उठ गई। उसके ऊपर इतनी विपत्ति है कि उसे दूसरों को विपत्ति में डालने की बहुत दिनों तक सुध न होगी। इस प्रकार यह दुःख के बादल जो ३० वर्ष से ऊपर हमारे उत्तर पश्चिम सरहद् पर मँडरा रहे थे, टल गये और जहाँ तक मनुष्य अपनी बुद्धि से अटकल लगा सकता है हम लोगों के जीवनकाल मे वे फिर से आनेवाले नहीं हैं। अंग्रेज और जापानियों के बीच जो सन्धि हुई है उसके विषय में चाहे भारतवासियों का कैसा ही विचार हो, एशिया की शान्ति को वह सन्धि यदि उसमें कोई सार है तो और भी सुदृढ़ करती है। श्रीमन्, निश्चय, यही समय है जब आपके द्वारा सेना-व्यय के उस असहनीय बोझ को जिसे भारतवासी इतने साल से वहन करते आते हैं हलका होने की आशा करने का अधिकार है। इस विपत् निवारण में पहली बात यह हो सकती है कि आप उस सुधार स्कीम पर जिसे अभी जंगी-लाट साहब ने प्रस्तुत किया है और जिसमें १० मिलियन पौन्ड के करीब खर्च बैठनेवाला है कोई अमली कार्रवाई न करें। यह व्यवस्था

रूस जापान की लड़ाई के आरम्भ में बननी शुरू हुई थी और १९०३ में इसकी मज़ूरी हुई थी जब युद्ध के परिणाम के विषय में केवल संशय ही नहीं था पर आसार जापान के विरुद्ध थे और जब रूसियों के काबुल की ओर चढ़ आने का बहुत भय था। अब बात बिलकुल बदल गई और न पश्चिमी सरहद अब आपद का स्थल ही रहा तो अब क्या ज़रूरत है कि इतनी बड़ी खर्च में डालनेवाली स्कीम के ऊपर, जिससे देश की सारी फौज बात की बात में सरहद पर एकत्रित हो जाय काम किया जावे। इस समय जितने मिलियन पौन्ड उसमें खर्च होंगे उन्ही तक हद नहीं है बाद में भी उसपर सदा के लिए खर्च होता रहेगा। इस समय हम लोगों को नही मालूम कि वह खर्च कितना होगा पर अर्थसचिव ने पारसाल ही कह दिया था कि खर्च बहुत पड़ेगा। वह खर्च जो बराबर साल साल होता रहेगा, ५ साल के बाद जान पड़ेगा। तब तक इस स्कीम के अनुसार काम करने के लिए ७ मिलियन रुपया चाहिये। श्रीमन्, मैं विनयपूर्वक ऐसी व्यवस्था पर ऐसे समय में कार्य करने के विरुद्ध प्रतिवाद करता हूं क्योंकि इसमें इतने धन और शक्ति का व्यय होगा जो हमारे सामर्थ्य के बाहर है और जिसकी कोई आवश्यकता भी नहीं है। भारतसचिव ने पार्लामेन्ट में एक प्रश्न के उत्तर में उस दिन कहा था कि इस पर विशेष विचार हो रहा है। मुझे पूरा विश्वास है कि उसे मुल्तवी करने ही का वह निर्णय करेंगे, कम से कम उस समय तक जब तक कि सरहद पर कोई नया झगड़ा नहीं खड़ा होता। यदि सरकार ने हाल की घटनाओं पर ध्यान न देकर उस व्यवस्था पर कार्य करने की ठानी तो मैं इस पर जोर दूंगा कि यह खर्च ऋण लेकर चलाया जावे।

श्रीमन्, गत ८ साल में सरकार ने रेल बनवाने में ३५ करोड़ की सरकारी बचत खर्च कर दी और कर्ज लिया सो अलावा। वर्तमान साल की मालगुजारी का वह भाग जो ऐसे व्यापारिक कामों में लगाया जाता है जिससे कुछ मुनाफा होता है, उत्पादक ऋण में शामिल हो जाता है और इसी लिए उतने ही से वह ऋण कम कर दिया जाता है जिसके ऊपर सरकार को कोई मुनाफ़ा नहीं होता। पारसाल जब मैंने यह साधारण सी बात इस युक्ति के सम्बन्ध में कही थी कि फौज के नये सुधार का व्यय ऋण लेकर चलाया जाय तो मुझे इसका बड़ा आश्चर्य हुआ कि उन्होंने मेरी बात की सचाई में सदेह किया। खैर उन्होंने जो कुछ कहा, भ्रम में कहा। यह प्रकट था कि उन्होंने यह समझा कि मैं कह रहा हूं कि देश का उत्पादक और अनुत्पादक दोनों प्रकार के ऋण कम कर दिये गये हैं जब कि मेरा यह कहना था कि चूंकि हमारा अनुत्पादक ऋण, जो वास्तव में हमारा ऋण है, उतनी रकम से कम हो गया था जितना कि वर्तमान साल की मालगुजारी से पूंजी के तौर पर व्यय किया गया था, इसलिए फौजी सुधार का सारा खर्च ऋण से चलाया जा सकता था और इसके होते हुए भी हमारा अनुत्पादक ऋण उससे कम ही होगा जितना कि ८ साल पहिले था। श्रीमन् टक्स देनेवालों के प्रति यह महा अन्याय होगा यदि हम पिछले साल की बचत को तो पूंजी बनाकर खर्च कर दें और सेना के सम्बन्ध में बार बार होनेवाला खर्च हम वर्तमान साल की मालगुजारी से लें जब कि उससे बचा हुआ प्रत्येक पैसा हमें अपने बच्चों की शिक्षा और सैकड़ो दूसरे आभ्यतरिक सुधार में खर्च करना है।

अर्थसचिव कहेंगे कि जब तक बचत नहीं होती तब तक किसी को नहीं मालूम रहता कि कितनी बचत होगी। पर निश्चय ही जब वह बचत हुई है और उसे अनुत्पादक ऋण के कम करने में खर्च किया गया है तो कोई कारण नहीं है कि ऐसे कामो के वास्ते ऋण न लिया जाय जो बार बार नहीं होते।

श्रीमन्, इसके पश्चात् मैं यह कहने की आज्ञा चाहता हूँ कि भारतीय सेना की सख्या कम से कम उतने से कम कर दी जाय जितने से वह पन्चदेह घटना के उपरान्त बढ़ा दी गई थी। इस साल में सेना का व्यय भयानक रूप से बढ़ गया है जैसा कि वह नीचे के अकों से जान पड़ता है।

१८८४–१८८५, १० ६ करोड (१८८५ की वृद्धि के पहले)
१८८८–१८८६, २२ २ " (वृद्धि के बाद)
१६०२–१६०३, २८ २ "
१६०६–१६०७, ३२ ८ "

हमारे यहाँ अब सेना का व्यय २० वर्ष पहले से ठीक दुना हो गया है। सन् १८८८ के बाद से यह करीब १० करोड के बढ गया है और यह इस बात के होते हुए कि इस बीच में एक सिपाही भी अधिक नहीं भरती किया गया है। सन १८८५ में जो वृद्धि की गई थी वह भारत सरकार के दो सदस्यों की सम्मति के विरुद्ध और १८७६ वाली आर्मी कमीशन की राय के प्रतिकूल थी। कमीशन तो उस समय की सेना को देश में भीतरी शांति रखने और बाहर के आक्रमण को रोकने के लिए केवल रूस के अकेले आने ही पर नहीं बल्कि अफगानिस्तान को उसका साथ देने पर भी काफी

समझती थी। तभी से रूस की चढाई के भय का प्रभाव हमारे सब सैनिक प्रबन्धों में देखने में आता है। पर अब एक ओर रूस की टाँग टूट गई और दूसरी ओर हमारी सरकार से जापान की सन्धि हो गई तो अब हमारे शासको के चित्त में भय का नाम नहीं होना चाहिये और देश को उस बोझ से त्राण मिलना चाहिये जो आज तक उस भय के कारण उस पर लदा हुआ है। कुछ दिनों से इङ्गलैन्ड में सैनिको को भर्ती करने में और भारत में सैनिक दल भेजने में जो कठिनाई पड रही है और उसके कारण पारितोषिक दे दे कर थोडी मियाद वाले सिपाहियो को सेवा की अवधि बढा लेने के लिए जो लालच दिया जा रहा है उससे भी यही उचित जान पडता है कि यदि भारतवासियो के साथ न्याय करना है और बिना प्रयोजन उनका भार नहीं बढाना है तो यहा की दुर्ग सैन्य की सख्या को घटा देना चाहिये और यदि इस मत की पुष्टि की गई कि सर एडमन्ड एल्स के बतलाये हुए कारण के अनुसार सेना की संख्या का ह्रास नहीं किया जायगा अर्थात् यह मान लिया जाय कि भारत की सेना स्थानीय सेना नही है जो एक ही जगह की शान्ति और रक्षा के निमित्त हो वरन् वह एशिया खण्ड की लडाकू जातियों की शक्ति में सामञ्जस्य रखने के लिए है तो इम्पीरियल गवर्नमेन्ट का धर्म है कि वह इस उद्देश्य से निर्मित सेना के निर्वाह के खर्च का एक अश स्वय वहन करे। श्रीमन्, सेना का व्यय इतना बढ गया है कि उसने सरकार के सारे आय-व्यय के लेखा को आच्छादित कर लिया है और उसकी ठिठुरानेवाली छाह के नीचे प्रजा का कोई व्याधिरहित विलास सभव नहीं है। दृढता और निर्भीकता के साथ यदि हमने उसके व्यर्थ ही बढे

हुए निकम्मे अगों में कुल्हाड़ा नहीं लगाया तो हमारे जीवन में रोग के वैसे ही चिन्ह दिखलाई पड़ने लगेंगे जैसे इस समय इसकी वृद्धि में।

खैर, सेना के त्रासजनक व्यय के प्रति ही केवल हम लोगों का उलाहना नहीं है। सारी भारत रक्षा प्रणाली जो अविश्वास के ऊपर निर्माण की गई है दोषपूर्ण है और यह देखकर बड़ा दुःख होता है कि इसकी दशा दिनोदिन बिगड़ती ही जाती है। देश का सारी आबादी सेना में भर्ती होने से वञ्चित रक्खी जाती है। नई व्यवस्था के अनुसार 'मद्रास कमाड' का एकबारगी उठा देना क्या है मानो मद्रास हाते में सेना की भर्ती ही बन्द करनी है। इसका तात्पर्य यह है कि अब मद्रास वाले मामूली सिपाही की हैसियत से भी फौज में दाखिल नहीं हो सकते। अधिकतर सरहद्दी या सरहद के पार की जातियो से ही बहुधा अब रंगरूट लिये जाते हैं अर्थात् उसमें अब विदेशी ही भरे जाते हैं जिसका फल यह हो रहा है कि कुछ ही दिनों में उसमें केवल वेतन की लालच से काम करनेवाले आ जायँगे। आर्म्स एक्ट का प्रयोग क्रमशः कठोरता के साथ किया जा रहा है और हथियार रखने के लिये अब पहले से बहुत कम लाईसेन्स दी जाती है। वर्तमान समय में मैं समझता हूँ कि इस तरह के लाइसेन्स की कुल सख्या ३० और ४० हज़ार के भीतर ही होगी। देशी सेना में गोरे अफसरों की सख्या बहुत बढ़ा दी गई है जिससे पजाबी रेजिमेन्टों में १३ और दूसरों में १२ गोरे अफसर हो जायँगे। इस वृद्धि से हिन्दुस्तानी अफ़सरों को वे बड़ी जगहें भी जो कभी कभी उन्हें मिल जाया करती थीं अब न मिला करेंगी और वे अब छोटे छोटे ट्रूप और कम्पनियों पर भी अफसरी न कर सकेंगे। सेना में बड़े और ऊँचे ओहदे योग्य और

उन्साही हिन्दुस्तानियों को देने के लिये हम बहुत दिनों से कह रहे हैं पर जवाब में हमें यही सुनने में आता है कि इसमें हमारे साथ पहले से भी अधिक कड़ाई की जायगी। यह सच है कि 'फेडिट कोर' के चार आदमियों को पारसाल कमीशन दिया गया था और उसके सम्बन्ध में वाइसराय ने जो भाषण किया था उससे आशा होती थी कि इन हिन्दुस्तानी नवयुवकों को सेना में उच्च पद पाने के वैसे ही अवसर मिलेंगे जैसे गोरे अफसरों को। पर इस विषय पर मेरे प्रश्न करने पर जंगी लाट साहब ने जो उत्तर दिया उससे यह आशा भी जाती रही और हम लोगों को प्रतीत हो गया कि लार्ड कर्ज़न की प्रतिज्ञा केवल कहने सुनने की थी, उसे पूरा करने का जब समय आया तो वह तोड़ दी गई। गदर के पहले दो प्रणालियां थीं। उनका नाम था "रेगुलर" और "इर्रेगुलर"। "रेगुलर" में प्रत्येक देशी सेना के पीछे २० गोरे अफसर होते थे और "इर्रेगुलर" में केवल ३। सन् १८५९ वाले कमीशन ने "इर्रेगुलर" की प्रणाली पसन्द की, पर बहुत वादविवाद के अनन्तर १८६३ में यह ते पाया कि प्रत्येक देशी सेना में ७ गोरे अफसर हों जो इस मध्य स्थित और पार्श्वस्थित सेनाओं पर कमान्ड करें और देशी अफसर के नीचे ट्रूप्स और कम्पनियां हों। लार्ड मेयो के आधिपत्य काल में इस प्रश्न पर फिर बहस चली और गोरे अफसरों की संख्या बढ़ाने पर ज़ोर दिया गया। यह बहस १८७०, ७६ तक जारी रही जब लार्ड सैलिसबरी ने यह निर्णय किया कि ७ गोरे अफसर वाली प्रणाली कायम रहे और उसके साथ ही इस बात की आवश्यकता दिखलाई कि देशी अफसरों की स्थिति में उन्नति और सुधार होना चाहिये। इस बार जब प्रश्न नये सिरे से उठाया गया है तो हम देखते हैं कि निर्णय हमारे विरुद्ध ही किया जा

रहा है क्योंकि अब देशी सेना में ७ की जगह १२ और १३ तक गोरे अफसरों की सख्या हो जायगी। श्रीमन्, प्रजा के ऊपर इतने दिनों के ब्रिटिश शासन के बाद इतना अविश्वास जिस पक्ष से देखिये दुःख और शोच का विषय है। जब तक विश्वास की नीति पर काम नहीं किया जायगा यह सेना का प्रश्न क्या, भारत में किसी प्रश्न का निपटारा नहीं हो सकता इसमें जो कठिनाई पड़ती है तथा सावधानता की जो जरूरत है उसे मैं खूब समझता हूं। पर जो कुछ हो अन्तमें विश्वास ही के द्वारा विश्वास उत्पन्न किया जा सकता है और साहस के साथ प्रजा की राजभक्ति पर भरोसा रखने ही से वे उत्तेजित होकर राजभक्ति प्रदर्शित करेंगे। जब तक यह दशा रही जो आज है तबतक भारत रक्षा का प्रश्न चाहे कुछ कीजिये ऐसा ही रहेगा। रूसी और जापानी सेनाओं के साथ जो युद्धविद्या—निपुण कर्मचारी लड़ाई में गये थे उन्होंने राय दी है कि जब कोई बड़ा संकट आन पड़ेगा तो वर्तमान भारतीय सेना बहुत छोटी पाई जावेगी। यह तो मानी हुई बात है जबतक हम केवल सज्जित बैटेलिअन पर तथा उन सेना सामग्रियों पर जो विपत् काल में इङ्गलैन्ड भेज सकेगा हम भरोसा किये बैठे रहेंगे। सभ्य ससार में सर्वत्र सज्जित सेना का अवलम्ब सैन्य सग्रह व रिजर्व पर है तथा उन दोनों का अवलम्ब देश की जनता पर होता है। केवल इसी देश में ऐसे रिजर्व नहीं हैं जो युद्ध के समय लड़नेवालों की सख्या बढ़ा सकें और इस विषय की ऐसी उपेक्षा की जाती है मानो देश के लिये इसका कोई महत्व ही नहीं।

भूतपूर्व वाइसराय ने सेना का खर्च बढ़ाने की आवश्यकता दिखलाने के लिये जापान की वीरता का उदाहरण दिया था पर क्या कोई विश्वास कर सकता है कि बिना रिजर्व

के हाथ बढ़ाये और जापान के प्रत्येक बालक वृद्ध और युवा से सहारा पाये ही वह देश केवल सज्जित सेना के ऊपर पानी की तरह रुपया बहाने से ही क्या ऐसे गौरवपूर्ण कृत्य दिखला सकता ? सेना के लिये जापान का साधारण बजट केवल ३७ ३ मिलियन येन है जो ६ करोड से कुछ कम है। इतने थोड़े व्यय से वह देश १ लाख ६७ हजार सज्जित सेना रख सकता है जिसके अलावा उसके पास रिजर्व है जो समर काल में ६ लाख तक पहुंच सकता है। हम लोग इसकी अपेक्षा ६ गुना धन खर्च करते हैं तब भी हमारे पास केवल गिनेगिनाये २ लाख ३० हजार सज्जित सेना, २५ हजार देशी रिजर्वस्ट और ३० हजार गोरे वलमटेर हैं। राजनैतिक आधार पर और धन व्यय के लिहाज से दोनों प्रकार से हमारी वर्तमान सेना प्रणाली निन्दास्पद है। श्रीमन्, विनयपूर्वक मेरी प्रार्थना है कि म्हारे देशवासियो को—ससार भर की जनता के पाचवें अश को अपने घर द्वार की रक्षा करने योग्य न रखना, सदा के लिये उन्हें ये हथियार रखना और सैनिक जीवन के लिए इस प्रकार असमर्थ कर देना जैसा आज तक ससार में देखा सुना नही गया, बडाही निर्दय व्यवहार है। लार्ड जार्ज हैमिल्टन ने एक मरतबे विलायत में अंग्रेजों की सभा में कहा था कि भारत में ऐसे लाखो आदमी हैं जो वीरता में दुनिया की किसी भी जाति की बराबरी कर सकते हैं, देश में ऐसे लोगों को छोड़ कर और उनकी ओर उपेक्षा दिखला कर हमारी सरकार ने भारत की रक्षा के लिये एक ऐसी जाति के साथ सन्धि करना उचित समझा है जो किसी समय भारत से ही धर्म सीखती थी और इसकी आश्रित थी। जापान के ऊपर पश्चिमी विचारों का प्रभाव पड़े हुए केवल ४० साल हुए हैं पर इतने ही में इसने

अपने शासकों के प्रतिपालन और रक्षा से पश्चिमी देशों के बड़े अभिमानी राष्ट्रों में अपनी गिनती करा ली है। हम लोग ब्रिटेन की छत्र छाया में ४० वर्ष से ऊपर रह चुके हैं तब भी हम लोगों का दर्जा अपने ही देश में गुलामों से अच्छा नहीं बाहर का तो कुछ कहना ही नहीं। समय और घटनायें परिवर्तन लायेंगी पर सच्ची नीति निपुणता तो इसमें है कि हम उसका पूर्व परिचय पा जाय। वर्तमान प्रधान मन्त्री ने एङ्गलो जापानी सन्धि के ऊपर इस प्रकार अपना विचार प्रकट किया था —

"यदि यह साम्राज्यवाद है तो इतना मैं साम्राज्यवादी हूँ कि मैं यह समझूं कि भारत को सुरक्षित और अखण्डित रखना हमारा काम है, दूसरों का नहीं। और यदि रक्षा के साधनों की विशेष आवश्यकता है—जिसका पता मुझे नहीं है—तो भारतीय प्रजा के प्रति हमारी अपील होनी चाहिये, फिर रक्षा करने की अपनी योग्यता की ओर देखना चाहिये। क्या आप समझते हैं कि भारत की रक्षा में जापानियों को सम्मिलित करने में भारतवासियों की मानहानि न होगी या संसार की दृष्टि में हमारे विस्तृत राज्य की प्रतिष्ठा न्यून न हो जायगी?"

श्रीमन्, बस यही सच्ची दूरदर्शिता और नीतिनिपुणता है। मेरे देशवासी इतना ही चाहते हैं कि भारत में सेना का प्रश्न प्रधान मन्त्री की इस घोषणा के अनुसार हल किया जावे। जिन सुधारों की आवश्यकता है, वे ये हैं भारतीय सेना में अस्थायी सेना, भारतवासियों का रिज़र्व बनाना और क्रमश नागरिक सैनिक बनने का अधिकार खास

खास जातियों को फिर और लोगों को भी प्रदान करना जिसमें वे आवश्यकता पड़ने पर हथियार बांध कर अपने देश की रक्षा कर सकें। चाहे सरकार कितना ही सतर्क हो कर चले पर उसे इसी दिशा में आगे बढना पडेगा। तब हम लोगों की सामरिक रक्षा का प्रबन्ध राष्ट्रीय आधार पर हो जायगा और सेना को देश भर के लोगो से पुष्टि और सहायता मिलेगी, सेना का बहुत सा व्यय कम हो जायगा और बचे हुए धन से देश के और दूसरे उपकार के काम किये जायेंगे। प्रजा केवल कर देने और चुपचाप मुह ताकने को बाध्य न होगी उन्हें सेना में विशेष रुचि और अनुराग होगा और इस सम्बन्ध में हमारी स्थिति से ग्लानि वा निराशा न हुआ करेगी। इस समय जब बाहर से किसी शत्रु के चढ आने का भय जाता रहा है, इस नीति की परीक्षा लेनी चाहिये और मुझे इसका पूरा विश्वास है कि इङ्गलैण्ड को इसके फल से असन्तुष्ट होने का कारण न मिलेगा।

श्रीमन्, मुझे यह कहने में सकोच नहीं कि भारत सरकार की सामरिक नीति में शीघ्र ही परिवर्तन होने की बहुत कम सभावना है और यदि मैंने इस विषय पर विस्तार के साथ कहा है तो इसका यह कारण है कि मैं समझता हूँ कि इस प्रश्न के साथ हमारे राष्ट्रीय अस्तित्व का प्रश्न लगा हुआ है और दूसरे वर्तमान समय में इस पर पुनर्विचार करने के लिए प्रार्थना करना विशेष रूप से उपयुक्त है। मैं पहले ही कह चुका हूँ कि सेना का व्यय इतना बढ गया है कि उसने समग्ररूप से सरकारी आयव्यय के हिसाब को घेर रक्खा है इसी लिए तो यह और खेद की बात है कि सेना के व्यय से जो थोड़ा बहुत बचता है उसका अच्छा उपयोग नहीं किया जाता। श्रीमन्,

गत ८ वर्ष में भारत सरकार को ३० करोड़ रुपये की बचत हुई जो सब की सब रेल बनवाने में खर्च कर दी गई और उस पर भी कर्ज लेना पड़ा। व्यवसाय के तौर पर रेल खोलने के विषय में मुझे कुछ कहना नहीं है। अभी तक उसमें घाटा ही घाटा होता था, पर अब यह बात नहीं है और भविष्यत् में निस्सन्देह उस से सरकारी कोष में अधिकाधिक आय होगी। इस लिए ऋण लेकर व्यवसाय की दृष्टि से रेल खोलने में मुझे कोई आपत्ति नहीं यद्यपि इसमें भी ऐसे धन का अधिक भाग पहले नहरों के निकालने में लगाने के बाद ही इस का विचार हो सकता है। पर इस बात के प्रति मुझे घोर आपत्ति है कि सरकारी बचत का धन रेल में खर्च किया जाय, जब, सर्वसाधारण के हित की अनेक बातों के लिए धन का अभाव है। श्रीमन्, मेरा कथन है कि इसमें कुछ परिमाण का ज्ञान भी होना चाहिये। इस समय तक २५० मिलियन पौन्ड रेल के पीछे खर्च हो चुका है। बहुत काल तक सरकार की आकाँक्षा की पराकाष्टा यही तक थी कि इस देश में २० हजार मील रेल हो जाय। पर रेल का वह रास्ता जो आज खुला है २१ हजार मील से ऊपर है और जो सड़क बन रही है २ हजार मील होगी। क्या रेल ही सब कुछ है, क्या जनसाधारण की शिक्षा में कोई तत्व नहीं है, क्या स्वास्थ्य सुधार से कोई लाभ नहीं है जो अर्थसचिव बचत के धन से या ऋण से एक एक रुपया तक जो पाते हैं रेल के निर्माण में खपा देते हैं। इस विषय पर मेरी आलोचनाओं के उत्तर में अर्थसचिव ने यह कहा था —

"जब सरकार को अकस्मात् किसी भाँति बचत हो जाती है या किसी ऐसे मार्ग से धन मिल जाता है जिस पर आगामी

माल भरोसा नहीं किया जा सकता तो मैं समझता हू कि उसका इससे बढ़कर दूसरा कोई उपयोग नहीं हो सकता कि वह किसी ऐसी सार्वजनिक इमारत में लगा दिया जावे जिससे कुछ आमदनी हुआ करे।"

मैं उचित नम्रता के साथ यह कहा चाहता हू कि यह प्रस्ताव बहुत ही कच्चा है। सरकार का ऐसा करना उस दशा में बिल्कुल ठीक होता जब कोई ऐसा असामान्य व्यय कि जिससे सर्वसाधारण का भला होता हो, आवश्यकता न होती। परन्तु देश की ऐसी आवश्यकताओं के होते हुए जैसे प्रारम्भिक पाठशालाओं के लिये सुथरे भवन स्वास्थ्य सुधार के लिए ऐसी सामग्री जो स्थानीय संस्थाओं की हैसियत से बाहर है, मैं यह जरूर कहूगा कि कर से वसूल किया हुआ धन व्यवसायिक कामों में लगाना बिल्कुल अनुचित है। बचत के अनिश्चित होने से मेरा कथन मिथ्या नहीं हो सकता जब ही वह हाथ लगे तो उन कामों में उसे लगाना चाहिये। जो अभी मैंने बताये है। जब वह न मिले तो उसके बिना जो हमारी वर्तमान दशा है वह हीन नहीं हो सकती।

श्रीमन, पिछले साल की बचतों ने, जो जबरदस्ती रुपये का निर्ख बढ़ाकर आवश्यकता से अधिक कर लेने के कारण तथा आय को हमेशा कम बताने और व्यय को बढ़ाकर कहने के कारण हुई थी, देश के खर्च के ऊपर अपना अपरिहार्य फल दिखलाया है। राजकोष में धन का इतना बाहुल्य होने पर चारों तरफ खर्च का बढ़ना तो स्वाभाविक था। सब लोग मितव्ययिता से घृणा करने लगे, नये मोहकमों का खुलना और युरोपियन अफसरों की वेतन वृद्धि एक मामूली बात हो

गई। बडी सुस्ती के साथ कुछ कर भी कम किये गये, पर कार्यकुशलता के नाम खुले हाथ रुपये उडाने की आदत नहीं गई और यह अभी तक चली आ रही है। पछताने की बात तो यह है कि राजकोष में इतना प्रचुर धन होने पर शासन-व्यय मे अपरिमित वृद्धि के होते हुए भी प्रजा की आर्थिक और नैतिक उन्नति में योग देनेवाले काम ऐसे ही पडे रह गये और सरकार ने कोई ऐसी युक्ति नहीं की जिससे बहुसंख्यक मनुष्यों की दशा सुधरे। हम समझते हैं भारत सरकार का यह परम कर्त्तव्य है कि कोई ऐसी व्यवस्था करे। इसमें उनका सब रुपया लग जायगा चाहे वह बारबार हो या नहीं।

श्रीमान्! प्रजा की स्थिति के सम्बन्ध में जिन तीन बुराइयों के साथ हमें लडना है वह हैं, उसका दारुण दुर्भिक्ष, उसकी अज्ञानता और रोग लाने वाली परिस्थिति। मैं आशा करता हूँ श्रीमान् धीरज धरेंगे और मुझे यह कहने की आज्ञा देंगे कि किस ढग पर काम होना चाहिये।

(१) पहले तो भूमि के सम्बन्ध मे तीन सुधार आवश्यक हैं। यदि हम वास्तविक उन्नति चाहते हैं तो इन तीनों सुधारों को एक साथ होना चाहिये। इनमें पहला, भूमि के ऊपर सरकारी लगान में कमी है, विशेष कर बम्बई मद्रास और संयुक्त प्रान्त में इसका पूरा प्रमाण है कि पुराने प्रान्तों में कृषि का काम बहुत ही मन्दा हो रहा है। जमीन की पैदावार घटती जाती है। फसल दिनों दिन खराब होती जाती है और यहाँ की उपज दुनिया के सब देशों से कम तो थी ही और भी थोडी होती जाती है। कृषि की अवस्था इतना गिर जाने पर भी सरकारी लगान बढता ही जाता है। प्रजा बिचारी इस बोझ

के नीचे दबी जाती ? पर पेट ऐसी बुरी बला है कि उसे यह सहन करना ही पड़ता है राज्यकर के डाइरेक्टर ओकोनर साहब ने लण्डन में सोसाइटी आफ 'आर्टस्' सभा के सामने एक व्याख्यान में कहा था।

"इसमें बहुत सन्देह है कि काश्तकारों को बनिये महाजनों के हाथ से बचाने की चेष्टा जो इस समय की जा रही है उससे उन्हें कोई लाभ होगा। यदि कुछ लाभ हुआ भी तो उस समय तक उनकी स्थिति में अधिक अन्तर पड़ने का नहीं है जब तक भूमि की उपज का अधिक भाग उन्हीं को न मिले और जमीनदारों के इजाफा लगाने से उनकी रक्षा न की जाय" और भी—

'मुझे निश्चय है कि लगान के २० या ३० सेकड़ा कम कर देने से और इसका ध्यान रखने से कि काश्तकारों को भी इस निवृत्ति से लाभ हो, देश के उन अधिकांश निवासियों की बहुत ज्यादा दशा सुधर सकती है जिनके रुपये से विशेष रूप से शासन का खर्च चलता है।"

वर्तमान प्रणाली का केवल एक नतीजा होगा। इससे देश का मुख्य व्यवसाय—कृषि सदा के लिये असमृद्ध रहेगा। इसमें रुपया लगाने से लोग भय खायेंगे और सुधार करने का नाम न लेंगे पर मैंने जो उपाय बताया है उससे चाहे सरकार को अभी थोड़ा घाटा हो पर प्रजा के अपरिमित लाभ से वह पूरा पट जायगा

(२) दूसरे इस बात की पूरी चेष्टा होनी चाहिये कि भारतीय कृषक ऋण के उस बोझ से जिससे वह लदे हैं छुटकारा पायें। यह प्रश्न एक बहुत व्यापक प्रश्न है और सम्भवत

भिन्न भिन्न प्रान्तों की अवस्था के अनुसार पृथक् पृथक् कार्रवाई की जरूरत होगी। सब से अच्छी बात तो यह होगी कि प्रत्येक प्रान्त के अन्तर्गत एक नियत क्षेत्रफल के भीतर विस्तृत परिमाण से इसका अनुभव किया जाय। उदाहरण के लिये बम्बई प्रान्त के दक्खिनी नगरों को लीजिये। अच्छे जानकार लोगों की यह राय है कि अधिक नहीं तो हमारे एक तिहाई गृहस्थ पहले ही से अपनी भूमि खो बैठे हैं और अब वे महाजनों के दास बनकर अपना जीवन व्यतीत करते हैं। सब से पहले मैं ऐसे लोगों की दशा पर विचार करूंगा और एक विशेष अदालत नियत करूंगा जो जगह जगह जाकर ऐसे प्रत्येक मामले पर विचार करे और यदि आवश्यकता हो तो शर्तनामों या दस्तावेजों ही तक न रह जाय बल्कि एक दृष्टि उस अवस्था पर भी डाले जिसमें वह लिखे गये थे। मैं यह भी यत्न करूंगा कि उनके बीच चाहे सीधे सीधे या उन कानूनी अधिकारों के द्वारा जो उस अदालत को सौंपे जाय उनके लेन देन का निपटारा हो जाय। कल्पना कीजिये कि मैं ; मिलियन पौन्ड उस अदालत के सिपुर्द कर दूं जिससे कृषकों को अपना ऋण चुकाने के लिए पेशगी रुपया दिया जाय और यह रुपया ४½ सैकडे सरकारी मालगुजारी घटाकर वापस लिया जाय—३½ सैकडे सूद के लिए और १ सैकडे मूलधन के हिसाब में और यह ऋण ५० वर्ष के भीतर भीतर चुक जाय किसानों को इस तरह मुक्त करके सरकार उनकी बरबादी में रुकावट डालने का न्यायपूर्वक दावा कर सकती है इसमें सन्देह नहीं कि जो कुछ ऊपर कहा गया है वह स्थूल रूप में कहा गया है और इस व्यवस्था का विवरण पीछे से सोचना और उस पर कार्य

करने के पूर्व बहुत कुछ विचार करने की आवश्यकता होगी। यदि इस प्रयोग में सफलता के लक्षण दिखलाई पडे तो देश के और प्रान्तों में भी इसका अनुसरण किया जा सकता है। यदि इसमें असफलता हुई तो सिर्फ थोडा रुपया नष्ट होगा परन्तु इस संकट का सामना करना ही पडेगा। जब लार्ड लैन्सडाउन भारत के वाइसराय थे तो उन्हें कृषकों की ऋणग्रस्तता पर इतना दुख हुआ कि यह कहा जाता है कि उन्होंने जाने के पहिले एक स्मरण लेख छोडा जिसमें उन्होंने अपनी यह सम्मति प्रकट की कि कृषकों की दशा ब्रिटिश राज्य के लिए बहुत भय सूचक है और उसमें शीघ्र सुधार की नितान्त आवश्यकता है। उनको हिन्दुस्तान से गये १८ साल हुए किन्तु फिर भी सरकार के सारे प्रयत्नों की सीमा जो इस प्रश्न के हल करने के किये गये हैं केवल उन्हीं थोडे कानूनों तक है जिनका उद्देश्य प्रजा के उधार लेने के अधिकार को कम करना है। जञ्जीर की जो काम में आनेवाली एक कडी हो सकती थी उसको सरकार ने मुल्य कडी बना दी। इसका परिणाम यह हुआ कि आज हमारी अवस्था पहले ही जैसी शोचनीय है।

(३) परन्तु इन दो उपायों से प्रजा को उस समय तक स्थायी लाभ नहीं होगा जब तक एक तीसरे उपाय से न काम लिया जाय अर्थात् जब तक कि वह सुविधायें न प्रदान की जायें जो काश्तकारों को मितव्ययिता की ओर आकृष्ट करते हुए उनको इस योग्य बनाये कि वह अवसर अवसर पर अपनी आवश्यकताओं के लिए कम सूद पर ऋण ले सकें। सहकारी बैंक जिसके लिए अभी बन हुए एक एक्ट पास किया गया है इस विषय में बहुत लाभदायक न होगा। जातीय

और साम्प्रदायिक गाव भारत के अधिकांश में अब ढीला पड गया है और कि बेहद् जिम्मेदारी के नियमों पर इसमें भात वर आदमी आयेंगे नही। दरिद्रियों की कितनी ही सख्या इकट्ठी हो, न उनके पास धन होगा न साख जिससे वे एक दूसरे की मदद कर सकें। यदि बेहद जिम्मेदारी का नियम उठा दिया जाय और सेविंग्स बैंक्स की अमानत का कुछ हिस्सा इन बैंकों को मिले तो काम निकले। पर सबसे अधिक देश को कृषि बैंको की जरूरत है उसी ढाचे पर जिसपर कि लार्ड क्रोमर ने मिश्र देश मे बडी सफलता के साथ उनका स्थापन किया है।

(४) दो और ढग जो कृषि के अभ्युदय और उन्नति के लिए हिन्दुस्तान में आवश्यक हैं और जिनमे से कि एक ने पहिले ही से सरकार का बहुत ध्यान आकृष्ट किया है और जो हाल ही में हाथ में लिया गया है वे सिचाई और वैज्ञानिक कृषि हैं। सिचाई की बाबत में इतना ही पूछा चाहता हूँ कि तामीरात की चुनी हुई व्यवस्थायें सरकारी मोहकमों ही की ओर से क्यो बनें, उनकी तैयारी का काम, मिश्र देश की तरह हुशियार ठेकेदारों को क्यों न सिपुर्द किया जाय जिसमें वह मजदूर लाकर उन्हें काम सिखलायें और सरकार केवल निगरानी करे। मेरे विचार में सरकार को चाहिये कि वह इस पक्ष में भी उस प्रसिद्ध शासक लार्ड क्रोमर का अनुकरण करे। यदि ऐसा किया गया तो सिंचाई में बहुत शीघ्र उन्नति हो जायगी। वैज्ञानिक कृषि के विषय मे सब भारतवासी बडी उत्कण्ठा से सरकार के उस काम को जो उसने अभी तक किया है देख रहे हैं। इस सम्बन्ध में मुझे एक चेतावनी देनी है। यदि यह प्रस्ताव है कि इस काम के लिए यूरोपियन

वैज्ञानिक बुलाकर रक्खे जायँ तो फिर काम हो चुका। उन विदेशी वैज्ञानिकों की विद्या जो लगातार भारत में राय देने के लिए आते हैं और ज्योंही वे पेन्शन की अवधि पूरी कर लेते हैं और घर को लौट जाते हैं, उन बादलों की नाईं हैं जो कुछ दिनों तक तो आकाश में उमड़ा करते हैं पर बिना बरसे ही और पृथ्वी को उपजाऊ बनाये ही हवा के झोंके से उड़ जाते हैं। जब तक चुने हुए और होनहार भारतीय युवक दूर देशों में काम सीखने और निपुण विदेशी कर्मचारियों की जगह लेने को तैयार नहीं किये जाते तब तक उनके ज्ञान और अनुभव का हमारे आदमियों के बीच में प्रसार होना कठिन है। इतना ज़रूर है कि आरम्भ में विदेशी वैज्ञानिकों के ऊपर भरोसा करना पड़ेगा पर यह प्रबन्ध स्थायी नहीं रखना चाहिये।

(५) देशवासियों की दरिद्रता दूर करने के लिए हम लोगों को औद्योगिक और शिल्पीय शिक्षा का भी प्रचार करना है। इस क्षेत्र में हम लोगों ने कोई काम ही नहीं किया है, नतीजा इसका क्या हुआ है, सो एक साधारण आदमी भी जानता है। इस साल के बजट में २½ लाख का दान आवश्यकता के लिहाज़ से कुछ भी नहीं है, देश में कम से कम एक महती शिल्पशाला होनी चाहिये जिसकी शाखायें भिन्न भिन्न प्रान्तों में हों।

(६) अब मैं प्रारम्भिक शिक्षा के प्रश्न पर आता हूँ। मिस्टर नथन की रिपोर्ट से पता चलता है कि समग्र भारत के बालकों की शिक्षा के ऊपर सरकारी कोष से केवल ८३½ लाख की अति क्षुद्र रकम खर्च होती है। उस समय से अब इसमें कुछ वृद्धि हुई

है पर अब भी यह आवश्यकता की दृष्टि से बिल्कुल अपर्याप्त है। श्रीमन्! सर्वसाधारण की शिक्षा का प्रश्न इस देश में बहुत दिनों तक उपेक्षित और अनादृत हुआ और अब इसे अपना उत्तरदायित्व समझने में तनिक भी विलम्ब नहीं करना चाहिये। जरूरत है एक स्पष्ट लक्ष्य की और उस पर कार्य करने की दृढ़ता और उत्साह की। इसकी पहली सीढ़ी तो भारत भर में आरम्भिक शिक्षा को नि:शुल्क कर देना होगा और यह बड़ी आसानी से हो सकता है। सन् १९०७ ०८ में आरम्भिक पाठशालाओं की आय की कुल रकम केवल ३०½ लाख थी इस लिए बहुत बड़ा त्याग न करना पड़ेगा। इसके अतिरिक्त जितनी बड़ी म्युनिसिपैलिटियां हैं उनमें अपने हाते के भीतर ही इस घाटे के एक हिस्से को सहन करने के लिए रहना चाहिये। दूसरी सीढ़ी यह होगी कि प्रेसिडेन्सी नगरों में यह प्रारम्भिक शिक्षा अनिवार्य करदी जाय शिक्षा में बल प्रयोग की बात जब लोगों की समझ में आ जायगी तब क्रमश इसका विस्तार किया जा सकता है जिस से अन्त में २० वर्ष के भीतर के लड़के और लड़कियों दोनों के लिए इस देश में शिक्षा बिना शुल्क और अनिवार्य हो जायगी। विघ्न और बाधाओं से डर कर घबराने से कुछ न होगा। हमारा सारा भविष्यत इस काम के सिद्ध होने पर निर्भर है और जब तक सरकार इस पक्ष से उदासीन है वह प्रजा की ओर अपने एक बहुत ही आवश्यक कर्तव्य पालन में चूकने के लिए निन्दा की पात्र होगी।

(७) अन्त में स्वास्थ्य विभाग का बहुत जरूरी काम है - जैसे शुद्ध जल का प्रबन्ध करना, नाली का बनवाना इत्यादि ऐसा कि मैंने पारसाल बतलाया था प्राय हमारे बड़े नगरवाले

सरकार से बिना सहारा पाये अकेले इस काम को करने में असमर्थ हैं। सभी दिशाओं में प्लेग का प्रकोप होना और मृत्यु संख्या का दिनों दिन बढ़ता जाना यह जताता है कि सरकार इसकी ओर अब उपेक्षा नहीं कर सकती। साधारण जनता के पास रोजाना खर्च के लिए ही यथोचित धन नहीं है, पूंजी लगाने के लिए उनके पास कहां से रुपया आये। वर्तमान समय में साधारण जनता और भारतीय सरकार के बीच आय और उत्तरदायित्व के वितरण का जो नियम है वह साधारण जनता के लिए बहुत अन्यायपूर्ण है और यही उस कौतुक की जड़ है जो हम लोग पिछले कई साल से देखते आते हैं। अर्थात् एक ओर तो सरकार का कोष उमड़ा जाता है, दूसरी ओर स्थानीय संस्थाएं धन के अभाव से उजड़ी जाती हैं। यह आवश्यक है कि इसपर सरकार अपनी एक नीति बनाकर सर्वसाधारण को सूचित कर दे।

जितने सुधार मैंने ऊपर गिनाये हैं उन सब में बड़ा खर्च बैठेगा, कुछ तो एक मुश्त और कुछ प्रति वर्ष। पर इस समय भी जैसी हमारी आर्थिक अवस्था है हम उन सब में हाथ लगा सकते हैं। उदाहरण के लिए यदि फौज के नये सुधारों की स्कीम मुल्तवी कर दी गई, और कुछ नहीं तो इसका आरम्भिक व्यय ऋण लेकर चलाया गया, तो १ और २ मिलियन के बीच में हाथ आयेगा, जिसे हम पूरे उत्साह के साथ आरम्भिक शिक्षा के प्रसार में व्यय कर सक्ते हैं। सिक्के विभाग की बचत से जो औसतन प्रतिवर्ष २ मिलियन होता है रुपयों का ऋण से उद्धार किया जा सकता है। अकाल के लिए सरकार की ओर से जो दान मिलता है उसमें अकाल निवारण में जो वास्तविक व्यय होता है काटकर बाकी ———

गिक और शिल्पीय शिक्षा में लगाया जा सकता है। सेविंग्स बैंक के अमानत के रुपये से सहकारी बैंक का काम चल सकता है। साधारणत जो कुछ सरकारी बचत हो उसे स्थानीय संस्थाओं को स्वास्थ्य सुधार के लिए दिया जाय। चाहे जो हो इन कामों में हाथ लगाना ही चाहिये पर पहले कर्मचारियो के दिमाग पर जो जादू फिरा हुआ है उसे दूर करना चाहिये।

श्रीमन ! जनसाधारण की उन्नति और शिक्षित समुदाय का अनुरञ्जन वास्तव मे ब्रिटिश शासन के सामने भारत में दो महान् प्रश्न हैं। इस देश में इङ्गलैंड की सफलता वा असफलता का अनुमान इन्हीं दो क्षेत्रों में पराक्रम दिखलाने से होगा। मैं पहले ही उन कार्यो का उल्लेख कर चुका हूं जिन्हें जनता की आर्थिक और नैतिक समृद्धि के लिये अभी से हाथ में लेना जरूरी है। यह कार्य बड़ा गुरुतर है पर अपेक्षा भाव से बहुत हलका है। शिक्षित समाज को प्रसन्न करना जरा कठिन है क्योंकि उसमें ऐसी ऐसी उलझनें आती हैं जिनके सुलझाने में ब्रिटिश राजनीतिज्ञों की भी बुद्धिमानी खर्च हो जायगी। एक ही मार्ग है जिससे यह मेल हो सकता है और वह यह है कि इन शिक्षितवर्गों को देश के शासन में अधिकाधिक सम्मिलित किया जाय। यही वह नीति है जिस पर कार्य करने के लिए पूर्व मे इङ्गलैंड वचन दे चुका है। यही वह नीति भी है जो देश में नवीन विचार के उत्पन्न होने पर अवश्य कर्त्तव्य है। इसके अतिरिक्त, आज सभी पूर्वी देशों मे एक नये भाव का विकास हो रहा है। उनका हृदय एक नये उत्साह से आन्दोलित हो रहा है और यह आशा नहीं की जा सकती कि केवल भारतवर्ष ही उन नवीन विचारों से अभिभूत न हो जो आज हमारे वायुमंडल में फैल

रहे हैं। हम चाहें, तब भी उनके प्रभावों से नही वञ्चित रह सकते। यदि ऐसा संभव भी हो तो हम ऐसा पसद नही करेंगे। मुझे पूरा भरोसा है कि हमारी सरकार उन गंभीर और असामान्य परिवर्तनों के आशय को जो इस देश के लोकमत में हो रहे हैं यथार्थ रूप से समझेगी। नये भावों की राशि इकट्ठी हो रही है जिससे बडी सावधानी के साथ काम लेना चाहिये। देश में एक नई सतति तैयार हो रही है जिसने ब्रिटिश जाति के चरित्र और आदर्शों के विषय में अपनी राय पिछले कई वर्षों के अनुभव पर निर्माण की है और जिनके स्वतन्त्र विचार के प्रवाह में उन कामों का स्मरण कोई रुकावट नही हो सकता। जो ब्रिटिश सरकार ने अतीत काल में किये हैं। मुझे पूरा विश्वास है कि इन विचारों का मोडना सरकार के वश में है और तब वे इस साम्राज्य के भय के कारण होने की जगह उसके बल और आशा के कारण होगे। इसमें कोई संशय नही है कि यह शुभ फल बलप्रयोग करने से नहीं प्राप्त होगा। देश को इस समय सबसे बडी आवश्यकता इस बात की है कि शासन का अतरग राष्ट्रीय हो चाहे बाहर से वह विदेशी हो—ऐसा शासन जिससे हमें यह प्रतीत हो कि हमारी हितकामना उसके ध्यान में सब के ऊपर है और हमारी इच्छाएं और सम्मतिया उसके लिए कुछ मानी रखती हैं। श्रीमन्, मैंने यह आलोचनायें इसलिए की हैं कि वर्तमान स्थिति बहुत ही असन्तोषप्रद है। मैं अपने क्षीण स्वर से केवल चेतावनी दे सकता हू, अनुनय कर सकता हू। शेष इश्वराधीन है।

होम चार्जेस या विलायती कर।

१५ जुलाई सन् १८९३ई० को 'बम्बई प्रेसीडेन्सी एसोसियशन' के प्रबन्ध से बम्बई निवासियों की एक साधारण सभा फ्रामजी कावसजी हाल में इस उद्देश से हुई थी कि विलायती कर के विषय में एक आवेदनपत्र स्वीकार करके हौस आफ कामन्स मे पेश किया जाय। सर फीरोजशाह मेहता सभापति थे। मि० गोखले ने निम्नलिखित वक्तृता देकर आवेदन पत्र को स्वीकार करने का प्रस्ताव पेश किया।

सभापति महोदय और सभ्य सज्जनो! विलायती कर के से पेचीदा और गम्भीर प्रश्न पर किसी प्रस्ताव को पेश करने का उत्तरदायित्व अपने ऊपर लेने म मै अवश्य ही कुछ आनाकानी करता, परन्तु लगभग दो महीने हुए, हौस आफ लार्डस में लार्ड नार्थब्रुक की प्रेरणा से इस विषय पर जो वादविवाद हुआ था उसने मेरा काम बहुत सरल कर दिया है। महाशयो! म खयाल करता हू और मुझे विश्वास है कि आप मेरे इस विचार से सहमत होगे कि लार्ड नार्थब्रुक ने इस अन्याय के विरुद्ध जो हिन्दुस्तान के साथ विलायती कर के विषय म बहुत दया से होरहा है, अपने विरोध को स्पष्ट और जोरदार शब्दो में उठाकर भारतवासियों का सच्चा हित साधन किया है। यह स्पष्ट है कि लार्ड नार्थब्रुक

इस मामले की तह तक पहुचना चाहते हैं। क्योंकि १५ मई के बाद विवाद के अनन्तर उन्होंने अब यह प्रस्ताव पेश किया है कि सन् १८७४ और १८७६ के बीच में (उस समय जब वह भारत के वाइसराय थे) इस विषय पर जो पत्रव्यवहार भारतीय गवर्नमेंट और सेक्रेटरी आफ स्टेट में हुआ, वह पेश किया जाय। महाशयो ! यह वास्तव में हमारे लाभ की बात है कि लार्ड नार्थब्रुक सा दूरदर्शी और धैर्यशील व्यक्ति इस अवसर पर भारत के लिये न्याय चाहता है। क्योंकि यदि इसका कुछ अर्थ है तो यही कि वर्त्तमान प्रबन्धों में कुछ न कुछ ऐसे दोष अवश्य है जो नितान्त असहनीय हैं। स्मरण रखिये कि लार्ड नार्थब्रुक इस मामले को आवश्यकता से अधिक जानते है और उनका हर शब्द महत्वपूर्ण है। वे एक समय में भारत के वाइसराय थे और उसी वक्त हौस आफ कामन्स की एक चुनी हुई कमेटी ने इस विषय की पूरी छानबीन करके यह रिपोर्ट की थी कि हिन्दुस्तान पर ऐसे बहुत से खर्चों का अनुचित बोझ डाल दिया गया है कि जो यदि वास्तव में न्याय किया जाय तो उन्हें इङ्गलैंड के राजकोष से अदा करना चाहिये। स्वभावत ही लार्ड नार्थब्रुक को इस प्रश्न पर पूरा विचार करना पडा। और उन्होंने भरसक भारतवर्ष की सहायता की, फिर विलायत जाकर चन्द वर्ष तक वे बराबर जाच के उस कमीशन में सम्मिलित होते रहे जो इस मामले की छान बीन करने के लिये इङ्गलैंड के कोष विभाग की ओर से नियुक्त किया गया था। इससे आप को मालूम होगा कि लगभग २० साल से लार्ड नार्थब्रुक का ध्यान इस पर बना रहा है जैसा कि उन्होंने स्वयम् हाउस आफ कामन्स में कहा था। अत इस विषय में वे जो कुछ भी कहें

उसका प्रत्येक शब्द महत्व का है। फिर यह भी स्मरण रखिये कि यह प्रश्न लार्ड नार्थब्रुक ही का उठाया हुआ नहीं है। भारतवर्ष के प्रसिद्ध नेता जैसे रावर्ट नाइट, मार्टन वोड, कृष्णदास पाल, नौरोजी फरदूजी और दादाभाई नौरोजी हमेशा इसके विरोध में ऊंची आवाज उठाते रहे हैं। मेरे मित्र मि० वाचा ने भी जातीय कांग्रेस के पहले उत्सव में इस विषय पर एक सारगर्भित व्याख्यान दिया था। मैं उस व्याख्यान को अच्छा इसलिये कहता हूं कि यदि आप उसको पढ़ें तो आपको जान पड़ेगा कि हमारे योग्य मित्र ने उन अनेक शिकायतों का कथन उसी समय किया था जिन्हें लार्ड नार्थब्रुक ने अब प्रकट किया है। और फिर यह बात भी ध्यान देने योग्य है कि हमारे मित्र ऐसे गम्भीर प्रश्नों पर कैसी तल्लीनता और मिहनत के साथ विचार करते हैं और वे इन विषयों में कैसे पारङ्गत हो गये हैं।

महाशयो! इस प्रश्न का एक यह अंश भी ध्यान देने योग्य है कि भिन्न भिन्न गवर्नर जनरलों और भारतमन्त्रियों ने इस कर की अधिकता और अनौचित्य के विरोध में अपनी अप्रसन्नता प्रकट की है। लार्ड मेयो ने इसके विरुद्ध स्वर ऊंचा किया, लार्ड नार्थब्रुक ने थोड़े दिन हुए जब इसका विरोध किया था और अब भी कर रहे हैं, लार्ड रिपन ने इसके विरुद्ध लिखा और निहायत स्पष्ट और सबल शब्दों में लिखा। मार्कुइस आफ रिपन ने ब्रिटिश सरकार के मन्त्रियों से इस प्रश्न पर बड़ी सरगर्मी से विवाद किया था, लार्ड डफरिन ने इन्हीं का अनुसरण किया और लार्ड नार्थब्रुक की १५ मई वाली वक्तृता से तो यह प्रमाणित होता है कि लार्ड लेन्सडोन ने भी इन करों के विरोध में राय दी है। अब भारत-

मन्त्रियों के समूह को लीजिये। सर चार्लस वोड, सर स्टरा फोर्ड नार्थ कोट, ड्यूक आफ अरगाइल, लार्ड सालसबरी, लार्ड हार्टिंगटन, लार्ड केम्बरले, लार्ड क्रास, इन सब ने अपने २ शासन काल में इङ्गलैंड के फौज विभाग और सैनिक विभाग से इस बात पर वादविवाद किया है कि सैनिक खर्च जो विलायती कर के रूप में भारतवर्ष को देने पडते हैं वे बहुत अधिक और अन्यायपूर्ण हैं। लार्ड केम्बरले ने स्वयम् इस बात को स्वीकार किया है कि ब्रिटिश सरकार के अन्य मन्त्रियों की अपेक्षा भारत-मन्त्री का प्रभाव साम्राज्य में सब से कम होता है। यही कारण है कि इन लोगों का कथन और प्रयत्न, तथा अब तक का वाद विवाद सब निष्फल गया! यह बात धन्यवाद के योग्य है कि लार्ड नार्थब्रुक ने इस प्रश्न को हल करने के लिए पार्लमेंट की सहायता चाही है और यह बात भी हमारा साहस बढा रही है कि हौस आफ कामन्स में हमारे मित्रों जैसे कि मिस्टर कीन, मि० मजरलीन इत्यादि ने लार्ड नार्थब्रुक को उत्तेजित करने के उद्देश्य से कुछ तदबीरें आरम्भ की हैं। महाशयो! लार्ड नार्थब्रुक ने जिस प्रश्न पर विवाद करना शुरू किया है और जिससे कि इस समय हमारा तात्पर्य है वह विलायती कर के उस अंश से सम्बन्ध रखता है, जिसे सैनिक कहना चाहिये। विलायती कर की पूरी रकम तो बहुत ही अधिक है और इसी तरह फौजी खर्चा की भी कुल संख्या बहुत ज्यादा है। परन्तु यहाँ पर हम न विलायती कर की कुल रकम पर विवाद करते हैं और न सैनिक व्यय पर। हमको इस वक्त विलायती कर के केवल सैनिक अंश पर विवाद है। यह रकम इस वर्ष सात करोड रुपये तक पहुची है। आप में से अधिकांश को विदित होगा

कि इसको दो बराबर भागों में बांटा गया है। पहले भाग में एक तो वह रकम शामिल है, जो हर साल सैनिक विभाग को भेजी जाती है, इसलिए कि जो सेना भारतवर्ष में रक्खी जाती है उसकी भर्ती और शिक्षा विलायती सेना विभाग के ही निरीक्षण में होती है। फिर एक और बड़ी रकम इस कारण से भेजी जाती है कि इन सेनाओं के लिए वहाँ से सामान खरीदा जाता है। एक पर्य्याप्त रकम इण्डियन ट्र प सर्विस पर खर्च की जाती है। अर्थात् उन जहाजों पर जो इस सेना को विलायत से लाते और ले जाते हैं। इसके अतिरिक्त अंग्रेजी सेना के अफसरों का भत्ता भी इसमें शामिल है। दूसरे भाग में अधिकांश वह रकम सम्मिलित है जो सेना विभाग को अंग्रेजी सेना के वेतन और पेन्शनों की बाबत भेजी जाती है और जो विलायत से यहा कुछ दिनों के लिए विशेष रूप से आते है। इसी में इण्डियन सर्विस की तनख्वाहें और पेन्शनें भी शामिल है।

महाशयो! यह बड़े दुर्भाग्य की बात है कि इंगलेंड और भारतवर्ष की सेनाएं सम्मिलित हो गई है अर्थात् पिछले ३० साल से यह विलायती सैनिक महसूल किसी न किसी बहाने से प्रतिवर्ष बढ़ता ही जाता है। यद्यपि भारत सरकार और भारत मन्त्री बराबर इसके विरुद्ध लिखापढ़ी करते रहे है। यह केवल इस कारण से होता है कि इंगलैण्ड के मन्त्री अपने खर्चों का बोझ हलका करना चाहते है और भारतवर्ष पर वह बोझ डाल सकते है क्योंकि अंग्रेजी पार्लामेण्ट में भारतवर्ष की आवाज का कुछ महत्व नहीं। अपने मतलब को समझाने के लिए कुछ सख्याओं पर मैं आपका ध्यान आकर्षित कराया चाहता हूं। ३० साल पहले अर्थात् १८६२ ई० में विलायती

सैनिक महसूल की कुल रकम दो मिलियन पोण्ड से कुछ अधिक थी, आज यह रकम पांच मिलियन पौण्ड तक पहुंची है। इन ३० साल में से हर साल की संख्यायें देकर मैं बहुत समय न लूंगा। हां इन ३० वर्षों को ६ भागों में बांट कर प्रति पांच वर्ष का औसत आपके सामने रक्खूंगा। १८६२ से १८६७ तक यह औसत २½ मिलियन वार्षिक से कुछ कम था, १८६७ से १८७२ तक यह औसत ३½ मिलियन के लगभग जा पहुंचा, १८७७ में औसत ३ मिलियन छ सौ हजार पोण्ड था, १८७७ से १८८२ तक चार मिलियन से अधिक हो गया। इसके आगे पांच वर्ष में कुछ बेशी नहीं हुई। और पेन्शनों को बांटने की एक नई स्कीम १८८४ में जारी होने के कारण यह ख्याल किया गया कि अब क्रमश बेशी होने का सिलसिला बन्द हो गया। क्योंकि इससे पेन्शन की रकम में कुछ कमी हो गई थी। लेकिन १८८७ से १८९२ तक यह रकम बढ़कर ४½ मिलियन हो गई और १८९२—९३ में पूरे पांच मिलियन पर पहुंच गई। महाशयो! आप ने विचार किया होगा कि किस तरह लगातार यह महसूल बढ़ते रहे और ३० बरस में यह रकम दूनी हो गई। इसके अतिरिक्त इस कर के कारण भारतवर्ष की प्रजा पर इस लिए और भी अधिक, अशक्य बोझ पड़ रहा है कि बट्टे का भाव घट गया है। यदि आप इस बट्टे के भाव पर भी ध्यान दें तो विदित होगा कि ३० साल पहले की अपेक्षा भारतवर्ष इस कर की तिगुनी रकम अदा कर रहा है। फिर जब आप इस पर विचार करते हैं कि खर्च की वह रकम जिस का खर्च करना भारत सरकार के अधिकार में है, क्रमश कम होती जाती है। और जो कुछ सामान सेना

के लिए एकत्र किया जाता है उसका एक अंश भारतवर्ष ही में खरीदा जाता है। तो उक्त रकम की बेशी और भी अधिक असह्य प्रतीत होती है। अब मैं इन खर्चों के विवरण का संक्षेप में उल्लेख करूंगा। पहली मद में तो वह रकम है जो सेना विभाग को हर साल फौज की भर्ती के खर्च के लिए विलायत भेजी जाती है, अनुमान से यह रकम ¾ मिलियन पौन्ड हुआ करती है। परन्तु गत वर्ष पूरे एक मिलियन पौन्ड भेजे गये हैं। १८७७ ई० से अंग्रेजी और हिन्दुस्तानी फौजें सम्मिलित रक्खी गई हैं इस लिए भारत सरकार को विवश होकर अपनी अंग्रेजी सेना के लिए विलायती सेना विभाग के आश्रित रहना पडता है। और इसी कारण से भर्ती के खर्च के लिए सेना विभाग जो रकम मांगे, देनी पडती है। इस भर्ती के प्रश्न के सम्बन्ध में कई मनोरंजक बातें उल्लेख करने योग्य हैं। मैं आपको इन सब के सुनने का कष्ट न दूंगा केवल एक ही घटना सुनाऊंगा। सेना विभाग के कुछ उच्च अधिकारियों ने कई बार यह विचार प्रकट किया है कि भर्ती के खर्चों के लिए जो रकम सेना विभाग वसूल करता है वह आवश्यकता से बहुत अधिक है। यदि भारत सरकार को इस विषय में कार्य करने की पूरी स्वतन्त्रता दे दी जाय तो वह इस रकम के एक थोडे से अंश में अपनी आवश्यकतानुसार सेना प्रस्तुत कर सकती है। सर चार्ल्स डल्क जो इन विषयों में पारङ्गत समझे जाते हैं अपने ग्रन्थ "इम्पीरियल डिफेन्स" में लिखते हैं कि भारतवर्ष से जो रुपया इस समय उक्त उद्देश्य से लिया जाता है वह बहुत अधिक है। यदि भारत सरकार पर ही अंग्रेजी सेना प्रस्तुत करने का काम छोड दिया जाय तो लगभग यह सारी रकम भारतवर्ष को बच सकती है।

दूसरी मद सामान प्रस्तुत करने की है। यह रकम बढ़ती घटती रहती है, परन्तु ½ मिलियन पौन्ड से कम कभी नहीं होती। गत वर्ष तो यह रकम नौ सौ हजार पौन्ड तक पहुंच गई थी। इस में भी भारत सरकार के अधिकार परिमित हैं। और उसको अपना सामान विवश हो कर विलायत के सेना विभाग से खरीदना पड़ता है। कई बार यह शिकायत की गई कि उक्त सेना विभाग बहुत महगे मूल्य में हमें सामान देता है और पूरा लाभ उठाता है। तीसरी मद इण्डियन ट्रूप सर्विस की है। महाशयो! मैं इससे पहले बता चुका हूं कि यह रकम उन जहाजों के खर्च में अदा की जाती है जो अंग्रेजी सेना को इंगलैण्ड से भारतवर्ष को लाते और ले जाते हैं। यह जहाज भारतवर्ष ही की सम्पत्ति से तैयार होते और उसी के खर्च से रक्खे जाते हैं। गत वर्ष इस मद में २४० हजार पौन्ड खर्च किये गये। इस विषय पर कई बार बहुत जोर दिया गया है कि वर्त्तमान में तीन जहाजों का विशेष रीति से हर समय सेना के लिये मौजूद रखना अनावश्यक है। विशेषत जब कि उनका खर्च इतना अधिक है। विलायती सेना मुसाफिरी जहाजों पर ही भले प्रकार आजा सकती है। सरकार के इन जहाजों को केवल फौजी आवश्यकताओं के लिए पृथक् रखने में एक बड़ी रकम का अपव्यय होता है। क्योंकि वास्तव में साल में पांच महीने यह जहाज बिल्कुल बेकार रहते हैं और कर्मचारियों का वेतन १२ हों महीने बराबर दिया जाता है।

अब भत्ते को लीजिये। यह एक छोटी सी मद है और मैं इस पर अधिक न कहूंगा। यहां तक तो मैंने पहले भाग का कथन किया अब दूसरे भाग पर ध्यान दीजिये।

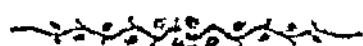
इसमें दो मुख्य मद्दें हैं एक तो उस ब्रिटिश सेना की तनख्वाहें और पेन्शनें जो भारतवर्ष से भेजी जाती हैं दूसरे इंडियन सर्विस के पेन्शन पाये हुए नौकरों की तनख्वाहें और पेन्शनें। पहली मद्द में अब उतना रुपया व्यय नहीं होता जितना कि १८८४ ई० से पहले खर्च होता था। और गत वर्ष इस मद्द में केवल ½ मिलियन पौन्ड खर्च हुए। परन्तु जैसा कि १८८४ में भय था और जैसा कि लार्ड केम्बरले और लार्ड नार्थब्रुक ने अपनी १५ मई वाली वक्तृताओं में कहा है, यह खर्च अब दिन ब दिन बढ़ता जायगा। और यदि यही दशा रही जैसी कि अब है तो बहुत शीघ्र यह पहले की रकम से भी अधिक हो जायगा। इसी विषय में लार्ड नार्थब्रुक ने यह भी कहा था कि गत १४ या १५ वर्ष में सेना विभाग ने लगभग चार मिलियन पौन्ड के ऐसी रकम भारतवर्ष से वसूल की है जो न्याय और औचित्य के बाहर है। अतएव हमारे पास इसके अतिरिक्त और कोई युक्ति नहीं कि इस विषय में हम पार्लामेन्ट से अपनी रक्षा की प्रार्थना करें।

महाशयो! दूसरी मद्द वास्तव में एक कठिन समस्या है। गत वर्ष इस मद्द में एक मिलियन नौ सौ हजार पौन्ड या २⅘ करोड़ रुपया खर्च हो गया। पिछले ३० साल में यह रकम पहले की अपेक्षा दूनी हो गई। मुझे यह मालूम है कि इस प्रश्न में बड़ी कठिनाइयां और अड़चनें हैं। एक ओर तो गवर्नमेन्ट ने अपने कर्म्मचारियों को उन्नति की उचित आशाएं दे रक्खी हैं जिन पर लक्ष्य रखना आवश्यक है। परन्तु दूसरी ओर भारतवर्ष की कंगाल प्रजा के स्वत्व और लाभ हानि का ख्याल रखना सरकार का कर्त्तव्य है। यदि इस

समय इस मामले पर ध्यान न दिया गया तो नहीं मालूम यह रकम बढ़ते बढ़ते कहाँ तक पहुंच जाय। अतएव हमारी प्रार्थना है कि गवर्नमेन्ट इस मद्द की पूरी तरह से जाच परताल करे और कोई न कोई ऐसा प्रबन्ध करे, जिस से यह दिन व दिन की बाढ़ रुक जाय। परन्तु महाशयो! यदि इस परामर्श पर ध्यान न भी दिया जाय तब भी इण्डियन सर्विस के उच्च अधिकारियों की पेन्शनों की भारी रकम पर दूसरी मद्द में पूरी बचत निकाली जा सकती है। और इसके हम हर तरह से अधिकारी हैं। मेरी राय में इस किफायत से लग भग एक से डेढ़ मिलियन पौन्ड या १½ से दो करोड़ रुपये की बचत हो सकती है। मेरा यह अनुमान कुछ अधिक नहीं। लार्ड नार्थ ब्रुक ने अपने व्याख्यान में इस बात पर भी जोर दिया है, जिसका उल्लेख आपके मेमोरियल में है। गत वर्षों में उन कई आक्रमणों के लिए जो साम्राज्य-नीति के कारण किये गये, प्रायः भारतवर्ष से सेना लेकर अन्य देशों को भेजी गई। उदाहरण के लिए फारस, चीन और हब्श के आक्रमणों को लीजिये। इन सब अवसरों पर सेना का सारा खर्च भारतवर्ष ही ने दिया, इङ्गलैण्ड ने केवल असाधारण व्यय स्वीकार किया। परन्तु दूसरी ओर जब हिन्दुस्तान ने इगलेण्ड से कभी कुछ सेना मगवाई, उदाहरण के लिए १८४६ में सिन्ध की लड़ाई में १८४९ में पंजाब, और १८५६ ई० के गदर में, तो इस सेना के सारे खर्चों का एक एक पैसा जिसमें उनकी भरती का खर्च भी जोड़ा गया था, भारतवर्ष से जबरदस्ती वसूल किया गया।

महाशयो! मेरा अनुमान है कि मैंने इस मामले का कथन करते हुए अधिक स्पष्टवादिता से काम लिया कि जो

भारतवर्ष के सूती माल पर महसूल।



९ मार्च सन् १९०२ ई० को माननीय मि० दादाभाई ने भारतीय व्यवस्थापक कौंसिल में इस विषय का एक प्रस्ताव पेश किया था कि भारत के बने हुए सूती माल पर जो महसूल लगाया जाता है वह दूर कर दिया जाय इस के समर्थन में मि० गोखले ने निम्न लिखित वक्तृता दी थी —

सभापति महोदय ! मैं उस प्रस्ताव का समर्थन करने के लिए खड़ा हुआ हूं जो मेरे माननीय मित्र दादाभाई ने पेश किया है । यद्यपि मेरे समर्थन के कारण उनके और उनके उन मित्रों के कारणों से कुछ भिन्न हैं, जिन्होंने उनके बाद व्याख्यान दिये हैं । महाशय ! मैं इस प्रश्न को कारखाने वालों के नेताओं की दृष्टि से ही नहीं देखता बल्कि समस्त जाति की सामान्य और व्यक्ति गत दृष्टि से देखता हूं । साधारणत यह ज्ञात ही है कि १५ बरस हुए जब यह महसूल लगाया गया था तो सारे देश में दुःख और असन्तोष प्रकट किया गया था । और इस दशा के प्रकट होने के चार कारण थे, उनका ज़िक्र मि० दादाभाई ने अपनी सारगर्भित वक्तृता में स्पष्टता पूर्वक किया है । अतएव मैं उन पर केवल एक सरसरी दृष्टि डालूंगा ।

पहली बात तो यह थी कि सूती माल के कारखानो

की इस वक्त अच्छी अवस्था न थी, दूसरे सिक्का सम्बन्धी सरकार के नए कानून ने कम से कम इस समय तो इस काम को भारी हानि पहुचाई थी, तीसरा कारण यह था कि यह महसूल इस कारण से नहीं लगाया गया था कि भारत सरकार या भारत मंत्री यह महसूल लगाना उचित समझते थे बल्कि इस लिए कि लंकाशायर के व्यापारी प्रबल अनुरोध कर रहे थे कि यह महसूल लगाना चाहिये। भारत सरकार ने उस वक्त भी यह प्रकट कर दिया था कि वह प्रसन्नता पूर्वक इस में शामिल नहीं होती। चौथे यह कि लोगों ने भली प्रकार समझ लिया था कि लंकाशायर के व्यापारी भारत मंत्री पर इस कारण से दबाव नहीं डालते थे कि भारतवर्ष और लंकाशायरवालों में प्रतियोगिता होने लगी थी, बल्कि इस कारण से कि लंकाशायरवाले भारत के कारखानों की उन्नति को असन्तोष की दृष्टि से देखते थे और इस उन्नति के मार्ग में बाधाएं डालना चाहते थे यह मालूम ही था कि लंकाशायर से प्राय बारीक सूत का माल आता था और भारत में उस वक्त तक मोटा माल बनता था। अतएव इन दोनों की प्रतियोगिता में कोई शङ्का न थी। यही कारण थे कि जब यह महसूल लगाया गया तो सब ने क्रोध और दुःख प्रकट किया। इसके विवाद में न्याय को दृष्टिगत रखने के लिए मेरी राय में यह देखना आवश्यक है कि उस समय से अब तक इन बातों में कुछ उलट फेर हुआ है या नहीं।

पहली बात को देखने से ज्ञात होगा कि सूती माल के कारबार की अवस्था अब भी अच्छी नहीं, यद्यपि पहले की अपेक्षा इस कारबार में अधिक लाभ हुआ है। सिक्के के कानून

के विषय में मेरा अनुमान है कि अब यह कारबार इस नई पद्धति को स्वीकार कर चुका है वही सामान्य अवस्था देखने में आती है। उस वक्त इस कानून से जो हानि हुई थी वह अब इस महसूल को हटाने के लिए कारण नहीं मानी जा सकती। तीसरा कारण, यह कि यह महसूल लंकाशायरवालों के दबाव डालने से नियत किया गया था और यह ज्यों का त्यों बना है और अब भी जब इस दशा का स्मरण होता है तो सर्वसाधारण में उसी क्रोध और दु ख का प्रादुर्भाव हो जाता है। अन्तिम कारण अब उतना जोरदार नहीं रहा और न्याय से हमें यह बात स्वीकार कर लेना चाहिये क्योंकि अब कुछ भारतीय कारखाने भी बारीक माल बनाने लगे हैं हां, बहुत कम। और उसीके अनुसार लङ्काशायर और भारतीय कारखानों में प्रतियोगिता पैदा हो गई है। अतएव १५ साल पहिले की अपेक्षा आज की अवस्था में कुछ अन्तर पड गया है। और इस प्रश्न पर पुन विचार करने की जरूरत है, मैं यहा पर यह भी कह देना चाहता हू कि मैंने भी यह प्रश्न लार्ड कर्जन के समय में इस कौंसिल में कई बार उठाया था, और इस महसूल को हटा देने पर जोर दिया था परन्तु यह आजकल की उन्नत अवस्था से पहले का जिक्र है। वर्त्तमान अवस्था ने इस मामले में कुछ फेर बदल कर दिया है, मेरा ख्याल है कि हमको इस मामले पर दो तरह से दृष्टि डालनी चाहिये। अव्वल तो आर्थिक दृष्टि से और दूसरे व्यापारीय नीति की दृष्टि से अर्थात् भारत के लिए कौन सी व्यापारीय नीति उपयुक्त है।

पहिले आर्थिक अवस्था को लीजिये। यह स्मरण रखने योग्य है कि वे लोग जिनकी बात प्रमाण समझी जाती

है इस बात से सहमत हैं कि वे महसूल जो व्यापार की रक्षा के लिए नहीं बल्कि आमदनी के साधनों को बढ़ाने के लिए लगाये गये हैं, उन्हें व्यापार की स्वतन्त्रता के सिद्धान्तों से नहीं जाचना चाहिये। जैसा कि मेरे मित्र मि० दादाभाई नौरोजी ने अभी कहा है। मि० ग्लैडस्टन ने भी जो व्यापार की स्वतंत्रता के बड़े भारी पक्षपातियों में से थे और कोई सन्देह नहीं कि वे उन्नीसवीं शताब्दी के सबसे बड़े प्रसिद्ध और गण्यमान्य अंगरेज़ थे, इस बात की शिकायत की थी कि इस देश में व्यापार की स्वतन्त्रता के सिद्धान्त बड़ी सख़्ती और निर्दयता के नियमों से व्यवहृत होते हैं। अतएव यह साधारण महसूल जो केवल आमदनी की दृष्टि से लगाये गये हैं, व्यापार रक्षा के सिद्धान्तों से नहीं जाचे जाना चाहिये। फिर जैसा कि मिस्टर दादा भाइ नौरोजी ने कहा है कि एक ज़माने में, आनेवाले सूती माल पर १० फीसदी महसूल लगा हुआ था और उस समय भारत के सूती माल पर महसूल लगाने का कोई प्रश्न नहीं उठा। फिर यदि आनेवाले सूती माल पर लगाये गये ३½ फीसदी महसूल को आमदनी का द्वार समझा जाने तो यह प्रश्न ध्यान देने योग्य है कि वह ३½ फीसदी का महसूल जो भारत के सूती माल पर लगाया जाता है क्या हमारी आर्थिक अवस्था की दृष्टि से आवश्यक है। महोदय! आरम्भ में इस महसूल से केवल १० १२ लाख रुपये की आमदनी होती थी जो बहुत छोटी सी रकम थी लेकिन गत वर्ष इससे ४० लाख रु० की आमदनी हुई जो एक पर्याप्त रकम है। और इस बात पर ध्यान रखकर कि अफीम की आय अब न रहेगी, मेरी राय में कोई भी व्यक्ति यह प्रस्ताव न करेगा कि जब तक इतनी आमदनी का कोई

दूसरा द्वार न निकाला जाय तब तक यह आमदनी रद्द की जाय।

परन्तु मैं इसीके साथ यह कहता हूं कि यद्यपि यह रकम आवश्यक है तथापि वह और किसी दूसरे जरिये से प्राप्त की जा सकती है। और आर्थिक दृष्टि से यह महसूल आक्षपणीय है। मेरा कथन यह है कि इन महसूलों का बोझ देश के कगाल निवासियों पर पड़ता है। हां कुछ विशेष दशाओं में उनका बोझ कारखाने दारों पर भी पड सकता है। इगलैंड के टेरिफ सुधार के विवाद के अवसर पर यह प्रश्न उठाया गया है, कि रुपया किस की जेब से निकलता है? और समय समय पर इस विषय के प्राय अविचार-पूर्ण निबन्ध मेरे पढ़ने में आये हैं। मेरी राय में व्यापारीय नीति के पण्डित इस विषय में जो कुछ कहते हैं वह ठीक है अर्थात् साधारणत इस महसूल का बोझ खरीदारों पर पड़ता है और कुछ विशेष हालतों में कारखानेदारों पर। यदि यह बात होती कि भारतीय सूती माल के महसूल का बोझ केवल कारखानेदारों पर ही पड़ता, खरीदारों पर न पड़ता, तो मैं आज इस महसूल को दूर कर देने के पक्ष में न खड़ा होता। मेरे मित्र मिस्टर दादा भाई ने इस बात की शिकायत की है कि कारखानों की दशा इस समय बहुत खराब हो रही है। कुछ अन्य सदस्यों ने भी कहा है। परन्तु मेरा अनुमान है कि यह बता देना आवश्यक है कि इस खराबी के पहले कारखाने वाले बहुत कुछ लाभ उठा चुके हैं। कुछ कारखानों के विषय में कहा गया है कि उन्हों ने ३०—४० और ५० प्रति सैकड़ा वार्षिक लाभ उठाया है। अतएव वर्त्तमान हानि के समय हमें भूतपूर्व लाभ को भी स्मरण रखना चाहिये। यदि

हम अच्छे और बुरे सालों के लाभ और हानि का औसत निकालें तो मुझे विश्वास है कि कारखानों की अवस्था की दृष्टि से हम इस महसूल को दूर कराने पर अधिक जोर न डाल सकेंगे। वर्त्तमान समय की विशेष अवस्था से नजर घुमाने पर स्पष्ट प्रकट हो जाता है कि इस महसूल का बोझ कारखाने दारों पर नहीं पड़ता बल्कि खरीदारों पर पड़ता है और इस मोटे माल के खरीदार निहायत कंगाल आदमी हैं, एतदर्थ इस महसूल का अधिकांश भाग कंगालों की जेब से वसूल किया जाता है, इसी लिए यह बहुत ही आक्षेपणीय है और इसे शीघ्र ही उठा देना चाहिये। रहा आमदनी के घाटे का प्रश्न, उसके विषय में मेरा एक प्रस्ताव है जो मैं व्याख्यान समाप्त करने के पहले निवेदन करूगा। यहाँ तक तो आर्थिक अवस्था का उल्लेख किया गया अब व्यापारीय दशा पर दृष्टि घुमाइये।

रक्षित व्यापार और स्वतन्त्र व्यापार के विषय में मेरे विचार जो हैं उन्हें संक्षेप में प्रकट करता हूँ। आरम्भ ही में मैं यह कह देना चाहता हूँ कि मेरा यह विश्वास नहीं है कि स्वतन्त्र व्यापार हर देश और हर दशा में लाभदायक होता है। जिस प्रकार कोई दूसरा उच्च सिद्धान्त जैसे मानुषिक एक्यता और आचार विचार के सिद्धान्त सामान्यतः सारे संसार में एक से स्वीकार नहीं किये जा सकते। उसी तरह व्यापार की स्वतन्त्रता भी सर्वत्र और सब देशों के लिए उपयुक्त नहीं। यद्यपि अंग्रेज लोग सप्ताह में एक दिन मानुषिक ऐक्यता और समानता का उपदेश देते हैं परन्तु शेष ६ दिन बिलकुल उसके विरुद्ध कार्य करते हैं। और उनकी जल स्थल सेना में बराबर वृद्धि होती जाती है। इसी प्रकार सिद्धान्त पर लक्ष्य रखते

हुए व्यापार की स्वतन्त्रता सारे देशों के लिए भलेही उचित हो परन्तु वह समय अभी बहुत दूर है जब वास्तव में कार्य्य रूप से संसार भर में इसका प्रचार हो सके। और जब तक वह समय आवे, प्रत्येक देश को अपने व्यापार के हित पर पूरा ध्यान देना चाहिये। बहुत से देशों ने रक्षित व्यापार की नीति को पसन्द किया है। पर रक्षित व्यापार दो तरह का है। एक तो उत्कृष्ट और दूसरा अपकृष्ट। उत्कृष्ट रक्षित व्यापार का नियम यह है कि जिस से उद्योग और शिल्प की उन्नति के लिए कारीगरों को सरकार से सहायता मिले और उनका साहस बढ़ाया जाय। और इसका भी ख्याल रक्खा जाय कि कुछ समृद्धिशाली लोगों की समितियों से समस्त जाति को हानि न पहुंच सके। अपकृष्ट रक्षित व्यापार वह है जिसमें कुछ स्वार्थ परायण और प्रभावशालिनी समितियाँ मिलकर रक्षित व्यापार से लाभ उठाती हैं। और टैक्स देने वाली साधारण प्रजा को उससे हानि पहुंचती है।

मेरा विश्वास है कि यदि भारतवर्ष में उत्कृष्ट रक्षित व्यापार का प्रचार किया जाय तो इस देश का हितसाधन होगा। परन्तु भारतवर्ष की वर्त्तमान दशा को देखते हुए मुझे भय है कि इस तरह के व्यापार के प्रचार की आशा कम दिखाई देती है। अतएव मेरे विचार से स्वतंत्र व्यापार की नीति ही उपयुक्त है, हाँ यदि उसके नियमों का पालन उचित रीति से हो। यदि भारत के शासन का कार्य प्रजा की इच्छाओं और सम्मतियों के अनुसार होता अर्थात् भारत सरकार की इच्छा से नहीं बल्कि नियमित रूप से प्रजा की इच्छाओं के अनुकूल। तो इस देश की दशा ही और होती। स्वाधीन उपनिवेशों का शासन, जहाँ

व्यापार को रक्षित बनाने के उद्देश्य से महसूल लगाये जाते हैं (और वास्तव में उपनिवेशों में इस नीति के द्वारा व्यापार की रक्षा के लिये एक सुदृढ़ दीवार खड़ी कर ली गई है) नियमित रूप से प्रजा की इच्छा और राय के अनुकूल होना है, जहाँ इस बात का प्रबन्ध है वहाँ के विषय में यह अनुमान कर लेना ठीक है कि टैक्स देने वाली प्रजा अपने स्वत्वों की भली भाँति रक्षा कर सकती है । और गवर्नमेंट पर भी अपने विचारों का प्रभाव डाल सकती है।

परन्तु हमारी वर्त्तमान दशा यह है कि हम हर तरह भारत सरकार के आश्रित हैं। और भारत सरकार से भी अधिक ऐसे विषयों में भारत मन्त्री या इम्पीरियल कौन्सिल के आश्रित, हैं क्योंकि सारी शक्ति उन्हीं के हाथ में है। हम अपनी राय दे सकते हैं, वर्तमान शासन के दोषों पर आक्षेप भी कर सकते हैं परन्तु अभी वह समय बहुत दूर है जब नियमित रूप से प्रजा की इच्छा और सम्मति के अनुसार ही शासन किया जाय। जब तक ऐसी व्यवस्था न हो, जब तक कौन्सिल में हम वह महत्व प्राप्त न कर लें कि गवर्नमेंट हमारी राय को स्वीकार करके उसी के अनुसार कार्य करे तब तक मेरी राय में स्वतन्त्र व्यापार की नीति ही काम में लाई जाय। हां उसके नियमों का पालन उचित रीति से हो। यह ऐसी नीति है जिससे इस देश की भलाई होगी। अन्यथा समृद्धिशाली धनवान लोगों की प्रभावशालिनी समितियां जो भारत मंत्री तक आसानी से पहुंच सकती है और हम नहीं जा सकते, अवश्य रक्षित व्यापार की नीति से पूरा फायदा अवश्य उठावेंगी और रक्षित व्यापार की शक्तिशालिनी मशीन को भारतवासियों के हित के लिए न घुमाया जा सकेगा, वह उन्हीं समितियों के काम

में आवेगी। इस दशा में हमको रक्षित व्यापार का पक्ष नहीं लेना चाहिये। कम से कम मैं इसमें सम्मिलित होने के लिए तैयार नहीं हू। अतएव मैं इसका समर्थन नहीं करता कि सूती माल पर से इस कारण महसूल उठा लिया जाय कि उससे भारतीय शिल्प की रक्षा होगी। बल्कि मेरी राय है कि इस विवाद से दृष्टि हटाकर हमारा यह कहना कि भारत के सूती माल पर का कर उठा दिया जाय, कम महत्व रखता है।

वक्तृता को समाप्त करने के पहले मैं एक बात और कहना चाहता हू उत्कृष्ट रक्षित व्यापार को प्राप्त करने के लिए हमारे लिए विलायत के दोनों दल एक से हैं। उदार दल तो स्पष्ट स्वतन्त्र व्यापार का पक्षपाती है, हा दूसरा दल रक्षित व्यापार का समर्थन करता है। परन्तु अंतिम चुनाव से पहले होनेवाले वादविवाद में यह स्पष्ट रीति से देखा गया था कि 'टेरिफरिफार्म पार्टी' के लोग, जिसमें मिस्टर बोनर ला, लार्ड कर्जन और मिस्टर चिलफोर शामिल हैं इसके अनुकूल हैं कि इगलैण्ड की नीति तो रक्षित व्यापार की हो परन्तु भारतवर्ष को, जहा तक उससे व्यापारी नीति का सम्बन्ध है कठिन जजीर से जकड कर रक्खा जाय। यह सत्य है कि अनुदार दल के प्रसिद्ध पत्र "मार्निङ्ग पोस्ट" ने कई लेख प्रकाशित किये हैं जिसमें भारतवर्ष की व्यापारीय स्वतन्त्रता का उल्लेख है परन्तु यह स्वतन्त्रता प्राप्त करने के पहले हमे अभी कई सीढियों को पार करना पडेगा और वर्त्तमान समय में तो मैं इस रक्षित व्यापार के प्रश्न को राजनैतिक आन्दोलन से बाहर समझता हूँ।

अन्त में यह प्रस्ताव पेश करूगा कि यह टैक्स भारतवर्ष के केवल बारीक सूती माल तक परिमित कर दिया जावे, जिस

।में भारतवर्ष ओर लकाशायर की प्रतियोगिता आ पड़ती है अर्थात् ३० नम्बर से कम के सूत पर यह महसूल न लगाया जाय। इसका परिणाम यह होगा कि अधिक महसूल दूर होकर कगाल आदमियों पर पडने वाला बोझ हलका हो जायगा। इस हानि को पूरा करने के लिए मेरी राय में विदेशी सूती माल पर ३½ फीसदी के स्थान पर ५ फीसदी कर नियत किया जाय ओर इसी तरह भारत के सूती माल पर भी जो ३० नम्बर के सूत से अच्छा हो ५ फीसदी महसूल लगा दिया जाय। इससे उक्त घटी पूरी हो जायगी।

यदि बाहर से आनेवाला सूती माल २० मिलियन पौन्ड का भी रख लिया जाय तो ७½ फोसदी अधिक महसूल का परिणाम यह होगा कि ३०० हजार पौन्ड अर्थात ४५ लाख रुपया कोष में आवेगा। और वह उस ४१ लाख से अधिक होगा जो यहा के सूती माल से गत वर्ष वसूल किया गया। फिर ३० नम्बर के सूती माल से भी यहा महँगा कर प्राप्त हो सकेगा। इस तरह से कोष को हानि के बजाय अधिक लाभ की सम्भावना है। इन शब्दों के साथ मैं इस प्रस्ताव का समर्थन करता हूँ।

स्वदेशी आन्दोलन।



६ फरवरी सन् १९०७ ई० को राजा रामपाल सिंह के सभापतित्व में मान० मि० गोखले ने लखनऊ की एक सर्व-साधारण सभा में निम्नलिखित व्याख्यान दिया था —

सभापति महोदय और सभ्य सज्जनो! आज मैं आपके सामने भारतवर्ष की व्यवसायिक अवस्था और स्वदेशी आन्दोलन के विषय में कुछ कहना चाहता हूँ। वर्तमान समय में सब से अधिक बढ़ते हुए साहस का चिह्न स्वदेशी का आन्दोलन और उसके विचारों का प्रचार है। पिछले दो वर्ष में यह काम भली प्रकार से हुआ है और उससे पहले भी कई बार ऐसे विचार प्रकट किये गये हैं, परन्तु मेरी राय में फिर एक बार दुहराया जा सकता है कि स्वदेशी आन्दोलन केवल वह आन्दोलन नहीं जो केवल हमारे उद्योग और शिल्प के कारबार से ही सम्बन्ध रखता हो बल्कि स्वदेशी आन्दोलन, व्यापक और सच्ची देशभक्ति का वह ओजपूर्ण अंश है जो जीवन के किसी एक ही भाग में प्रकट नहीं किया जा सकता बल्कि हमारे सारे जीवन पर उसका अधिकार रहता है। और जब तक वह हमारे जीवन पर अधिकार न जमा लेगा तब तक चैन न लेगा। पहली बात जो मैं इस आन्दोलन के विषय में कहना चाहता हूँ वह यह है कि यह आन्दोलन यहाँ से जाने का नहीं। हम ऐसे आन्दोलन प्रायः देखा करते हैं जो थोड़ा

बहुत द्वन्द मचा कर लुप्त हो जाते हैं और उनका कोई दृढ़ प्रभाव शेष नहीं रहता। मेरा अनुमान है कि स्वदेशी आन्दोलन उन आन्दोलनों में से नहीं। बल्कि मेरा विश्वास तो यह है कि वास्तव में इसी आन्दोलन से हमें अन्त में मुक्ति मिलेगी।

महाशयो! इस समय मैं स्वदेशी आन्दोलन के व्यापक प्रभावों का वर्णन नहीं किया चाहता। इस वक्त जो प्रश्न हमारे सामने है वह केवल यह है कि स्वदेशी आन्दोलन का हमारी वर्त्तमान व्यवसायिक अवस्था से क्या सम्बन्ध है। इसकी असलियत क्या है और इसके प्रभाव की परिधि कितनी विस्तृत है। इसके पास अपना प्रभाव जमाने के लिए क्या क्या उपाय हैं? और इस मार्ग में, इससे पहले कि जब वह भारतवर्ष की व्यवसायिक स्वतन्त्रता का कारण हो, क्या क्या कठिनाइयाँ हैं?

महाशयो! एक बार मि० रानाडे ने कहा था कि राजनैतिक मामलों में एक जाति का दूसरी जाति के आधीन होना जितना अधिक विचारणीय विषय है, उतना किसी जाति को व्यवसाय, उद्योग, शिल्प का दूसरी जाति के आधीन होना, विचारणीय नहीं। व्यापारिक परतन्त्रता इतनी प्रभाव जनक नहीं होती और चुपके चुपके अपना काम करती रहती है परन्तु राजनैतिक परतन्त्रता की विपत्तियाँ सामने ही खड़ी रहती है। हम रोज देखते हैं कि एक अन्य जाति हमारी सारी शक्ति और स्वत्व अपने अधिकार में किये हुए है और हमारी जाति को विवश और शासित रखती है। यह हम रोज देखते हैं और क्षण क्षण में अनुभव करते हैं। मनुष्य स्वभाव

के अनुकूल हम कभी २ उन बातों का, जिनसे हमारे हृदय पर चोट लगती है, उन बातों से अधिक अनुभव करते हैं जिन पर हमारा हानि लाभ निर्भर है जब कि आपके हृदय पर जरा जरा सी बातों में चोट लगती है, जैसा कि शासित अवस्था में होने पर अनिवार्य है। (मैं किसी विजातीय पर अनुचित दोषारोपण नहीं किया चाहता) तो आप अवश्य ही रात दिन इसी विचार की उधेड़ बुन में रहते हैं कि हम दूसरों के आधीन हैं। हमारी व्यवसायिक परतत्रता चित्त आकर्षण करनेवाला नवीन परिधान पहिन कर हमारे सामने उपस्थित होती है और राजनैतिक परतन्त्रता साधारण आवश्यकताओं के रूप में हमारे सामने आती है। भारतवर्ष में तो हम इस परतन्त्रता पर विवश हो लट्टू रहते हैं और उसकी चित्तरंजक, मनोहारिणी बातों के शिकार बन जाते हैं और अन्त में जब यह रोग बहुत बढ़ जाता है तब हम इसकी ओर ध्यान देते हैं। ज्यों की त्यों यही दशा भारतवर्ष में हुई। जैसे ही पाश्चात्य शिक्षा ने हमारे देशवासियों की आँखें खोलीं तो उनको चेत होते ही पहले तो अपनी राजनैतिक परतन्त्रता का ख्याल आया फिर अपने सामाजिक दोषों पर उन्होंने ध्यान दिया। जो लोग गत ५० वर्षों के इतिहास से परिचित हैं वे जानते हैं कि राजनैतिक और सामाजिक सुधारों का प्रयत्न एक साथ ही आरम्भ हुआ था। इस अवसर पर मैं उसका उल्लेख नहीं करना चाहता। मेरा उद्देश्य सिर्फ यह बताने का है कि उस वक्त भारतवर्ष को व्यापारीय परतन्त्रता का ख्याल नहीं आया और यदि आया भी तो उसने उनके हृदय पर प्रभाव नहीं डाला, जैसा कि राजनैतिक परतन्त्रता उनके हृदय पर प्रभाव जमा रही थी।

इसका परिणाम यह हुआ कि हमारे सारे प्रयत्न राजनैतिक स्वतन्त्रता को प्राप्त करने की अभिलाषाओं के लिए होने लगे। और २२ वर्ष पहले जब राजनैतिक सुधार के लिए कांग्रेस स्थापित की गई तो व्यवसायिक तबाही की ओर हमारे सुधारकों ने दृष्टि नहीं डाली जिसकी वर्तमान् अवस्था इसके योग्य थी। यद्यपि कुछ बुद्धिमान लोगों ने इस पर ध्यान दिया परन्तु वह काफी न था। अस्तु। अब हमारी औद्योगिक अवस्था अपनी ओर हमारा पूरा ध्यान आकर्षित करा रही है और आज कल तो हम इस ओर इतने तल्लीन जान पड़ते हैं कि यह भय होने लगा है कि हमारे औद्योगिक प्रश्न कहीं राजनैतिक प्रश्नों पर अधिकार न जमा बैठें जो वास्तव में उन सब में मुख्य हैं।

महाशयो! जब हम भारतवर्ष की औद्योगिक परतन्त्रता पर लक्ष्य करते हैं तो हमें ज्ञात होता है कि अंगरेजी शासन का यह सब से बुरा प्रभाव पड़ा है। और मामलों में तो लाभ और हानि दोनों ही जान पड़ते हैं। उदाहरण के लिये अंगरेजी शासन के राजनैतिक प्रभाव को लीजिये, एक ओर तो सारी जाति के अधिकार और मान के द्वार बन्द कर दिये गये हैं जिससे जाति के स्वभावों पर बरबादी का प्रभाव पड़ रहा है। जाति को जबरदस्ती अस्त्र आईन से जकड़ कर विवश कर दिया गया है जिससे जातीय शक्ति और बहादुरी का लोप होता जा रहा है। इन बातों पर लक्ष्य रखते हुए जाति विपत्तियों के गड्ढे में गिर रही है। परन्तु दूसरी ओर इसके विनिमय में कुछ भलाई की सूरतें भी हैं और यह भी निश्चय रीति से नहीं कहा जा सकता कि इनका पल्ला भारी नहीं। उदाहरण के लिए पाश्चात्य शिक्षा का प्रचार और स्वतन्त्रता का जलवायु जाति के लिये बड़ा लाभदायक प्रमाणित हुआ

है, समानता की आवश्यकताओं को हम अच्छी तरह समझने लगे हैं। हम यह भी अनुभव करने लगे हैं कि जब तक स्त्रियों को ऊंचा पद नहीं दिया जायगा, केवल पुरुष उन्नति क्षेत्र में पग आगे नहीं बढ़ा सकते। निर्धन पाश्चात्य शिक्षा इस देश में अच्छा काम कर रही है फिर ब्रिटिश राज्य में सब के साथ समान न्याय होता है, अर्थात् भारतवासियों के बीच में। जहां भारतवासी और अंगरेज का प्रश्न उपस्थित होता है तो उसकी बात ही दूसरी है। परन्तु भारतवासियों के बीच में एक सा न्याय अवश्य होता है। हां इसके प्राप्त करने में रुपये का विशेष व्यय होता है, पहले शासकों के जमाने में यह बात नहीं थी। रेल, बिजली का तार, डाक तथा उच्च सभ्यता के अनेकों साधन इन्हीं की बदौलत भारतवर्ष में प्रचलित हुए हैं। और सच तो यह है कि इन्होंने व्यवहारिक जीवन में बड़े सुभीते पैदा कर दिये हैं और भविष्य की उन्नति में उनसे बड़ी सहायता मिलती है। फिर चारों ओर शान्ति का साम्राज्य है यह भी सब से बड़ी बात है।

उन हानियों के विनिमय में जिनका उल्लेख हमने ऊपर किया है यह लाभ भी हमें प्राप्त हैं। और मैं यह कहने के लिये तैयार नहीं हूं कि लाभों का पल्ला भारी नहीं है। परन्तु जब आप औद्योगिक अवस्था पर दृष्टि डालते हैं तो ज्ञान होता है कि ब्रिटिश शासन का इस पर नाशकारक प्रभाव पड़ा है। हम इधर हानि ही हानि देख रहे हैं लाभ बहुत कम दिखाई देता है यह बड़ा भारी दोष है। परन्तु मैं समझता हूं कि यह उचित प्रमाणित किया जा सकता है। मैं आप से प्रार्थना करूंगा कि पहले तो भारतवर्ष की उस औद्योगिक अवस्था पर दृष्टि डालिये जो अंगरेजों के आने के पहले थी। यह ठीक

है कि इसकी साक्षी रूप में सबूत नहीं पेश की जा सकतीं परन्तु उन यात्रियों के लेखों से जो उस जमाने में भारतवर्ष में आये थे, यहां की अवस्था पर पर्याप्त प्रकाश पड़ता है यद्यपि उनसे जो परिणाम निकलता है वह बिलकुल ठीक और विश्वासयोग्य नहीं कहा जा सकता, उदाहरण के लिये हम अनेक जगह भारतवर्ष की समृद्धिशालीनता का वर्णन पाते हैं तो किसी किसी जगह सर्वसाधारण की दीनता का उल्लेख मिलता है, तथापि यह कहना न्यायसंगत है कि भारतवर्ष की दशा उनदिनों खराब न थी बल्कि अनेक देशों की अपेक्षा उसकी अवस्था अच्छी थी और यह अवस्था मुसलमानी राज्य के अन्त तक रही।

भारत पर अनेकों आक्रमण होने का कारण उसकी समृद्धिशालीनता का चर्चा ही था।

यहां अत्याधिक सम्पत्ति भरी हुई थी। और जहां तक सर्वसाधारण जनों का उल्लेख है—भूमि उर्वरा थी—किसान लोग परिश्रमी और मितव्ययी थे। अधिकांश शराब आदि नशेबाज़ी की आदतों से कतई अलग थे। इन सब बातों पर लक्ष्य रख कर यह निष्कर्ष निकालना कि किसानी हेसियत से उनकी आर्थिक अवस्था संतोषजनक थी, कोई अनुचित नहीं जान पड़ता। भारतवर्ष की २०० वर्ष की प्राचीन अवस्था का पश्चिम की तत्कालीन अवस्था से मुकाबिला करना जब कि वहां मशीनों और जहाजों की शक्ति से पूरा लाभ उठाया जाता था, उचित नहीं। धुए के जहाजों तथा अन्य कलों का आविष्कार होने से पहले पश्चिम में भी धन पैदा करने के साधन प्राय ऐसे ही थे जैसे हमारे यहां। और वहां के

देश भी कृषि प्रधान थे। उस जमाने के उद्देश्य और अवस्थाओं से यदि अनुमान किया जाय तो ज्ञात होगा कि हम बहुत निर्धन नहीं थे बल्कि प्राय पश्चिमी देशों से धनवान थे। यहा के माल की उत्तमता पर पाश्चात्य जातिया भी आसक्त हो रही थीं। और ढाके की बारीक मलमल तथा अन्य चीजें जो यहां से बाहर जाती थीं बड़ी बढ़िया होती थीं। इससे इस बात का अनुमान किया जा सकता है कि हमने उद्योग और शिल्प में कैसी पूर्णता प्राप्त की थी। जब मुसलमान यहा आये तो वे यहीं बस गये, सम्पत्ति को बाहर खींच कर लेजाने का कोई प्रश्न नहीं उठा। अतएव पहले ही की तरह सब उद्योगों में बराबर सुधार होता रहा। इसके बाद ब्रिटिश शासन का समय आता है। महाशयो! मैं इस अवसर पर भूतपूर्व बातों का उल्लेख इस लिये करता हू कि उनके प्रकाश में हम वर्त्तमान और भविष्य की अवस्था के पाठ पढ सकें।

भारतवर्ष की औद्योगिक हीनता के लिए 'ईस्ट इण्डिया कम्पनी' के शासन का समय उतना ही हानिकारक था जितना कि हो सकता था। कम्पनी ने जान बूझ कर ऐसी नीति का अनुसरण किया कि जिससे भारतवर्ष के उद्योग और शिल्प का सर्वनाश हो और पाश्चात्य पदार्थ उनका स्थान प्राप्त कर सकें। इसे स्वयम् अंग्रेज लेखको ने भी स्वीकार किया है। इंगलैंड की यह कूटनीति भारतवर्ष ही तक परिमित न थी। बल्कि अमेरिका और आयर्लैण्ड के साथ भी यही सुलूक किया जा रहा था।

अमेरिका ने तो परतन्त्रता का तौक ही गले से उतार फेंका और उससे मुक्त हो गया, आयर्लैंड ने प्रबल आन्दोलन किया

परन्तु सफलता भाग्य में न थी और भारतवर्ष ने तो महान् आपदाएँ झेलीं।

ईस्ट इण्डिया कम्पनी का यह उद्देश्य था कि भारतवर्ष को कतई खेती का देश बना दिया जाय जिसमें कच्चा माल स्वयं पैदा हो परन्तु माल तैयार करने के लिए कारखानों का नामनिशान न रहे। हमारी औद्योगिक हीनता का यह पहला सूत्र था। दूसरा सूत्र उस समय आरम्भ हुआ जब कि इगलेंड ने जबरदस्ती हमें स्वतंत्र व्यापार की नीति का अनुसरण करने पर बाध्य किया, जिसके कारण हमसे सारे देश प्रतियोगिता करने लगे। इगलेंड ने सैकड़ों बरस तक रक्षित व्यापार की नीति का अनुसरण किया और उसने उद्योग और शिल्प के क्षेत्र में जो कुछ उन्नति की वह सब इसी की बदौलत। परन्तु साठ बरस हुए जब उसने इस नीति को बदल डाला क्योंकि अब रक्षित-व्यापार की आवश्यकता बाकी न रही थी। इसलिए उसने स्वतंत्र व्यापार का अनुसरण किया जिससे रक्षित व्यापार से होनेवाली कुछ हानियां भी दूर हो जायें।

कच्चा माल हासिल करने के लिए इगलैंड सदा ही दूसरी जातियों पर निर्भर रहा है जिसके विनिमय में वह सारे संसार को देने के लिए नये नये पदार्थ अपने देश में बना कर प्रस्तुत करता है। इगलैंड का लाभ इसमें था कि आने जाने वाले किसी भी माल पर महसूल न हो क्योंकि ऐसे महसूल का अनिवार्य परिणाम यह होता कि पदार्थों का मूल्य बढ़ जाता।

परन्तु भारतवर्ष को इस नीति की स्वीकारी के लिए

याप्य करना एक बिलकुल दूसरी बात थी और इसका अनिवार्य परिणाम भारतीय उद्योग का सर्वनाश था। हम अपने यहा हाथों से चीजें तैयार करते थे, हमारे यहा पश्चिम की सी शिक्षा, उतना साहस और सहयोगी समितिया नहीं थीं। फिर यहा जहाजी शक्ति और कलों का भी प्रचार न था। अतएव यह अनिवार्य था कि हमारे यहा की शिल्पकारियां इस प्रतियोगिता का सामना न कर सकें और बरबाद हो जायँ। और यह बात बिलकुल ठीक है कि स्वतत्र व्यापार की नीति का प्रचार होने के बाद रही सही थोडी बहुत शिल्पकारी का भी सर्वनाश हो गया। और लोगों को विवश होकर खेती के व्यवसाय में लग जाना पडा। मुझे इन शिल्पकारियों के सर्वनाश का कभी गिला न होता यदि गवर्नमेन्ट यहा नये नये उद्योग और शिल्प के कारखानो के खोलने में सहायता देती जो उनका स्थान ले सकते। जर्मन एकानोमिस्ट लस्ट ने, जिसका व्यापार विद्या पर लिखा हुआ एक ग्रन्थ भारतीय विद्यार्थियो के पढ़ने योग्य है, स्पष्ट रीति से समझाया है कि गवर्नमेन्ट, किसी ऐसे देश की किस तरह सहायता दे सकती है कि जो सदा से कृषि प्रधान रहा हो और अब उसको अकस्मात् उद्योगी देशों से प्रतियोगिता करनी पडी हो, जिससे वह अपने नये उद्योगों का प्रचार कर सके, वह लिखता है कि उस देश के लिए, जो उद्योग और शिल्प में औरों से पीछे है और उन देशों से मुकाबिला करना चाहता है जो जहाजों और कलों की शक्तियो तथा विज्ञान के आविष्कारों की सहायता लेते हैं, यह आवश्यक है कि वह अपनी दस्तकारियो का नाश होने दे क्योंकि यह मार्ग भी तै करना ही है। जब कि कलों से

बनी हुई चीज़ों का मुक़ाबिला दस्तकारियों को करना पड़ेगा तो अनिवार्य है कि उनका सर्वनाश होगा। परन्तु जब यह मार्ग\ते हो जाता है तो फिर सरकार का कर्त्तव्य आरम्भ होता है। उस समय गवर्नमेन्ट को उचित है कि रक्षित व्यापार के उचित उपायो से नये २ उद्योगों और कारीगरियों को इस तरह सहायता दे कि वह फल फूल सकें। और जब तक यह कारीगरिया अपने पैरों खड़ी न हो सकें, उस वक्त तक गवर्नमेन्ट को उचित है कि उनके आस पास रक्षित व्यापार की परिधि खींच कर उनकी मदद करे। यही अमेरिका ने किया जो सब से अधिक धनवान देशों में से है और सब से बड़ी समृद्धिवान जाति बननेवाली है। फ्रान्स और जर्मनी में भी ऐसा ही हुआ।

इगलिस्तान की कूटनीति का परिणाम भारतवर्ष में यह हुआ है कि गैर देशों का सामान यहा सुभीते से रोज बरोज धड़ाधड़ चला आता है। सारे ससार में ऐसा कोई दूसरा देश नहीं है जो गैर देशों के सामान पर इतना निर्भर हो जितना कि भारतवर्ष। यहाँ से जितना माल बाहर जाता है उसमें प्राय ७० फी सदी माल कच्चा होता है। यदि हमारे पास पूजी और कलें होतीं और हम में योग्यता और साहस होता तो इस कच्ची पदार्थों से अनेकों पदार्थ तैयार करते और आज इस देश में उद्योग और शिल्प का बहुत विस्तार होता, परन्तु यह सब माल बाहर चला जाता है और वहा से महँगे और अच्छे पदार्थों के रूप में परिणत होकर यहाँ आया करता है।

फिर यदि आनेवाले माल की ओर ध्यान दें तो जान

पड़ेगा कि ६० फीसदी चीजें इसमें से कलों के द्वारा तैयार की हुई होती हैं। यह वह चीजें हैं जो दूसरों ने बनाई हैं और आपका केवल यही काम है कि आप इन्हें उपयोग में लावें। यदि केवल यही होता–अर्थात् सब में बड़ी आपत्ति यही होती कि हमारे शिल्प में काई लग रही होती और खेती ही पर हमारा जीवन निर्भर हो जाता, तथा वर्त्तमान नीति के विरुद्ध हमें केवल यही गिला होता, तो यह भी बहुत ही शोक जनक और शोचनीय था। तथापि यह अवस्था भी उतनी असहनीय न होती। परन्तु राजनैतिक परतन्त्रता और उक्त विपत्ति ने मिलकर एक ऐसी अवस्था पैदा कर दी है कि जो सर्वथा असहनीय है। हमारे देश में १०० करोड़ का माल बाहर से आता है परन्तु इसके बजाय जो माल बाहर जाता है वह १५० करोड़ का होता है।

तात्पर्य यह कि हमारे यहां बाहर से १०० करोड़ का माल आता है और १५० करोड़ का जाता है। इसपर लक्ष्य रखते हुए भी, कि इस हानि के बदले में कुछ सोना चांदी देश में आता है, यह बात जरूरी है कि ३० ४० करोड़ रुपया वार्षिक हानि उठानी पड़ती है। उपस्थित महानुभावों से मैं एक साधारण प्रश्न करूंगा यदि सौ रुपया हर महीने आपके पास आवें और डेढ़ सौ बाहर जावें तो आप धनवान हो जायेंगे या कंगाल? और यदि यह सिलसिला बहुत वर्षों तक अथवा युगों तक जारी रहे तो क्या दशा होगी। हर साल ३० ४० करोड़ रुपया भारतवर्ष से बाहर जाता है जो कभी वापस नहीं आता। यदि इस तरह से बराबर रक्त चूसा जाता रहे तो संसार का बड़े से बड़ा धनाढ्य देश भी अवश्य ही एक दिन बरबाद हो जायगा। रक्त चूसना यह एक कठोर

शब्द है परन्तु इसी सम्बन्ध में पहले पहल इस शब्द का एक गण्यमान्य अंग्रेज ने प्रयोग किया था अर्थात् लार्ड सालसबरी जो इंगलैंड के प्रधान मंत्री थे और उससे पहले भारत मंत्री भी रह चुके थे। वास्तव में इस तरह से रक्त का विनाश होना ही हमारी उन व्यवसायिक विपत्तियों का मूल कारण है जिन का हमें सामना करना पड़ता है। इसका अर्थ यह है कि रुपया यदि देश ही में रहता तो लोगों के काम में आता और उद्योग और शिल्प के कारबार में पूंजी के स्थान पर लगाया जा सकता परन्तु अब हम उसे खो बैठे। परिणाम यह हुआ है कि अब व्यापार व्यवसाय में लगाने के लिए हमारे पास कठिनता से थोड़ी बहुत पूंजी निकलती है। इस बात पर न भूलकर कि कुछ लोग धनाढ्य हैं और उनके पास व्यापार में लगाने के लिए पर्याप्त पूंजी है, हमें इस सम्बन्ध में भारतवर्ष का मुकाबिला अन्य देशों से करना चाहिये, तब आपको जान पड़ेगा कि आपके पास बहुत थोड़ी पूंजी बचती है जिसे आप किसी व्यापार व्यवसाय में लगा सकते हैं। मि० जस्टिस रानाडे ने जो व्यापार और अर्थशास्त्र के अच्छे विद्वान् थे, एक बार यह हिसाब लगाया था कि समग्र भारतवर्ष में ८१० करोड़ रुपया साल से अधिक बचत नहीं हो सकती। यदि यह २० करोड़ भी मान लिया जाय तो भारतवर्ष जैसे विशाल देश में इतनी बचत की क्या हक़ीकत रह जाती है! विशेषतः जब हम इसका मुकाबिला उन सहस्रों करोड़ से करते हैं जो पाश्चात्य देशों के निवासी प्रतिवर्ष बचाया करते हैं!

यही हमारी सब शिकायतों का मूल है। मैं यह नहीं कहता कि दूसरी ओर से इसके प्रतिवाद में कुछ बातें नहीं कही जा सकतीं। उदाहरण के तौर पर यह कहा जा सकता है कि

रेलवे अंग्रेजी पूंजी से बनी है और इनमें लगभग ३७५ करोड़ रुपया लगा हुआ है तो यह न्यायसंगत है कि, भारतवर्ष इस पूंजी का कुछ मुनाफा दे, फिर अंग्रेजों ने नील, चाय तथा दूसरे कारखानों में इंगलैंड की पूंजी लगा रक्खी है। परन्तु यह भी निर्विवाद है कि इस पूंजी का कुछ अंश तो वह मुनाफा है जो उन्होंने इस देश में प्राप्त किया है प्रत्येक दशा में चाहे रुपया विलायत से लाया गया हो चाहे यहां पैदा किया गया हो, रुपया लगाने वाले इसके अधिकारी अवश्य हैं कि उन्हें उसपर उचित व्याज दिया जाय। तथापि इस व्याज की रकम को अदा करके भी भारतवर्ष हर साल ३० करोड़ की भारी हानि उठाता है। सम्भव है कि आप यह पूछने लगें कि राजनैतिक मामलों से उसका क्या सम्बन्ध? बात यह है कि इस हानि का अधिकांश भारतवर्ष की अस्वाभाविक राजनैतिक अवस्था के कारण होता है। मेरा ख्याल है कि यदि हम इस आर्थिक हानि का अंदाजा, जो राजनैतिक कारणों से प्रतिवर्ष भारतवर्ष को सहन करनी पड़ती है, २० करोड़ रुपया करें तो अनुचित न होगा। होम चार्जेस की २७ करोड़ वाली गहरी रकम का अधिकांश इसी मद में लिया जायगा। फिर इसमें अंग्रेज, डाक्टरों, वैरिस्टरों, सौदागरों और दूसरे उद्योगियों की सालाना बचत का रुपया जोड़िये क्योंकि युरोपियन होने के कारण अंग्रेजों के साथ इस देश में विशेष रियायतें की जाती हैं जो उनके भारतीय साथियों के विषय में नहीं की जातीं। फिर अंग्रेज शासक और विलायती सेना की आय भी इसमें जोड़िये, कुल मिलाकर मैं विना अयुक्ति के निश्चयपूर्वक कह सकता हूं कि, इंगलैंड के अधीन होने के कारण भारतवर्ष को २० करोड़ रुपया प्रति-

वर्ष तावान देना पड़ता है और बाकी दस करोड़ की हानि विलायती उद्योग और शिल्प की श्रेष्ठता के कारण उठानी पड़ती है।

यहां तक प्रति वर्ष हमारा रक्त चूसा जाता है आर्थिक दृष्टि से एक बड़ा संकट है और जब तक कि यह भली भांति दूर न किया जाय तब तक सन्तोषजनक स्थिति नहीं हो सकती क्योंकि थोड़ी सी पूंजी से आप क्या कर सकते हैं। कभी २ आप सुनते हैं कि एक कारखाना यहाँ खुला और दूसरा वहा खोला गया। इससे आप धोखा न खाइये यह दशा बड़ी भयानक है—यह मानो एक हाथी और च्यौंटी का युद्ध है! जब आप पाश्चात्य जातियों की आर्थिक शक्ति का अनुमान करेंगे तब आपको विदित होगा कि इस औद्योगिक संसार में हमें जो सामना करना है वह कितना भयानक है। यदि हमारे रक्त की चुसाइ का यह सिलसिला बन्द करना स्वीकार है तो यह अनिवार्य आवश्यकता है कि सरकारी उच्च पदों पर हमारे ही आदमी नियुक्त किये जायँ जिनसे कि पेन्शनों इत्यादि के द्वारा जो रुपया बाहर जाता है वह देश ही में रहे। फिर जो माल असबाब भारत सरकार इगलैण्ड से खरीदती है उसे यथा सम्भव भारतवर्ष ही से खरीदे और अन्य विभागों में भी हमारी दशा अच्छी बनाना चाहिये परन्तु मेरा विचार है कि भारत वर्ष और इगलैण्ड के राजनैतिक सम्बन्धों में कार्यरूप से बड़े बड़े परिवर्तन धीरे धीरे क्रमश ही हो सकते हैं, अकस्मात किसी उलट फेर से हमारी दशा नही सुधर सकती। हमारी भलाई इसमे है कि धीरे धीरे हम अपनी शक्ति को बढ़ाते रहें और फिर उस शक्ति का सरकार पर दबाव डालें। ज्यों ज्यों

हमारी शक्ति बढ़ती जायगी वैसे ही भारतवर्ष की सम्पत्ति का बाहर को खिंचना भी कम होता जायगा।

इस कारण से कि हम विदेशी चीजों पर बहुत कुछ निर्भर हैं, जो आर्थिक हानि हमें उठानी पड़ती है वह वास्तव में हमारी पूरी हानि का एक छोटा सा अंश है अर्थात् यह हानि केवल दस करोड़ की है जो पूरी हानि का लगभग ¼ है। इसका अर्थ यह है कि यदि हम व्यापारिक दृष्टि से पूरे स्वतन्त्र भी हो जावें तब भी शेष ¾ की हानि पर कुछ प्रभाव न पड़ेगा। फिर इस तरह की पूरी व्यापारिक स्वतन्त्रता स्वप्न की सी बात है। वर्तमान में इसके प्राप्त होने की आशा नहीं। मुझे खेद है कि कुछ संख्याओं पर ध्यान देने का कष्ट मैं आपको देना चाहता हूँ क्योंकि इस तरह का प्रश्न बिना संख्याओं के हल नहीं हो सकता। ध्यान दीजिये कि क्या हालत है? आपको मालूम है कि भारतवर्ष कृषि प्रधान देश है। गत जनसंख्या के अनुसार ६५ प्रति सैकड़ा और लार्ड कर्जन की गणना के अनुसार भारत के ८० प्रति सैकड़ा निवासी खेती के व्यवसाय से अपना पेट पालते हैं। पृथ्वी में उपज की अब वह शक्ति नहीं रही। प्रति एकड़ की पैदावार क्रमशः घटती जाती है। यदि आप अकबर के समय की पैदावार का मुकाबिला, जिसका उल्लेख आईन अकबरी में मिलता है, आजकल की पैदावार से करें तो आप को यह देखकर आश्चर्य होगा कि भूमि की दशा अब कितनी खराब हो गई है। इस पर लक्ष्य रखते हुए कृषि की उन्नति का प्रश्न बड़ी कठिनाइयाँ उपस्थित करता है। आपको पुराने नियमों के स्थान पर यथासम्भव उन नये नियमों का, जो पश्चिम में देखे जाते हैं प्रचार करना है, आपको कृषि विज्ञान और अच्छे अच्छे नवीन औजारों से काम लेना सीखना है। फिर

एक आपत्ति यह है कि इस देश में पैदावार का सिलसिला बहुत छोटे परिमाण पर स्थित है। भूमि छोटे छोटे भागों मे विभाजित है, जिस के कारण नए और बहुमूल्य औजारों का उपयोग दु साध्य है, फिर किसानों की अल्पज्ञता और असमर्थता मार्ग में रुकावटें डालती है। तात्पर्य यह कि कृषि की उन्नति धीरे धीरे ही होनी सम्भव है। यह एक उपाय है जिससे इस देश के नवयुवक देश की सहायता कर सक्ते हैं। सरकारी नौकरियो के लिए परस्पर झगडने या वकालत के धन्धे में ही दौड कर घुस पडने के बजाय जिसमे अब स्थान रिक्त नही रहा है, आप में से कुछ नवयुवकों को चाहिये कि कृषि की शिक्षा के लिये विदेशों में जायँ। नये नये उपायों और औजारो का उपयोग सीखें। और फिर वहा से लौटकर कृषि की उन्नति का प्रयत्न करें। ऐसा करने पर तुम केवल अपनी ही खेतीवारी को न सभाल लोगे। बल्कि दूसरों के मार्गदर्शक बनोगे और जब लोग तुमको इससे लाभ उठाते देखेंगे तो वह अवश्य ही आपका अनुसरण करेंगे। गवर्नमेन्ट जिसको अपने कर्तव्यों का अनुभव अभी हाल ही में हुआ है, कृषि के विषय में अब कुछ कर रही है परन्तु इस काम का अधिकाश हमीं को करना होगा। कृषि के अतिरिक्त दूसरा काम सूती माल के कारबार का है। विविध कारखानों के कारबार पर दृष्टि डालने से जान पडता है कि इन कारखानों ने उसतमाम माल का केवल $\frac{1}{4}$ अश बना कर तैयार किया जिसकी भारतवर्ष को जरूरत थी अर्थात् $\frac{3}{4}$ भाग बाहर से आया। सूती माल के कारखानों में इस देश का १६—१७ करोट रुपया लगा हुआ है। शायद आपको यह रकम अधिक जान पडेगी परन्तु इसका मुकाबिला उस रकम से कीजिये जो इसी कारबार में विलायत

के कारखानों में लगी हुई है। केवल लंकाशायर में इन कारखानों में ३०० करोड़ रुपया लगा हुआ है और इस रकम की संख्या बराबर बढ़ती चली जाती है। आप हिसाब लगायें तो ज्ञात होगा कि यदि हम चौगुना माल तैयार करना चाहें तो लगभग ४०—५० करोड़ की पूंजी और लगानी पड़ेगी यह एक दिन में नहीं हो सकता। कोई सन्देह नहीं कि हाथ के करघे काम अच्छा कर रहे हैं और भविष्य में भी उनसे काम की आशा है। परन्तु इससे धोखा न खाना चाहिये। इस काम का अधिकांश कलों ही के द्वारा हो सकता है क्यों कि दूसरे देशों से हम इसी दशा में प्रतियोगिता कर सकते हैं। यदि हम उक्त पूंजी दस या पन्द्रह वर्ष में भी लगा सकें तो मैं बहुत समझूंगा परन्तु मुझे भय है कि इसमें दस बरस से अधिक समय लगेगा। यदि आधी दस बरसों में भी हम इतना माल प्रस्तुत कर सकें जितने की देश को आवश्यकता है तो मैं समझूंगा कि हमने बहुत कुछ किया। हम सबको चाहिये कि हम अपने सारे प्रयत्न इसी ओर लगा दें और जितना शीघ्र सम्भव हो इस मैदान में विजय प्राप्त करें और इस पर भली भांति अधिकार जमा लें। यदि समय हमारे अनुकूल भी हो तो भी यह कार्य बहुत कठिन है अतएव यह सरासर अनुचित है कि अपनी कठिनाइयों में अनावश्यक और अधोत्पादक वादविवादों की वृद्धि करें। इस प्रश्न को अपनी इच्छानुसार हल करने के लिए हमको चारों ओर से जिसमें गवर्नमेन्ट भी शामिल है, सहायता और सहानुभूति की आवश्यकता है। कम से कम वर्तमान में तो हम कलें आदि प्रस्तुत करने के लिये विदेशों पर निर्भर हैं। यदि अपने उद्देश्य को सिद्ध करने के लिए इस बात का पूरा-पूरा ध्यान न रक्खा।

गया कि अकारण ही दूसरों को न छेड़ा जावे तो गवर्नमेन्ट को मशीनों पर २० या २५ फीसदी महसूल लगा देने में कोई रुकावट न होगी और हमको यह हानि पहुंचेगी कि सूती माल तैयार करने की रही सही आशा भी जाती रहेगी।

इसी के साथ इस देश में अच्छी रुई के पैदा करने का प्रश्न भी सामने है। एक समय था कि भारतवर्ष में अच्छी से अच्छी रुई पैदा होती थी जिससे बढ़िया से बढ़िया मलमल तयार होती थी। दुर्भाग्य से अब वैसी अच्छी रुई भी यहाँ पैदा नहीं होती। इसके अनेक कारण हैं अब जो रुई पैदा होती है वह उतनी अच्छी नहीं होती अतएव बारीक सूत प्राप्त नहीं होता। हमें पिछले अनुभव से यह मालूम है कि इस देश में उम्दा किस्म की रुई पैदा हो सकती है। बम्बई की गवर्नमेंट कुछ दिनों से यह कोशिश कर रही है कि इस देश में मिश्र देश की सी रुई पैदा होने लगे और उसको इतनी सफलता भी हुई है कि भारत और मिश्र के बीच का मेल भारत मे पैदा होने लगा है। यदि सिन्ध के सारे रकबे में जिसकी दशा मिश्र से मिलती जुलती है, उस रुई की खेती में सफलता हो तो बारीक सूत का प्रश्न हल हो जावे। इस विषय में सरकार की सहायता परमावश्यक है। अतएव जो लोग स्वदेशी आन्दोलन का जिक्र बड़े जोर शोर से किया करते हैं उनको यह स्मरण रखना चाहिये और समझना चाहिये कि उन पर एक बड़ा भारी उत्तरदायित्व है, जो लोग यह कहते हैं कि हमको गवर्नमेंट की सहायता की कोई जरूरत नहीं वे हमारे मार्ग में कठिनाइयां पैदा करते हैं और इस तरह से वह हमारी उद्योग और शिल्प की उन्नति को ऐसी हानि पहुंचाते हैं जिसे वे नहीं समझते। तथापि

इस सूती माल के उद्योग के विषय में मेरा अनुमान है कि वर्तमान अवस्था साहस बढ़ानेवाली है।'

अब मैं शकर की ओर ध्यान देता हूं। एक समय था जब हम शकर बाहर भेजा करते थे परन्तु अब लगभग ७ करोड़ रुपये की शकर प्रतिवर्ष हम बाहर से मंगाते हैं। दूसरे देशों के शासक अपनी प्रजा को शकर के बनाने में आर्थिक सहायता देते हैं। और उन्होंने ऐसे ऐसे उपाय निकाले हैं जिससे शकर बहुत सस्ती लागत में तैयार होती है। इसके विरुद्ध हम अभी तक उन्हीं पुरानी तरकीबों से काम ले रहे हैं। भारतवर्ष में और विशेषतः आपके प्रान्त में ईख अधिकता से पैदा होती है यदि हम शकर की तैयारी में उन्नति करने का निश्चय करलें, और इस विषय में मैं कह सकता हूं कि आप विलायती शकर से कुछ सम्बन्ध न रक्खें तो हम गवर्नमेंट की सहायता से थोड़े ही दिनों में उतनी शकर तैयार करने लगेंगे जितनी हमें अपने देश के लिये अपेक्षित है। इस सम्बन्ध में कुछ दिन हुए, आपके लेफ्टिनेन्ट गवर्नर का एक लेख मेरी दृष्टिगत हुआ था, जिसे पढ़ कर मुझे प्रसन्नता होती थी। उन्होंने कहा था कि वह बड़े खुश होंगे यदि बाहर से शकर की आमद बिलकुल बन्द हो जावे। गवर्नमेंट और प्रजा के सम्मिलित प्रयत्नों से शकर की तैयारी का प्रश्न सुभीते से हल हो सकता है। इसी प्रकार बंगाल में इङ्गलैंड से बहुत सा नमक आता है यद्यपि अन्य प्रान्तों में अधिकांश भारतीय नमक का ही इस्तेमाल होता है। इतने बड़े विस्तृत समुद्री किनारे के होते हुए भारतवर्ष बहुत अधिक नमक तैयार कर सकता है। इसके अतिरिक्त लगभग २० लाख की छतरियां, ५० लाख की दियासलाइयां और ६० लाख का

कागज हर साल बाहर से आता है। यह सब चीजें अब यहां बनाई जा रही हैं यदि हम यह निश्चय करलें कि हम इन्हीं का उपयोग करेंगे और यथासम्भव उनकी तैयारी और उनके प्रचार में सहायता देंगे तो हम एकदम बाहर से इस माल की आमदनी रोक सकते हैं परन्तु इन सारी बातों के बाद मैं चाहता हूं कि आप इस बात को समझें कि सम्प्रति इस विषय में अधिक आशा नहीं। मैं यह इसलिये नहीं कहता कि आपका उत्साह भंग हो जाये बल्कि मेरी इच्छा यह है कि आप में भरपूर उत्साह और साहस बना रहे परन्तु इसके साथ ही यह याद रखिये कि एक हाथी और च्योंटी का मुकाबिला है। यदि हम इस बात का दृढ़ इरादा करलें कि हम विदेशी वस्तुओं से कोई सम्बन्ध न रक्खेंगे तब भी भारतवर्ष की व्यापारिक हीनता का सुधार न होगा। सम्प्रति भारत वर्ष सारे संसार में सब की अपेक्षा निर्धन देश है इसके विरुद्ध इङ्गलैंड सम्पत्ति का भाण्डार है। भारत सरकार के हिसाब के अनुसार भारतवर्ष में प्रत्येक आदमी की आमदनी का औसत २ पौन्ड या ३०) रु० सालाना पड़ता है। इसके विरुद्ध इंगलैंड में प्रत्येक पुरुष की औसत आमदनी ४० पौन्ड सालाना है अर्थात् इस देश की आमदनी से २० गुना अधिक। यह तो आमदनी का पड़ता हुआ। अब देखिये कि बाहर से माल खरीदने का पड़ता फी आदमी पर क्या पड़ता है? इंगलैंड में बाहर से आनेवाले माल का पड़ता आदमी पीछे १५ पौंड या २२५ रु० है, स्वाधीन उपनिवेशों में १३ पौंड, फी आदमी पड़ता है, लंका में दो पौंड का औसत है परन्तु भारत में यह औसत केवल ६ शिलिङ्ग ५ पेन्स फी आदमी पड़ता है। कुछ ऐसी ही आश्चर्यजनक संख्याएं

और भी मोजूद हैं। उदाहरण के लिए बैंकों का प्रचार इस देश में बहुत कम है और हम अभी इस सम्बन्ध में बहुत बच्चे हैं तथापि इनका खयाल रखने के बाद भी आप देखेंगे कि दोनों में पृथ्वी आकाश का अन्तर है। इगलेंड की बैंकों में १२०० करोड़ रुपया अमानतों का जमा है और वहां की जनसख्या केवल चार करोड़ है परन्तु सारे भारतवर्ष में ५० करोड़ से अधिक रुपया बंकों में नहीं जमा है और फिर इस रकम में वे अमानतें भी सम्मिलित हैं जो अंग्रेज दूकानदारों और सोदागरों की है। सेविंग्ज बैंकों को लीजिये। इगलेंड में इन बंकों में ३०० करोड़ रुपया जमा है, इस देश में १२ करोड़ से अधिक नहीं अर्थात् इस देश का औसत सात आना फी आदमी पड़ता है और इगलंड का आदमी पीछे ७५ रु०—इस से आप सरलता से जान सकते हैं कि इगलंड और भारत वर्ष की शक्ति और साधनों में कितना बड़ा पृथ्वी और आकाश का अन्तर है। फिर यह भी खयाल रखिये कि मशीनें सब विलायत से आवेंगी और जब तक आप मशीनें लगावेंगे और काम शुरू करेंगे, तब तक इगलेंड आप से कुछ और आगे बढ़ जायगा। अस्तु! इस समय जो प्रश्न हमारे सामने है वह बहुत कठिन है और स्वदेशी के प्रत्येक पक्षपाती का यह कर्तव्य है कि यथासम्भव वह इन कठिनाइयों में वृद्धि न होने दे।

हमारे पास साधन कम हैं, कठिनाइयां बहुत हैं। अतएव हमें उचित है कि जिधर से जो सहायता हमें मिले उसको व्यर्थ न जाने दें। यह स्मरण रखना चाहिये कि छोटी छोटी ग्रामीण दस्तकारियों में उन्नति की गुंजायश है। परन्तु हमको सारे संसार का सामना करना है, अतएव सामान्यत हमें

मशीन और इंजनों की शक्ति पर ही भरोसा करना पड़ेगा। इस पर लक्ष्य रखते हुए देखिये कि हमारी वर्तमान आवश्यकताएँ क्या हैं? प्रथम संसार की व्यापारिक अवस्था का ज्ञान हमारे देशनिवासियों को साधारणत बहुत कम है। बहुत कम लोग ऐसे हैं जिन्हें इस बात का ज्ञान है कि सारे संसार की अपेक्षा हमारी क्या दशा है और हमारी ऐसी दशा क्यों है? तथा दूसरों की दशा हमसे कहीं बढ़ी चढ़ी है इसके क्या कारण हैं? दूसरे हमारे पास पूंजी बहुत कम है और उसे लगाने में लोग हिचकते हैं। पारस्परिक विश्वास, मिलजुल कर काम करना, साझे का कारबार इत्यादि बातों का बड़ा अभाव है। तीसरे उद्योग और शिल्प की शिक्षा की बड़ी कमी है। अन्त में यदि हम कुछ नवीन वस्तु बनाने में सफल भी होते हैं तो सारे संसार से प्रतियोगिता करने की आफत हमारे सर पर खड़ी होती है। और आरम्भ में इन नई चीजों का मूल्य कुछ अधिक होना और चीजों का कुछ घटिया होना दोनों बातें अनिवार्य हैं अतएव भारत के बाजारों में उनका प्रचार बहुत कम होता है।

जिस तरह से हमारी आवश्यकताएं भिन्न भिन्न हैं उसी तरह स्वदेशी आन्दोलन का काम करने के नियम भी भिन्न भिन्न होने चाहिये। और हमें इस बात पर ध्यान रखना चाहिये कि जो लोग स्वदेशी का काम हम से भिन्न ढंग पर करते हैं उनसे न झगड़े। जो लोग देश में संसार की व्यापारिक अवस्था के ज्ञान का विस्तार करते हैं और हमको उन्नति का मार्ग सुझाते हैं वह भी स्वदेशी के सहायक हैं। फिर जो लोग अपना रुपया स्वदेशी कारबार में लगाते हैं और स्वदेशी उद्योग, शिल्प की उन्नति के लिए रुपया

खर्च करते हैं वह भी स्वदेशी के शुभचिन्तक और हमारे आन्दोलन के पक्षपाती हैं। इसी प्रकार जो भारतीय विद्यार्थी विदेशों में उद्योग और शिल्प की शिक्षा के लिए रुपया जमा कर के भेजते हैं या वे विद्यार्थी जो इस शिक्षा को प्राप्त करने के लिए विदेशों का प्रवास करते हैं और वहा से लौटने के बाद नये नये उद्योगों का प्रचार करते हैं, या जो उद्योग शिक्षा की देश ही में वृद्धि करते हैं वे सब स्वदेशी के सहायक और पक्ष पाती हैं। स्वदेशी आन्दोलन के यह तीन उपाय वर्तमान में थोड़े ही से लोगों तक परिमित हैं। हाँ एक चौथा उपाय अवश्य ऐसा है जिसमें कि हम सब योग दे सकते हैं और कुछ लोगों के लिए तो केवल यही एक उपाय है, कि जिससे वे स्वदेशी आन्दोलन में भाग ले सकते हैं वह यह कि हम स्वयम् जहा तक हो, स्वदेशी वस्तुओं का ही व्यवहार करें। और औरों को भी इसके लिए उत्साहित करें। इसी तरह से हम उन चीजों की बिक्री का पूरा प्रबन्ध कर सकते हैं, जिन्हें देशी कारीगरों ने तैयार किया है। और नई चीजों की मांग पैदा कर के कारखाने वालों का साहस बढ़ा सकते हैं। सर्व साधारण-व्यवसायिक उन्नति के लिए बहुत रुपया नहीं दे सकते, न वह उद्योग, शिल्प और उच्च शिक्षा के प्रचार में कुछ सहायता दे सकते हैं परन्तु वे अपने यहाँ के उद्योग और व्यापारों की उन्नति के आरम्भ काल में सतोष और उदारता से काम लेकर उनकी रक्षा करके स्वदेशी का बहुत कुछ उपकार कर सकते हैं। ज्यों ज्यों समय बीतता जायगा स्वदेशी माल सस्ता और बढ़िया तैयार होने लगेगा। और यह बात प्रशंसा के योग्य न होगी कि आप उनको उस वक्त खरीदें जब वे अपने अच्छे और सस्तेपन के कारण विलायती माल से

प्रतियोगिता करने में समर्थ हो जायँ। यदि हम अपने यहां की चीजों की बिक्री का प्रबन्ध ऐसी दशा में कर सकें जब वह बहुत सस्ती भी नहीं होती और महंगी भी होती हैं तो निःसन्देह हम अपने व्यापार की रक्षा उसी तरह कर सकेंगे, जिस तरह से कुछ राज्य रक्षित व्यापार की नीति का अनुसरण करके कर सकते हैं। जो लोग यह उपदेश देते फिरते हैं कि लोग यथासम्भव स्वदेशी वस्तुओं का व्यवहार करें वह एक पवित्र कार्य कर रहे हैं और मैं उनसे कहूंगा कि वीरों की भांति आगे बढ़े रहो। और बड़े उत्साह और ओजपूर्ण उपदेश दो। हां इसे न भूलो कि इस ढंग के अतिरिक्त भी स्वदेशी आन्दोलन के कई ढंग हैं। अपना काम संकीर्ण और विद्वेष पूर्ण विचारों के जोश में न करो। यह न कहो कि यह हमारे साथी नहीं, वह हमारे विरोधी हैं, बल्कि ऐक्यता और उदारता के उस जोश में काम करो, जिसका यह मूल मंत्र है कि जो हमारे विरोधी नहीं वह सब हमारे साथ हैं। अपने चित्त के इस दोष को जो दुर्भाग्य से आज भारतीय जनों का स्वभाव सा हो गया है, और जो छोटे छोटे अन्तरों को बहुत बड़ा कर दिखाया करता है दूर करदो क्योंकि हम अपनी वर्तमान दशा में मेल मिलाप, पारस्परिक सहानुभूति और सम्मिलन से ही अपना उद्देश्य सिद्ध कर सकते हैं।

इस सम्बन्ध में मेरा ख्याल है कि मुझे कुछ शब्द उस धारा के विषय में भी कहने चाहियें जो वर्तमान में मेरे कुछ देशवासियों को एक बड़ी भ्रान्ति में डाल रहा है अर्थात् "विलायती वस्तुओं का बहिष्कार" मुझे पूरा विश्वास

कि इनमे जो प्राय बहिष्कार का उल्लेख किया करते है, उससे केवल यह निष्कर्ष निकालते है कि विलायती चीजों की अपेक्षा स्वदेशी वस्तुएँ ही व्यवहार में लानी चाहिये। ध्यान दीजिये तो मालूम होगा कि यह उद्देश्य स्वदेशी के सर्वथा अनुकूल है परन्तु दुर्भाग्य से वहिष्कार-बायकाट के शब्द के साथ यह दोष लगा हुआ है कि आपका वास्तविक उद्देश्य दूसरों को हानि पहुचाना और उनसे बदला लेना है चाहे उसमे आपको भी कुछ हानि क्यो न पहुचे। इसलिए मै ख्याल करता हू कि यही अच्छा होगा कि हम केवल स्वदेशी शब्द का प्रयोग करें और बहिष्कार को तिलाञ्जलि दें क्योंकि उससे लोगों के हृदय मे अवश्य ही हमारी ओर से मनोमालिन्य पैदा होता है। फिर यह भी याद रखिये कि वर्त्तमान औद्योगिक दशा में विलायती माल का कतई वहिष्कार कर देना सर्वथा असम्भव है क्योंकि जब आपने विलायती माल का वहिष्कार किया तो आपको बाहर से आई हुई कोई चीज भी न छूनी चाहिये।

परिणाम यह होता है कि हम ऐसी बातो की चर्चा चला कर, जिन्हें कार्यरूप मे परिणत करने के लिए हम सर्वथा असमर्थ है, दूसरों की दृष्टि मे अपने को हीन बनाते है।

समाप्त करने से पहले मै एक शब्द और कहना चाहता हूँ, इस मुठभेड़ में जिसका हमें सामना करना है, हमें असफलताओं के लिए भी तैयार रहना चाहिये। हमें यह समझ लेना चाहिये कि हमारी उन्नति क्रम क्रम से होगी और आरम्भ में हमारी सफलतायें बिलकुल साधारण सी होंगी। परन्तु यदि हम अपनी धुन के पक्के है और दृढ इरादे के साथ काम करते हैं तो कैसी ही बाधायें क्यों न हों, अधिक

समय तक वह हमारा मार्ग नहीं रोक सकती। यह माना कि औद्योगिक प्रश्न बड़ी कठिनता से हल होनेवाला है परन्तु राजनतिक प्रश्न से ज्यादा कठिन नही है। और मेरी राय में तो दोनों एक दूसरे से जुड़े हुए हैं। महाशयो! भारतवासियो को इस वक्त जो मार्ग तै करने के लिए सामने प्रस्तुत है वह बहुत कण्टकाकीर्ण है, जो काम हमें सौंपा गया है वह बहुत कठिन है। ऐसा दुष्कर कार्य हमारे सामने क्यों रक्खा गया? क्यों हमें इस मँझधार में छोड़ दिया गया? इस भयानक संग्राम में हमें क्या भिड़ा दिया? यह तो भगवान ही जानता है परन्तु यह मेरा विश्वास है और मुझे इसकी आशा है कि हम इस मार्ग को पार कर के ही रहेंगे, काम को पूरा करके छोड़ेंगे। आवश्यकता इस बात की है कि हम भारतमाता की सेवा सच्चे हृदय से श्रद्धा के साथ करें। इस सेवा से अधिक महत्वमयी, पवित्र और उच्च क्या वस्तु हो सकती है। यदि हम भारत की सेवा करेंगे जिस की पवित्र भूमि में उत्पन्न होकर हम बढ़े पले, जिसमें हमारे पूज्य गुरुजन बाप दादा बढ़े पड़े हैं और जिसमें हमारी सन्तान फले फूलेगी, यदि हम उस देश की सेवा करेंगे जिसको प्रकृति ने हर तरह से समृद्धिशाली बनाया है परन्तु खेद है कि मनुष्य ने उसका मान नहीं किया और उसकी सेवा से जी चुराया यदि हम ईश्वर की आज्ञा के अनुकूल इस समय अपने देश की सेवा के लिये कटिबद्ध हो कर तयार हो जायँ तो सन्देह नहीं कि भारतमाता उन्नति के मार्ग में आगे पग बढ़ाती हुई फिर एक दिन संसार की अन्य जातियों के समान होकर सम्मान और गौरव के स्थान पर पहुचेगी।

सन १९०८ का बजट।

अप्रेल सन १९०८ में गवर्नमेंट हाउस कलकत्ते में वायसराय के सभापतित्व में बजट पर जो बहस हुई थी उस पर व्याख्यान देते हुए मि० गोखले ने अकाल इत्यादि सामयिक घटनाओं की विवेचना करने हुए शिक्षा, स्वास्थ्य, और वर्तमान राजनैतिक अवस्था के विषय में कई प्रभावशाली और विचार और बुद्धि से भरी हुई बातें कहीं। शिक्षा के विषय में उन्होंने कहा। "मेरी समझ में यह आवश्यक है कि जिन बातों पर हमारे देश के सर्व साधारण की आर्थिक और सदाचार की दशा निर्भर है उनमें हमारे दिये हुए लगान का जितना भाग व्यय किया जाता है उससे अधिक व्यय होना चाहिये। सेना, पुलिस इत्यादि में उतना ही रुपया व्यय करना चाहिये जितना कि शान्ति रखने के लिये आवश्यक है, किन्तु वर्तमान समय में शिक्षा के विषय में जितना व्यय किया जाय उतना थोड़ा है। मुझे शोक के साथ कहना पड़ता है कि इस विषय में गवर्नमेंट अपना कर्तव्य पूरा नहीं कर रही है। संसार भर में और सब राज्य अपने राज्य भर के बालकों को मुफ्त और जबरदस्ती शिक्षा देना अपना धर्म समझते हैं। गायकवाड़ ने भी अपने राज्य में मुफ्त और जबरदस्ती शिक्षा देना आरंभ कर दिया है। अन्य सभ्य राज्य और गायकवाड़ अपनी प्रजा के लिये जो कुछ कर रहे हैं भारतवर्षीय गवर्नमेंट को भी हमारे लिये

करना चाहिये। ऐसे स्पष्ट कर्तव्य का पालन अवश्य ही करना पड़ता है और एक दिन भी इसके पालन में विलम्ब करना लोगों के ऊपर अन्याय करना है। हम से कभी २ यह कहा जाता है कि इतने बड़े काम के लिये रुपया मिलना असम्भव है। किन्तु, श्रीमन्, मैं फिर कहता हूँ कि रुपया मौजूद है या बिना किसी कष्ट के मिल सकता है। यदि कार्य करने की इच्छा और संकल्प हो तो केवल इस बात की बहस करने में समय नष्ट न होगा कि कार्य में ये २ कठिनाइयां हैं। दूसरा प्रश्न शिल्प सम्बन्धी और औद्योगिक शिक्षा का है, ८० लाख रुपये के व्यय से शिल्प और औद्योगिक शिक्षा देने के लिये एक ऐसा विद्यालय खुल सकता है जिसकी संसार के बड़े विद्यालयों में गिनती हो सके। इससे न केवल देश में शिल्प और औद्योगिक शिक्षा की उन्नति होगी किन्तु लोगों में उत्साह और सन्तोष की भी वृद्धि होगी। मैं सफाई के विषय में कह चुका हूँ। अन्त में खेती का विषय है। इसकी वृद्धि और सुधार के लिये जो रुपया आवश्यक होगा उसके लिये कर्ज लिया जा सकता है, और ऐसे कार्य के लिए रुपया कर्ज लेने की गुञ्जाइश भी है क्योंकि सरकार का साधारण कर्जा केवल लगभग ४३ करोड़ ७० लाख रुपये का है।

श्रीमन्, वर्तमान समय बहुत चिन्ताजनक ... केवल विचारशील और उत्सुक मनुष्य इसी बात ... लगे हुए हैं कि इस चिन्ताजनक समय के ... कैसी अवस्था होगी। वर्तमान समय में ऐसी ... रही हैं जिनका स्वाभिमानी और सहृदय मनुष्यों ... असह्य मालूम होना स्वाभाविक है और ...

सरकारी व्यय की वृद्धि।

[भारतीय व्यवस्थापक सभा का अधिवेशन ता० २८वीं जनवरी, १९११, को था। श्रीमान् लार्ड हार्डिङ्ग सभापति थे। माननीय मिस्टर गोखले ने यह प्रस्ताव किया कि पिछले वर्षों में सरकारी व्यय में जो बड़ी वृद्धि हुई है उसके कारणों की जाँच की जाय। इस प्रस्ताव को उपस्थित करते हुए, मिस्टर गोखले ने यह वक्तृता दी —]

माननीय मिस्टर गोखले —श्रीमन्, मैं यह प्रस्ताव करता हू कि यह कौंसिल गवर्नर-जनरल इन कौंसिल से यह सिफारिश करती है कि सरकारी और गैर सरकारी मेम्बरों के सम्मिलित कमीशन द्वारा उन कारणों की सार्वजनिक जाँच कराएँ, जिनके कारण पिछले वर्षों में दीवानी और सैनिक दोनों ही विभागों के सरकारी खर्च में बड़ी बाढ़ हुई है, जिसमें जहाँ आवश्यक और सम्भव हो व्यय के घटाने के साधन निश्चित किये जायँ।

श्रीमन्, पिछले वर्ष इस कौंसिल की बजट पर बहस, और विशेष कर अर्थ-सचिव के उस अवसर पर प्रयोग किये हुए शब्दों से मुझे आशा हो चली थी कि सरकार स्वयम् ही कम से कम देश के दीवानी खर्च की जाँच करवाएगी। परन्तु यह आशा निर्मूल सिद्ध हुई, और मैं, अतएव अपना यह

कर्त्तव्य समझता हूं कि यह प्रस्ताव मैं कौंसिल के विचार के लिए पेश करूँ। श्रीमन, पिछले बारह साल भारतवर्ष की आर्थिक अवस्था में कई बातों में, बड़े ही मार्के के हुए हैं। कई घटनाओं के संयोग से, जिनका वर्णन मैं अभी करूंगा, भारतीय सरकार को साल ब साल बहुत बढ़ी चढ़ी आमदनी होती गई—बहुत बढ़ी चढ़ी से मेरा अर्थ है, इस देश की दशा को देखते हुए। और कर देने वालों का बोझ किसी हद तक हलका करने में यद्यपि सरकारी कोष की समुन्नति का उपयोग किया गया, परन्तु हिन्दुस्तान ऐसे देश में भरे हुए खजाने के अनिवार्य परिणाम निस्सन्देह प्रकट हो गये, और व्यय का निर्झर प्रत्येक दिशा में इस ढंग से चढ़ता गया कि इस देश के इतिहास में सचमुच उसका दूसरा उदाहरण नहीं है। बड़ी और अपूर्व यह वृद्धि हुई है इसका अन्दाजा इस बात से होता है कि दोही साल हुए, अचानचक और बिना किसी चेतावनी के हमें भारी घाटे के साल का सामना करना पड़ा और घटी भी इतनी कि गदर के बाद उतना घाटा इस देश को कभी नहीं सहना पड़ा है। और गत वर्ष, मानो स्थिति की गम्भीर दशा की ओर लोगों का ध्यान खींचने के लिये, अर्थ सचिव को रु० १,८७ ५० ००० का नया टेक्स, एक ऐसे साधारण वर्ष में लगाने को विवश होना पड़ा, जिसमें न तो दुर्भिक्ष था, न युद्ध ही हुआ या उनमें से कोई ऐसा आशङ्का-जनक कारण ही उपस्थित था जिनका गत वर्षों में सम्बन्ध हमारे मन में नये कर के साथ होता आया है। आर्थिक दशा के इतने अपूर्व और इतने अशान्ति पैदा करने वाले विकास की, मेरी विनम्र सम्मति में, कड़ी जांच करना आवश्यक है, और आज मैंने इस कौंसिल में यह बहस इस

लिये उठाई है कि मैं चाहता हूं कि सरकार इस मामले को जांचे।

श्रीमन्, पिछले वर्षों में सरकारी व्यय में कितनी अधिक वृद्धि हुई है, इसको ठीक ठीक समझने के लिये यह आवश्यक है कि भारतीय आर्थिक इतिहास के कुछ विस्तृत समय की संक्षिप्त रूप से आलोचना की जाय। और यदि कौंसिल मुझे अवकाश दे तो मैं सन् १८७५ से लेकर पिछले ३५ वर्षों की अत्यन्त संक्षेप से आलोचना करने की कोशिश करूं। मैं १८७५ से इसलिये आरम्भ करता हूं क्योंकि, कई बातों में वह वर्ष टकसाली है—साधारण साल भी था—टकसाली इस लिये कि लार्ड लारेन्स, लार्ड मेयो और लार्ड नार्थब्रुक के पुराने शासन काल से उसका सम्बन्ध है। उस वर्ष से आरम्भ कर पिछले ३३ साल के सरकारी आयव्यय की संक्षेप से मैं आलोचना करना चाहता हूं। लेकिन इसके पूर्व मैं इस देश की आर्थिक दशा के विषय में एक या दो साधारण विचार कौंसिल की सेवा में उपस्थित करना चाहता हूं। जो लोग हमारे आय व्यय के चिट्ठे ही को सिर्फ देखते हैं उनके विचार हमारी असली आमदनी या असली खर्च की बाबत कुछ भ्रान्तिमूलक होते हैं। चिट्ठों में कुछ मदें तो थोक और कुछ खर्च घटाकर दिखाई जाती हैं। लेकिन मेरी राय में न तो थोक और न असली मद्दों से हमारे वास्तविक आय व्यय का ठीक ठीक पता चलता है। असली आमदनी जानने के लिये यह जरूरी है कि बड़ी मद्दों से, जिन्हें चिट्ठे में प्रिंसिपल हेडस कहते हैं, मुनाफे, रवादिले, वापिसी तथा अफीम की लागत की रकम घटाई जाय। इसके सिवाय रेल, नहर, डाक और तार आदि से व्यापारी महकमों का खर्च घटाकर आमदनी

नीलाम, और इनमें दीवानी और फौजी महकमों की आमदनी जोड़ देना चाहिये। मैं समझता हूं कि इस रीति से हम अपनी असली आमदनी को ठीक २ जान सकते हैं। गत वर्ष के बजट के अंकों को देखने से—क्योंकि वे ही अभी ताजे हैं—हमें क्या पता चलता है। हम पता लगता है कि चिट्ठे की थोक या वास्तविक आय से एक दम भिन्न, हमारी असली आमदनी लगभग ५२० लाख पौंड या ८० करोड़ रु० होती है। इसमें से ८६० लाख पौंड की आय बड़ी मद्दों से, १० लाख पौंड रेल और नहर से, २० लाख पौण्ड दीवानी के महकमों से और ४० लाख पौंड से कुछ अधिक सैनिक विभाग से हुई है। इस आय से ४० लाख पौंड तो उपजाऊ ऋण के सूद में और १० लाख पौंड प्रतिवर्ष अकाल-फंड में दे दिया जाता है। यदि हम ये २० लाख पौंड घटा दें तो मुल्क की दीवानी और फौजी सल्तनत के लिए ५१० लाख पौंड बचते हैं। इसमें से ३०० लाख पौंड से कुछ अधिक तो दीवानी में और २१० लाख पौंड से कुछ कम फौज में सर्फ किया जाता है। दीवानी के खर्च की मद्दों में १० लाख पौंड तो आमदनी के जमा करने में, १५० लाख पौंड दीवानी के महकमों की तनख्वाहों और इख़राजात में, ५० लाख पौंड दीवानी मुतफर्रिक़ात में और ८५ लाख पौंड दीवानी कामों में खर्च होते हैं। हमारी आर्थिक स्थिति के सम्बन्ध में यह पहिली बात है जिसे मैं चाहता हूं कि कौंसिल याद रक्खे। दूसरी बात जो मैं बताना चाहता हूं वह यह है कि यह असली आय, अफीम की आमदनी को छोड़ कर क्योंकि वह अनिश्चित है और शीघ्र ही एक दम बन्द हो जाने को है, प्रतिवर्ष १॥) फी सदी के हिसाब से स्वयमेव बढ़ सकती है।

जिस रीति से मै इस परिणाम को पहुचा हूं वह बहुत ही गूढ है और उसके वर्णन मे मै कौंसिल को थकाना उचित नहीं समझता। जहा तक मुझसे हो सका है, वहा तक मैने इसकी कोशिश की है कि निर्णय ठीक हो और मैने निर्णय करने के क्रम के विषय में उन सज्जनो से पूछपाछ भी करली है जिनको ऐसे मामलों पर सम्मति देने का अधिकार है मैं समझता हूं कि मैं यह कह दूं कि मैंने इसका पूरा प्रयत्न किया है कि जिन रकमों को छोड देना उचित था वे इस निर्णय से निकाल दी गई हैं और मेरा विश्वास है कि परिणाम प्राय ठीक मान लिया जाय। इस निर्णय के अनुसार अफीम की आय को छोड कर हमारी आय में भले और बुरे सालो को लेकर प्रतिवर्ष ४॥) फीसदी की औसत वृद्धि हो सकती है। इससे, अतएव, यह परिणाम निकलता है कि साधारण आवश्यकताओं के लिए व्यय मे वृद्धि, अर्थात् किसी विशेष कार्य के लिए विशेष खर्च को छोड कर, इसी ४॥) फीसदी सालाना के भीतर ही होना चाहिये। मुझे आशा है कि कौंसिल इन दो बातों का ख्याल रखेगी और पिछले ३० या ३३ साल में व्यय की वृद्धि की आलोचना में मेरा साथ देगी। १८७८—७९ ही को इस ३३ साल की अवधि का अन्तिम वर्ष लेना उचित होगा, क्यों कि पहले तो इस वर्ष तक व्यय की किसी रोक टोक के बिना निरन्तर वृद्धि होती आई है और दूसरे जनसाधारण को इसी वर्ष तक के पूरे अंक अभी मिल सकते हैं। इन ३३ वर्षों का समय लगभग समान अवधि के चार भागों में विभाजित होता है पहिला ६ वर्षों का सन् १८७५ से लेकर सन् १८८४ तक, दूसरा १० वर्षों का सन् १८८४ से लेकर सन् १८९४ तक,

तीसरा ७ वर्षों का सन् १८८४ से १६०१ तक, और चौथा ७ साल का सन् १६०१—०२ से सन् १६०८ से १६०८ तक। अब श्रीमन्, निष्पक्ष तुलना के लिए यह जरूरी है कि चुने हुए वर्षों की रकमों को समान परिणाम में परिवर्तन करके, जिसमें आय और व्यय दोनों ही के अंकों में से विशेष रकमें निकाल दी जाय अथवा, यदि एक्सचेंज की दर (या रुपये का भाव) किसी दो सालों में भिन्न २ हो तो उसके लिए उचित संशोधन करना चाहिये। यदि बीच में कर बढ़ाया या घटाया गया है, यदि नया प्रान्त सम्मिलित किया अथवा पुराना सूबा निकाला गया है, यदि कोई पुरानी खर्च या आमदनी की मदों में हेरफेर हुआ है अथवा कोई उठा दी गई है तो इन सब के लिए तुलना के समय उचित संशोधन कर लेना उचित है। मैं कौंसिल को विश्वास दिलाता हूं कि मैंने प्रस्तावित तुलना में यथाशक्ति इन सब बातों का विचार कर पूरा २ संशोधन कर लिया है। इस तरह से पहिले ६ वर्षों में लार्ड लिटन के शासन-काल में कर बढ़ाया और लार्ड रिपन के समय में घटाया गया था। मैंने इन दोनों ही बातों को ध्यान में रख कर समुचित संशोधन कर लिये हैं। उन दिनों में भी रुपये का भाव घटता बढ़ता रहता था। सन १८७० में १० रु० का भाव ११ शिलिंग और सन १८८४ में १६ शिलिंग और ७ पेनी था। मैंने यह भी संशोधन कर दिया है अच्छा, इन संशोधनों के बाद, आप क्या पाते हैं? लड़ाई और अकाल सम्बन्धी विशेष व्यय को छोड़कर, इन वर्षों में हमारा कुल दीवानी और फौजी खर्च लगभग ६ फीसदी के हिसाब से बढ़ा, जिसका अर्थ यह है कि व्यय ¾ सेकड़ा प्रतिवर्ष बढ़ा जब आय में १½ फीसदी की वृद्धि हुई। इस तरह से

सामान्य आय की वृद्धि की दर साधारण व्यय की दर से कहीं अधिक थी, और इसी के कारण लार्ड रिपन की सरकार कर को घटाने म समर्थ हुई थी। दीवानी और फौजी मदों म व्यय की कुल वृद्धि इन ९ वर्षों में, अथवा, १८७५ से १८८४ तक, लगभग रु० २,५०,००,००० हुई। यह प्रथम युग की बात हुई।

दूसरे १० वर्षों के युग की आलोचना करना अत्यन्त कठिन है क्योंकि उसके पहिले और आखिरी साल में किसी बात में मुश्किल से समानता है। उत्तर पश्चिमीय सीमा प्रान्त म आशंकित घटनाओं के कारण इन दिनों फौजी चहल पहल खूब रही। और इसी युग में रुपये की दर तथा अफीम से आय भी बराबर गिरती चली गई। फल यह हुआ कि देश के करों में निरन्तर वृद्धि होती चली गई। इस समय के व्यय का विचार करने में हमें चार बातों को ध्यान म रखना आवश्यक है। पहिले तो सन् १८८५ म ३०,००० नई सेना बढ़ाई गई १०,००० यूरोपियन और २०,००० हिन्दुस्तानी, दूसरे, सन् १८८६ में उत्तरीय बर्म्मा सम्मिलित किया गया। फिर सन् १८८५ और १८९४ के बीच रुपये का भाव गिरता ही गया, अथवा, इस रुपये की दर जहां पहिले १६ शिलिंग और १ पेनी थी वहां अन्त में गिरकर वह केवल १० शि० और ११ पेंस रह गई। इससे नीचे रुपये का भाव नहीं गिरा। इसी युग के अन्तिम दिनों में यूरोपियन अधिकारियों को रुपये की दर गिरने के कारण जो हानि हो रही थी उसकी पूर्ति के लिये भत्ता मिलने लगा, जिससे व्यय म लगभग सवा करोड़ की वार्षिक वृद्धि हो गई। इन सब बातों से कर पर कर लगते गये इन १० वर्षों में से ८ वर्षों में बराबर नये टैक्स लगे।

इसलिये युग के प्रारम्भिक वर्ष के साथ उसके अन्तिम साल की तुलना करना बहुत कठिन हो गया है। लेकिन बहुत अशों में ठीक इस युग का मामूली खाका खींचा जा सकता है। इससे यह मालूम होता है कि इस युग में देश के दीवानी और फौजी खर्च में लगभग १४ करोड की वृद्धि हुई इसमें से रु० ७,७५,००,००० नवीन करों से आये, इसलिए व्यय की मद्दों में साधारण बाढ इस युग में लगभग रु० ६,२५,००,००० की हुई। दूसरी ओर आमदनी में लगभग १२ करोड की वृद्धि है जिसमें से लगभग रु० ६ करोड तो नये टैक्सों से मिले और अकाल फड की मद को उठा देने तथा अन्य मद्दों में व्यय घटाने से रु० २ करोड की बचत की गई। इस तरह से लेखा बराबर किया गया। इस दूसरे युग में, खास खर्च की मद्दों को छोडकर, जिनके लिए नये टैक्स लगाये गये थे, दीवानी और फौजी मद्दों में खर्च लगभग रु० ६,२५,००,००० से बढा। अथवा, १० साल में १४॥ फीसदी या प्रतिवर्ष १॥ सैकडे की औसत वृद्धि हुई, जहा पुरानी आयकी मद्दों से आमदनी कुछ कम १॥ सैकडे सालाना बढी। अब मैं तीसरे युग का जिक्र करता हू। इस युग में गडबडी पैदा करने वाली बातों की सख्या अधिक न थी, सिर्फ भत्ते ही का सवाल था। इस युग के प्रारम्भ में रुपये का भाव १ शिलिंग और ११ पेंस तक गिर गया था, परन्तु वह निरन्तर बढते २ सन् १८९९ में १ शि०—४ पें० को चढ गया, और युग के पिछले तीन बरसों तक रुपया का यही भाव बना रहा। और यदि पिछली सदी के सब से बडे दुर्भिक्ष इसी युग में न हुए होते और न शुरू में सरहद पर लडाई ही छिडती, तो इस युग में राज कोष की अवस्था

उसकी वास्तविक दशा से कहीं अच्छी होती। लेकिन इनके होते हुए भी रेलों से आमदनी बढ़ने लगी थी, अफीम से आय भी सुधरती जाती थी, और साधारण आमदनी की वृद्धि जो १८९८ से १९०८ तक बराबर होती गई, शुरू हो गई थी। इस युग के पिछले तीन साल में हर तरफ आय का अपूर्व विस्तार हुआ, और रुपये का भाव गिरने के कारण जो अंगरेज अफसरों को भत्ता मिलता था सिर्फ उसी में १८९४ के मुकाबिले में १८९९ में ५ करोड़ रुपये की बचत सरकार को हुई। इस बढ़ती हुई आमदनी के कारण सरकारी खर्च भी बढ़ने लगा, और इसका सब प्रधान कारण यह था कि इस युग के पिछले तीन वर्ष उनके शासन के तीन साल थे। इस सब का परिणाम यह हुआ कि युग के अन्त समय पर प्रारम्भिक वर्षों को देखते हुए व्यय की चाल ज्यादा तेज हो गई थी, किन्तु इतना सब होते हुए भी वह पूरी तौर से सीमा के भीतर ही किया गया। इन बरसों में दीवानी और फौजी खर्च में लगभग ७ करोड़ की बढ़ती हुई, अथवा युग भर में ११ फीसदी या १½ फीसदी प्रतिवर्ष—दीवानी खर्चे में लगभग १४ फीसदी या दो फी सैकड़ा प्रतिवर्ष, और फौजी चिट्ठे में ६ ½ फी सदी या कुछ कम १ फीसदी फी साल के हिसाब से वृद्धि हुई। तुलना के लिए मैंने रुपये को १ शि०—४ पैं० के बराबर मानकर भत्ते की रकम ली है।

अब आइए, हम अन्तिम युग की ओर दृष्टि पात करें। तीसरे युग की तरह, इसकी भी अवधि सात साल की है। लेकिन इस युग, में जैसा पिछले वर्ष इसी कौंसिल में कहा गया था, निरा निरा कार्य क्षमता पर विशेष रूप से ध्यान

दिया गया और इसी उद्देश की सिद्धि के लिए सरकारी महकमों के सुधार और उन्नति की ओर अधिक ध्यान रहा। हर तरफ इसी की पूर्ति में खूब सरगर्मी दिखाई देती थी, और धडाधड नये २ महकमे खोले गये, ओहदे कायम हुए और यूरोपियन अफसरों की तनख्वाहों, पेंशनों और उनको जल्दी २ तरक्की देने के प्रस्ताव मंजूर किये गये। इस सब का परिणाम क्या हुआ? प्रत्येक दिशा में व्यय की वृद्धि, जो पूरी तौर से अचम्भे में डालने वाली है। इस युग में खलबली डालनेवाली घटनाओं में ये सम्मिलित हैं—(अ) बेरार के हिसाब भारतीय बजट में शामिल किये गये, (इ) स्थानिक बोर्डों के हिसाब अधिकतर भारतीय आय-व्यय के चिट्ठे से निकाल दिये गये, (उ) टैक्स घटाये गये, और (ए) जंगी—नाविक मद्द की रकम दीवानी मद्द से फौजी मद्द में मिलाई गई। इन सब घटनाओं के कारण जो कुछ हिसाब उलट फेर हुआ है उस का उचित संशोधन करने के बाद, हमें पता लगता है कि इन सात वर्षों में, १९०१—०२ से १९०७—०८ तक दीवानी और फौजी मद्दों के खर्च में साधारण रूप से १८ करोड की वृद्धि हुई। इस हिसाब से औसत खर्च सात साल में ३२ फीसदी बढा, अथवा प्रतिवर्ष लगभग ५ फीसदी व्यय की वृद्धि हुई। दूसरी ओर, आय की उन्नति, जो स्वयमेव अत्यन्त असाधारण थी, सब बातों को सोचते हुए २ फीसदी प्रतिवर्ष के हिसाब से हुई। इससे हम इन नतीजे पर पहुंचते हैं—

पहिले ६ वर्षों में [illegible] में ७½ करोड की वृद्धि हुई, फिर उसके बाद १० वर्षों में लगभग ६ करोड अधिक खर्च हुए, सात साल के तीसरे [illegible] फिर लगभग ६ करोड का अधिक व्यय हुआ, और अन्तिम [illegible] में १८ करोड की वृद्धि हुई।

यदि प्रति सैकड़ा का हिसाब लिया जाय, तो पहिले युग में व्यय की साधारण वृद्धि ½ फी सदी हुई, दूसरे और तीसरे युग में यह ¾ और ¾ फी सदी के आसपास रही और पिछले युग में ५ फी सदी हो गई अगर दीवानी और फौजी मद्दों का अलग अलग लें तो पिछले सात साल में दीवानी खर्च में ४० फीसदी अथवा ६ फी सैकडा प्रतिवर्ष की वृद्धि हुई और फौजी व्यय २० फी सैकडा अथवा ३ फीसदी फी साल के हिसाब से बढा!

श्रीमन्, मैं सोचता हूं कि इन आँकों का वर्णन मात्र ही पिछले वर्षों में सरकारी व्यय की वृद्धि की जाच के महत्व को प्रमाणित करता है। शायद यह कहा जायगा कि बहुत से उपयोगी कामों में खर्च की वजह से यह अपूर्व वृद्धि हुई है। मैं यह तुरन्त मानने को तैयार हूं कि सरकार ने कई जरूरी कामों के लिये भी इस समय में अधिक रुपया दिया है। इतने वर्षों के भीतर दीवानी की कुल मद्दों में कुल वृद्धि १३ करोड हुई है। इस १३ करोड में से लगभग ३ करोड की रकम पुलिस, शिक्षा, स्थानिक बोर्डो की इम्दाद पर सर्फ की गई। पुलिस की मद में १½ करोड का खर्च बढाया गया है परन्तु उससे क्या फायदा होगा, यह कहना अभी कठिन है। कम से कम मैं तो इससे नहीं सन्तुष्ट हूं कि जो कुछ पुलिस के ऊपर खर्च हो रहा है वह सब उचित है, लेकिन मैं थोडी देर के लिये यह माने लेता हूं कि इस अधिक व्यय से पुलिस सुधर जायगी। फिर ७५ लाख शिक्षा की मद में रहा है—कृषि-सम्बन्धी और औद्योगिक शिक्षा को मिला कर। और अन्त में लगभग १ करोड स्थानिक बोर्ड को शिक्षा, सफाई तथा अन्य कामों के लिये दिया गया है। इस तरह से, स्थूल रूप से, इन मद्दों पर लगभग

तीन करोड का सालाना खर्च बढ़ाया गया है। बाकी १० करोड की वृद्धि बची, जिसकी उपयोगिता प्रमाणित होनी चाहिये।

श्रीमन्, अगर कौंसिल मुझे इजाजत देगी तो मैं यह कहना चाहता हू कि यह पहिला ही अवसर नहीं है जब मैं व्यय में वृद्धि की शिकायत कर रहा हू। पाच बरस हुए, जब अन्तिम युग के बीचोबीच में हम सब थे, और जब खर्चा चारो तरफ धड़ाधड बढ रहा था, मैंने कौंसिल में इस विषय पर आलोचना करने का साहस किया था। यदि कौंसिल पिछली स्पीच का एक अवतरण पढने के लिये मुझे क्षमा करे तो मैं उसके सामने कुछ पंक्तिया पढकर सुनाना चाहता हू कि उस समय पर मैंने क्या कहा था। १९०६-०७ के बजट पर बहस के अवसर पर मैंने यह कहने का साहस किया था —

पिछले सालों में बचत होने के कारण कृत्रिम रूप से रुपये की दर बढ़ा दी गई थी, और प्रथमतः तो रुपये के भाव के बढ जाने से आवश्यकता से अधिक टैक्सों के लेने और दूसरे सालाना बजट में अनुमानित आय को घटाकर और व्यय को बढ़ाकर दिखाने से हरसाल अधिकाधिक बचत होती रही। इसका देश के व्यय पर अनिवार्य प्रभाव पड़ा। राजकोष में इतना अधिक धन होने से, व्यय का निर्ख हर तरफ बढ़ता गया किफायत—मितव्यय का तिरस्कार किया जाने लगा और जिधर देखिए उधर ही नए नए महकमे और युरोपियन अफसरों की तनख्वाहें, पेंशनें और भत्ते बराबर बढने लगे। टैक्सों में बहुत सकोच के साथ कुछ कमी अवश्य की गई,

परन्तु शासन सचालन को उत्तम बनाने के नाम पर प्रत्येक दिशा में व्यय की उच्छृङ्खल वृद्धि की बुराई रोकी नहीं गई, और उसका फल हम अब भोग रहे हैं। इसमें सब से अधिक शोचनीय बात तो यह है कि यद्यपि राजकोप में रुपया भरा पडा था और शासन सम्बन्धी व्यय बराबर बढता जाता था, परन्तु जनता की आर्थिक और नैतिक उन्नति सम्बन्धी आवश्यकताओं की ओर प्राय उदासीनता दिखाई गई। और लोगों की स्थिति सुधारने के लिए राजकोप की आर्थिक समृद्धि से राष्ट्र द्वारा एक भी विस्तृत कार्य छेडने में लाभ न उठाया गया। ऐसे राष्ट्रीय कार्य का छेडना, मेरी विनम्र सम्मति में, भारतीय सरकार का अब प्रधान कर्तव्य है, और माननीय अर्थ सचिव जितना रुपया साधारण और असाधारण बचत से दे सकते हैं इस कार्य के लिये उस सब की जरूरत होगी।"

यह शिकायत सारत न्यायसगत है, इसको भारतीय सरकार ने अथवा उनके अर्थ विभाग के प्रतिनिधि ने मान लिया है, जैसा माननीय सर एडवर्ड बेकर के महत्वपूर्ण कथन से प्रमाणित होता है। सन् १६०७—०८ के बजट पर बहस के मौके पर यह प्रस्ताव किया गया था कि कुछ सरकारी मुलाजिमों का वेतन बढाया जाय इसका प्रतिवाद करते हुये उन्होंने कहा कि हम उस प्रस्ताव को अचभे और विषाद के साथ देखते हैं इसके बाद उन्होंने कहा कि "भारत सरकार के अर्थ विभाग से मेरा सम्बन्ध पाच साल से बराबर है, और इतने समय में एक भी दिन ऐसा नहीं गया, जिसमें मुझे किसी न किसी की तनख्वाह बढाने अथवा किसी मुहकमे के पुनसगठन अथवा उनके मुलाजमों की तादाद के प्रस्तावों से

सहमत न होना पडा हो। तमाम तजुर्वा इस वात को साबित करता है कि जब कभी कर्मचारियों की सख्या अथवा उनके वेतन वढ़ाने की आवश्यकता हुई, तब प्रान्तिक सरकार और मुहकमों के प्रधान उसको सरकार के पास भेजने में वडी ही तत्परता दिखाते हैं। और न भिन्न २ विभागों के कर्मचारी अपने २ दावों को पेश करने में किसी तरह से पीछे रहते हैं। मे किसी तरह से भी इस प्रथा को अधिक उत्तेजना देने की आवश्यकता मानने को तेयार नहीं हू।"

इससे पता चलता है कि पिछले कतिपय वर्षों में व्यय की जो वृद्धि हुई है, वह स्थायी है। और ऐसी वृद्धि उसी हालत में सम्भव थी, जब सरकार को सालाना अधिक बचत होती रही। इस बात को ध्यान में रखकर और यह भीदेखते हुए कि सरकार की आर्थिक स्थिति तब से विगड गई है, मे समझता हू कि सरकार को यह लाजिमी है कि वह सम्पूर्ण स्थिति की आलोचना फिर एक वार करे। श्रीमन्, ऐसा ही लार्ड डफरिन ने अपने जमाने में किया था, यद्यपि सरकारी व्यय का प्रसार उस समय इतना विस्तृत न था, जितना पिछले १० वर्षों में हुआ है। जब लार्ड डफरिन वाइसराय हुए थे तव उन्होंने इस देश में फौज को बढाना ठान लिया था, और इसके लिये उन्हें अधिक रुपये की जरूरत थी। अतएव उन्होंने एक फिनेन्स कमेटी अपने आने के पहले के व्यय में वृद्धि की जाच के लिए नियुक्त की जिसमें यह मालूम हो कि वचत किन मद्दों में हो सकती है। उस कमेटी की नियुक्ति के प्रस्ताव को वर्त्तमान भारत सरकार को ध्यान पूर्वक पढना चाहिये। उस प्रस्ताव में दीवानी खर्चे में वाढ़, जो पहिले के पाच वर्षो में हुई थी,

"बहुत बड़ी" बताई गई है। यद्यपि जैसा कि मैं पहिले कह चुका हूं, सन् १८७५ और १८८४ के बीच में वृद्धि की दर सिर्फ ½ फीसदी प्रतिवर्ष थी, या आय के जमा करने के खर्च को और दीवानी व्यय को मिलाकर वृद्धि केवल डेढ़ फीसदी थी—इन दो मद्दों की वृद्धि और मद्दों की बाढ़ से ज्यादा थी। यदि वह वृद्धि की गति लार्ड डफरिन की सम्मति में "बहुत ज्यादा" थी तो मुझे ताज्जुब होता है कि पिछले १० वर्षों में व्यय की वृद्धि को वह किन शब्दों में वर्णित करते।

श्रीमन् अब मैं प्रस्तावित जाच के स्वरूप का जिक्र करूगा। मैं पहले तो यह प्रस्ताव करता हू कि जाच खुली जाच होनी चाहिये, और मेरा दूसरा प्रस्ताव यह है कि सरकारी और गैर सरकारी सज्जनों की सम्मिलित कमेटी द्वारा जाच हो। जैसा मैं पहले कह चुका हू कि मान० अर्थसचिव के पिछले वर्ष के शब्दों से यह आशा हो चली थी कि सरकार स्वयम् ही इस मामले की जांच करेगी। लेकिन गत अगस्त में शिमले में मैं ने मान० अर्थसचिव से एक प्रश्न किया तब उन्हों ने कहा कि उनका मतलब केवल मुहकमे की जाच से था। श्रीमन्, स्थिति इतनी गम्भीर है कि सिर्फ मुहकमे की जांच से काम न चलेगा। इस विचार की पुष्टि में मैं अपने मान० मित्र के ही शब्दों को पेश करूगा, उन्हों ने गत वर्ष कहा था कि मितव्यय का प्रश्न उन्हीं के मुहकमे ही तक परिमित नहीं है, यह भारतीय सरकार के ऊपर निर्भर है, उन्होंने यह भी कहा था कि यदि खर्च घटाना है तो इस देश और इगलेंड दोनों ही में मितव्यय के पक्ष में लोकमत होना चाहिये। लोकमत को उसके पक्ष में लाने का एक मात्र साधन केवल सार्वजनिक जाच ही हो सकता है—जैसा लार्ड डफरिन ने

किया था—जिसमें लोगों को पता लगे कि गर्च किस तरह बढ़ते गये हैं और अब हमारी क्या स्थिति है। श्रीमान, मैं केवल अर्थ विभाग द्वारा ही जांच नहीं चाहता, शिमले या कलकत्ते की जांच केवल वृद्धि के आंकड़ों की जांच होगी। हम जो चाहते हैं वह लार्ड डफरिन की कमेटी की सी कमेटी है। जिसमें एक या दो गैर सरकारी मेम्बर भी शामिल हों, जो देश भर में घूम फिर कर जांच करे और भिन्न भिन्न विभागों के प्रधानों से पूछ ताछ करे कि कौन से मुहकमे घटाये जा सकते हैं और उस सोच विचार तथा गम्भीरता के साथ अपनी सम्मति दे, जो सदा सार्वजनिक जांचों में पाई जाती है। मैं इस तरह की जांच पर जोर देता हूं क्योंकि इस समय के भारत का शासन जिस तरह का है उसको देखते हुए व्यय की वृद्धि में समय समय पर जांच ही एक ऐसा साधन हो सकता है कि हमारे राजकोष का प्रबन्ध उचित ढंग से हो। ईस्ट इंडिया कम्पनी के जमाने में ऐसे मामलों में स्थिति कई बातों में अच्छी थी। इंगलैंड की सरकार अब आसानी से उन खर्चों को भारत के ऊपर डाल सकती है जिनका विरोध उस समय कम्पनी करती थी। दूसरी ओर कम्पनी के मामलात पर पार्लामेन्ट की तीव्र दृष्टि रहती थी। और हर बीसवें साल जांच हुआ करती थी जिसका फल यह होता था कि प्रत्येक बात का सावधानी के साथ संशोधन हो जाता था, और इस के कारण बहुत कुछ प्रबन्ध नियन्त्रित रहता था। लेकिन जब इस देश का शासन कम्पनी के हाथ से छीन कर सम्राट् ने ले लिया तब से बहुत कुछ परिवर्तन हो गया है। अब सारी शक्ति भारत-सचिव के हाथ में है और जो राजमन्त्री होने के कारण हौस आफ कामन्स में

बहुमत का सहारा ले सकता है। इसके मानी यह हैं कि यद्यपि भारतीय व्यय के ऊपर पार्लामेंट का अधिकार सिद्धान्त रूप से अब भी मौजूद है परन्तु वास्तव में वह केवल नाममात्र का रह गया है। ऐसी अवस्था में हमारे आर्थिक शासन की समय समय पर सार्वजनिक जॉच का महत्व और उपयोगिता प्रत्यक्ष हा है। कम्पनी से शासन अलग होने के बाद ऐसी तीन जाचें हो चुकी है। पहली जांच सन् १८७० के बाद पार्लामेंट की कमेटी द्वारा हुई थी। कमेटी लगभग च्यार वर्ष तक बैठी और बहुत ही उपयोगी मसाला जमा किया। दुर्भाग्य से १८७४ में पार्लामेंट भग हो गई और उसके साथ ही कमेटी का भी अन्त हो गया। दूसरी जाँच सन् १८८६–८७ में लार्ड डफरिन की कमेटी थी। और तीसरी जाच सन् १८९७ में लार्ड वैलबी की अध्यक्षता में रायल कमीशन द्वारा हुई थी। तब से अब १४ वर्ष गुजर चुके है और मैं समझता हू कि देश के हित में एक सार्वजनिक जाच व्यय की वृद्धि में की जाय। ताकि वह यह बताये कि खर्च कहा और कितना घटाया जा सकता है और साधारण व्यय की दर कैसे न बढने न पाये। यह जाच न तो लडन, शिमले और न कलकत्ते में होनी चाहिये। जॉच एक ऐसी कमेटी द्वारा हो जो देश में दौरा करे और गवाही ले।

श्रीमन्, अब मैं उन सुधार सम्बन्धी प्रस्तावों का जिक्र करूगा, जिनके प्रयोग की इस अवसर पर जरूरत है। मेरे प्रस्ताव चार हैं, और वे ये हैं —पहिले तो जिसको मिस्टर ग्लैडस्टन व्यय का भूत कहा करते थे और जो बहुत वर्षों से विशेष कर सन् १९०१ ०२ से १९०८ ९ तक इस देश में स्वच्छन्द रूप से विचर रहा है। उसको जकडने और काबू में लाने की जरूरत है और उसके स्थान में मितव्ययता की मूर्ति को स्था

पित करना चाहिये। यदि सरकार, लार्ड डफरिन की तरह, सब विभागों को आज्ञा दे कि हर तरफ खर्च घटाया जाय और व्यय की दर कम रक्खी जाय, खासकर ऐसा खर्च जो घटाया जा सकता है, तो मैं सोचता हूं कि बहुत कुछ लाभ होगा। लार्ड डफरिन की सरकार को फौजी तैयारी के लिए रुपये की जरूरत थी, मैं साग्रह आशा करता हूँ कि श्रीमान् की सरकार को शिक्षा को चारो दिशाओं में फैलाने के लिए अधिक धन की आवश्यकता होगी। चाहे ऐसा हो या न हो खर्च घटाने की परम आवश्यकता है। और मैं विश्वास करता हूं कि सरकार सब मुहकमों को हुक्म जारी करेगी कि यथासम्भव शासन सम्बन्धी व्यय कम ही रक्खा जाय। यह मेरा पहिला प्रस्ताव है। इसी सम्बन्ध में मैं यह भी कह देना चाहता हूं। इस बात का विशेष ध्यान रखना चाहिये कि आय की साधारण वृद्धि की सीमा को व्यय की साधारण वृद्धि उल्लंघित न करने पाये। अगर हमें दिवालिया नहीं बनना है तो इसको उस के भीतर ही रखना उचित है। हमले के रोकने तथा ऐसी ही मुसीबतों के से जरूरी कामों के लिए यदि व्यय आवश्यक हो तो विशेष कर लगाया जाय, और ऐसा करने में हम सरकार को सहायता देंगे। किन्तु साधारण समय में व्यय आय के भीतर होना चाहिए।

मेरा दूसरा प्रस्ताव है कि फौजी खर्च में अब काफी कमी की जाय। श्रीमन्, यह कुछ टेढ़ा सवाल है और मैं आशा करता हूँ कि कौंसिल कृपा पूर्वक एक दो बातों को जो मैं कहना चाहता हूँ सुनेगी। हमारा फौजी खर्च जो सन् १८८५ तक लगभग १६ करोड़ प्रति वर्ष के था, अब ३१ करोड़ से अधिक हो गया है। गदर के बाद सन् १८५६

में जो कमीशन बैठा था उसने सेना की सख्या को स्थिर किया था, और वही सख्या लगभग ६०,००० अंग्रेजी और १२०,००० देशी सेना १८८५ तक बनी रही। इस अवसर में कई बार जो सैनिक शासन के लिए जिम्मेदार थे उन्होंने सैनिकों की सख्या बढाने के लिए जोर दिया, किन्तु वे सफल न हुए। १८८५ में ३०'०००—१०,००० अंग्रेजी और २०,००० हिन्दुस्तानी सेना बढ़ाई गई। तब से इसमें कुछ और वृद्धि हुई है। और इस समय ७१,००० यूरोपियन और १५०,००० हिन्दुस्तानी सेना है। श्रीमन्, मेरा प्रथम निवेदन यह है कि यह देश इतनी बडी सेना का भार नहीं सह सकता, और मध्य एशिया की राजनैतिक स्थिति में आशा जनक परिवर्तनों को देखते हुए इस सख्या को बहुत कुछ घटाना चाहिए। न केवल सरकार के प्रतिष्ठित समालोचक ही परन्तु उनमें से भी बहुतोंने, जिन्होंने देश के शासन में भाग लिया है और जो इस मसले पर दावे के साथ राय दे सकते हैं, सार्वजनिक रूप से कहा है कि केवल भारतीय आवश्यकताओं को देखते हुए भारतीय सेना बहुत बडी है। जैसे, जनरल ब्रैकनबेरी ने, जो एक समय इस कौंसिल के फौजी मेम्बर थे, सन् १८६७ में भारतीय व्यय सम्बन्धी रायल कमीशन के सामने गवाही देते हुए कहा था कि भारतीय आवश्यकताओं को देखते हुए भारतीय सेना बहुत ज्यादा है और उसका एक भाग पूर्व में साम्राज्य की रक्षा के लिए रक्खा गया है। मैं यह भी कह देना चाहता हूँ कि १८७६ के आर्मी कमीशन ने, जिसके लार्ड रावर्टस भी मेम्बर थे यह सम्मति दी थी कि उस समय की भारतीय सेना की सख्या, ६०,००० अगरेजी और १२०,००० हिन्दुस्तानी-सब जरूरियात को काफी थी-रूसियों के हमले का मुकाबिला

करने ही के लिए, चाहे अफगानिस्तान भी रूस की सहायता करने लगे। फिर, श्रीमन्, जब दक्षिण अफ्रिका की लड़ाई छिड़ी तब यहाँ से फौज काफी तादाद में इस देश के बाहर भेज दी गई, यद्यपि भारत की दशा उस समय आशङ्का जनक थी। उसी समय कुछ फौज चीन भी भेजी गई और तो भी यहा कुछ न हुआ। यह तमाम बातें इस बात को साबित करती हैं कि जितनी फौज है वह जरूरत से ज्यादा है।

यह कहा जा सकता है कि यह विषय सैनिक सुसज्जिता का है, जिस पर गैरसरकारी सभासद किसी प्रकार की सम्मति देने के अधिकारी नहीं हैं। यदि सैनिक शासन के किसी विशेष अंगपर राय देता तो मैं अपने को इस धृष्टता के लिए दोषी ठहराता, परन्तु यह तो विषय है नीति का, जिसपर मैं यह कहने को साहस करता हूँ कि प्रत्येक साधारण आदमी—हिन्दुस्तानी भी समझ सकता है और उसको सम्मति प्रकट करने का पूर्ण अधिकार है। यह सब कोई देख सकते हैं कि मध्य एशिया और भारत की सरहद पर स्थिति में व्यापक परिवर्त्तन हुआ है। और इसको देखते हुए मैं सोचता हूँ कि इस देश के निवासियों को, जिन्होंने इस विशाल सैनिक व्यय के भार को बहुत वर्षों तक सहा है, टैक्स घटा कर कुछ शान्ति मिलनी चाहिये और इससे जो कुछ रुपया बचे उसे दूसरे अधिक उपयोगी और आवश्यक कार्यों में लगाना चाहिये। श्रीमन्, जैसा लार्ड सालीसबरी ने एक बार कहा था, सैनिक तैयारी सदैव स्थिति के अनुकूल होनी चाहिये। वह केवल इसी पर निर्भर नहीं है कि सैनिक अफसरों की राय में क्या आवश्यक है, लेकिन वह इस सम्मिलित विचार से निर्द्धारित होनी चाहिये कि देश की रक्षा

कैसे हो सकती है और इसके लिए वह कितना रुपया दे सकती है इस कसौटी पर कसने से हमारा सैनिक व्यय अनावश्यक रूप से अधिक है, और मैं साग्रह अनुरोध करता हूँ कि फौज की संख्या सन् १८८५ के पहिले की तादाद के बराबर कर दी जाय और इस तरह से सैनिक व्यय का एक भाग बच सकता है।

श्रीमन्, मेरा तीसरा प्रस्ताव यह है कि सरकारी नौकरियों में देशी हिन्दुस्तानी अब से भी अधिक विस्तृत रूप से भर्ती किये जायें। इस सम्बन्ध में मैं इसकी आवश्यकता के मानने को तैयार हूँ कि एकही उहदे पर हिन्दुस्तानी को अंग्रेज के मुकाबिले में कम तनख्वाह दी जाय। यही तो हमारा पक्ष है। यदि हम इस पर ज़ोर दें कि हिन्दुस्तानियों को उतना ही वेतन मिले जितना अंग्रेजों को तो हमारा पक्ष बहुत कमजोर हो जायगा। कार्यकारिणी कौंसिलों की मेम्बरी, हाईकोर्ट की जजी आदि उच्च पदों का वेतन समान ही होना चाहिये क्योंकि यह पद विशेष सम्मान के हैं। परन्तु और नौकरियों में हिन्दुस्तानी और अगरेज़ों को भिन्न २ वेतन मिलना उचित है। आवश्यकता इस बात की है कि यह भेदभाव ऐसे न हों कि वे चुभें। वर्तमान प्रान्तिक और भारतीय विभागों, अथवा यह नियम बनाने कि हिन्दुस्तानियों को अङ्गरेज़ों का दो तिहाई वेतन मिलेगा, के स्थान में प्रत्येक पद का वेतन निश्चित रहेगा और यह नियम रहेगा कि जब कभी उस पद पर कोई अङ्गरेज होगा तो उसको विशेष भत्ता दिया जायगा क्योंकि उसे अपने स्त्री और बच्चे इङ्गलैण्ड भेजने पड़ते हैं और उसे खुद भी वहाँ जाना पड़ता है। मौजूदा हालत के तकाज़े को भी हमें पूरा

करना है और हमे उचित ढग से उनका सामना करना चाहिये। अतएव मैं प्रत्येक पद का वेतन निश्चित कर दूगा और सब के लिए वह पद खुला होगा जिनमें उचित योग्यता है। केवल शर्त यह रहेगी कि यदि उस पद पर अङ्गरेज हुआ तो उसको विशेष व्यय के लिए विशेष भत्ता दिया जायगा तब आपको नियुक्ति के समय यह देखना होगा। हिन्दुस्तानी को मान लीजिये, पाँचसौ रुपये महीने का वेतन दिया जायगा, यदि अङ्गरेज है, तो उसे पाँचसौ रुपये और १६६। का भत्ता दिया जायगा। इस तरह से यदि आप सचमुच खर्च घटाना चाहते हैं तो आपको उस पद के लिये हिन्दुस्तानी ही को लेना होगा यदि और बातों में उसमें समान योग्यता है।

मेरा चौथा और अन्तिम प्रस्ताव यह है कि इस देश में सरकारी हिसाब की स्वतन्त्र जाँच का प्रबन्ध होना चाहिए। श्रीमन्, यह विषय बहुत महत्वपूर्ण है, और वह बहुत पुराना है। १८८० के बाद भारतीय सरकार और भारत सचिव के बीच में इस पर बहुत गम्भीर विचार हुआ था। इस मसले पर पहिला प्रस्ताव भारतीय सरकार ही ने भेजा था, यह उस समय की बात है जब लार्ड क्रोमर अर्थ सचिव और लार्ड रिपन वाइसराय थे। सन् १८८२ में भारत सचिव के पास भारत-सरकार ने एक खरीता भेजा था, जिसमें उन्होंने हिसाब की स्वतंत्र जाँच पर जोर दिया था। वह सम्पूर्ण खरीता विशेष रूप से पढने के योग्य है। यूरोप के भिन्न २ देशों में ऐसी जाच की प्रथाओं की, जिन पर भारतीय सरकार ने खास तौर से विचार किया था, आलोचना करने के बाद, उन्होंने स्पष्ट शब्दों में कहा कि वे इस परिणाम को पहुंचे हैं कि सरकार के मातहत अफसरों द्वारा जाच की प्रथा असतोष जनक है और उस

का बदल देना चाहिये। ये दो बातों पर जोर देते हैं —एक यह कि वह अफसर जो अब कंट्रोलर जनरल और अब कान्ट्रोलर और आडिटर-जनरल के नाम से पुकारा जाता है, भारतीय सरकार के मातहत हरगिज न होना चाहिए। उसे भारतीय सरकार का मुंह तरक्की के लिए न ताकना पड़े, और न वह भारत सचिव की अनुमति के बिना अपने पद ही से हटाया जाय। दूसरी बात यह थी कि उसके पद का वेतन अर्थ विभाग के मंत्री की तनख्वाह के बराबर हो और बीस बरस में वह उस पद पर क्रम २ से उन्नति करता हुआ पहुंच जाय। उस समय के भारत सचिव ने अपनी कौंसिल की अनुमति के साथ,—और यह कौंसिल ऐसे परिवर्त्तन और सुधार के विरुद्ध सदा ही रहती है—इस प्रस्ताव को नामजूर किया है। उनकी राय थी कि यह भारत के लिए उपयुक्त न था। उसकी कोई जरूरत भी न थी और उसके कारण खर्च भी बढ़ जायगा। लेकिन यह कौतुक से खाली नहीं है कि पांच, छ साल बाद भारत सचिव ने स्वयम् ही इस प्रस्ताव को फिर से उठाया। लार्ड क्रास उस समय पर भारत सचिव थे, और वह खरीता भी जिसमें उन्होंने इस मसले को फिर से उठाया और उसपर बहस की है, ध्यान से पढ़ने के काबिल है। १८८२ की भारतीय सरकार की तरह, उन्होंने भी भारतीय जांच की असंतोषजनक दशा पर जोर दिया है, विशेषकर इसलिये कि जांच के विभाग का प्रधान अफसर भारत सरकार का मातहत होता है। और उन्होंने दिखाया है कि कितना जरूरी यह है कि वह भारतीय सरकार के आधीन न रहे। किन्तु उस समय इस प्रस्ताव का विरोध भारत-सरकार ने किया—लार्ड लैंड्सडौन तब वाइसराय थे—और प्रस्ताव रद्द हो गया। अब मैं, श्रीमन्, विनम्रता

के साथ आग्रह करता हू कि यह सवाल फिर से उठाया जाय और आडिटर जनरैल भारत-सरकार के मातहत कदापि न न होना चाहिये। इङ्गलैंड में आडिटर-जनरैल सब गलतियों पर सालाना रिपोर्ट हौस आफ कामन्स के पास भेजता हैं और हौस उसे एक कमेटी के पास भेजदेता है जो उसकी विस्तृत और कडी आलोचना करता है। चूंकि अभीतक हमारी कौंसिल बजट को स्वीकृत नहीं करती है, मैं समझता हू कि वर्त्तमान स्थिति में भारत सचिव को जो आर्थिक मामलों में प्रधान है, आडिटर जनरैल की रिपोर्ट भेजी जाय। लेकिन रिपोर्ट को प्रकाशित करना चाहिए—पार्लामेंट में भी उप स्थित और भारत में भी प्रकाशित को जाय। उस समय हम लोगों की आर्थिक विषयों की समालोचना सचमुच महत्व पूर्ण और प्रभावशाली होगी। इस समय तो गैर-सरकारी मेम्बर आर्थिक शासन की छोटी २ बातों का ज्ञान केवल न होने के कारण मोटी मोटी बातों पर सम्मति प्रकट कर देते है। यह सब बदल जाय यदि स्वतन्त्र आडिटर जनरैल की सालाना रिपोर्ट से उनको सहायता मिलने लगे।

श्रीमन्, मैं अब खतम करता हू। मैं चार कारणों से इस जाच को चाहता हू। पहले तो, व्यय की असाधारण वृद्धि स्वयमेव आलोचनीय है। कम खर्च या किफायत शारी हर मुल्क में जरूरी है। लेकिन वह इतनी आवश्यक और कहीं नहीं जितनी भारतवर्ष में। लार्ड मेयो ने, ४० वर्ष पहले इस सम्बन्ध में जो कुछ कहा था वह इतना समय हो जाने के बाद भी दुहराया जा सकता है। फौजी खर्च पर बोलते हुए उन्होंने कहा कि भारतवर्ष के निवासियों से लेकर एक रु० का भी फौज के ऊपर अनावश्यक रूप से खर्च करना हिन्दुस्तानियों के

खिलाफ एक जुर्म है, जिनको उसकी जरूरत अपनी नैतिक और साम्पत्तिक उन्नति के लिए है। दूसरे, श्रीमन्, गर्च्च ख़र्च कदापि न बढ़ने पाये क्योंकि हमारे राजकोष की आर्थिक स्थिति इस समय नाजुक है। अफ़ीम से श्राय जल्द बन्द होने को है। तीसरे, मैं समझता हूं कि प्रान्तिक सरकारों को शीघ्र ही आर्थिक अधिकार विस्तृत रूप में देने के प्रस्ताव पेश किये जायगे। और इन सरकारों को अपनी आयव्यय के ऊपर अधिक सत्ता मिल जायगी। अगर ऐसा हुआ तो पहले इसकी जांच कर लेना चाहिये कि उनके वर्त्तमान व्यय का निर्णय समुचित है। और वह निर्णय उतना घटा दिया जाय जितना व्यर्थ है, इसके बाद उनको अधिक अधिकार मिलने चाहिये। अन्तिम, परन्तु कम महत्व का नहीं, कारण यह है कि हम सब को आशा है कि शिक्षा—प्राथमिक, औद्योगिक और कृषि सम्बन्धी—के विस्तृत प्रसार का प्रयत्न किया जाने वाला है। श्रीमन्, मैं समस्त देशवासियों के भाव को व्यक्त करता हूं जब मैं यह कहता हूं कि हम सब इस बात की आशा करते हैं कि अगले पांच वर्षों में शिक्षा सम्बन्धी प्रयत्न में विशेष दृढ़ता दिखाई जायगी। यदि इस ओर उन्नति करना है तो बहुत बड़ी रकम की जरूरत होगी। इसलिये सरकार को चाहिये वह अपनी स्थिति की जाँच करे और देखे कि मौजूदा आय में वह इसके लिये कितना रुपया निकाल सकती है। श्रीमन्, यह उद्देश्य—शिक्षा, सफाई, काश्तकारों का ऋण से उद्धार, देश के लिये इतने व्यापक महत्व के हैं कि कम से कम मैं उनके लिये नये करों के लगाने का प्रस्ताव करने से न हिचकूंगा यदि ऐसा करना आवश्यक होगा। लेकिन इसके पहले कि सरकार नये करों का प्रस्ताव करे, गैर सरकारी

मेम्बर उनका समर्थन करें, यह देखना आवश्यक है कि मौजूदा आय में कितनी बचत हो सकती है। देश के प्रति सरकार का यही कर्म है, और प्रजा के प्रतिनिधियों का भी यही फ़र्ज़ है कि वे इस बात पर सरकार के सामने ज़ोर दें। इसी कारण से मैंने आज यह प्रश्न कौंसिल में उठाया है, और मैं साग्रह आशा करता हूँ कि सरकार उसी भाव से इन प्रस्तावों पर विचार करेगी, जिस भाव से वे आज पेश किये गये हैं। श्रीमन्, मैं उस प्रस्ताव को, जो मेरे नाम के आगे है, उपस्थित करता हूँ।

———

द्वितीय भाग

राजनैतिक

लार्ड कर्ज़न का शासन।



[श्रीमान् गोखले बनारस की कांग्रेस, १६०५, के सभापति थे। उन्होंने जो सम्भाषण दिया था वह कांग्रेस के साहित्य में सर्वोच्च कोटि का माना गया है। स्थानाभाव से वह अविकल रूप से उद्धृत नहीं किया गया परन्तु लार्ड कर्ज़न के विषय में जो कुछ उन्होंने कहा वह नीचे दिया जाता है। धन्यवाद, प्रिन्स आफवेल्स को स्वागत और नये वाइसराय को अभिनन्दन देने के बाद उन्होंने कहा —]

सज्जनों, यह कितना सच है कि सभी बातों का अन्त होता है! अतएव लार्ड कर्ज़न का शासन भी समाप्त हो गया! सात दीर्घ वर्ष तक सभी की आंखें देश में एक परम प्रभावशाली व्यक्ति ही की ओर लगी थीं—कभी प्रशंसा में, कभी आश्चर्य में बहुधा क्रोध में और शोक में, यहां तक कि अन्त में यह अनुभव करना कठिन हो गया है कि परिवर्तन सचमुच हुआ है। ऐसे शासन की तुलना करने के लिए हमें, मेरी राय में अपने देश के इतिहास में औरंगजेब के समय को लेना पड़ेगा वहां भी हमें वैसाही अत्यन्त केन्द्रित और खास तौर से शख्सी शासन करने का प्रयत्न, वही दृढ़ उद्देश, कर्त्तव्य पालन का वैसाही प्रेरक भाव, कार्य क्षमता की अपूर्व शक्ति, वही अकेले होने का ख्याल, अवि-

श्रास्त्र और दमन की नीति में वैसीही हठ धर्मी, जिसने चारों ओर घोर असन्तोष उत्पन्न कर दिया, दिखाई देता है। मैं सोचता हूं कि लार्ड कर्जन के परम भक्त भी यह दावा नहीं कर सकते हैं कि उन्होंने भारतवर्ष में ब्रिटिश शासन की नींव मज़बूत की है।" कुछ बातों में लार्ड कर्जन उन सर्वश्रेष्ठ अंग्रेजों में गिने जायेंगे जो इस देश में कभी आये हैं। उनकी अपूर्व मानसिक शक्तियां, उनकी चमत्कारिक शब्दचातुरी, उनकी अद्भुत कार्यक्षमता, उनका काम करने के लिए अपरिमित उत्साह—इनकी सदा न्याययुक्त और भरपूर प्रशंसा की जायगी। लेकिन देवताओं को डाह होता है, और जहां गुणों की वर्षा इतनी उदारता से की गई वहां उन्होंने उनको सहानुभूति पूर्ण कल्पना से वंचित रक्खा, जिसके बिना कोई मनुष्य विदेशीय जनता को कभी नहीं समझ सकता है। और यह एक दुखदाई सत्य है कि शासन की समाप्ति पर लार्ड कर्जन भारतवर्ष के लोगों को नहीं समझ पाये। यही उनकी अनेक भ्रान्तियों की जड़ थी और इसी के कारण लोग उनके वास्तविक स्वरूप को समझने में परेशान होते थे। और इस तरह से वह आदमी जो शासन की बागडोर हाथ में लेने के समय बिलकुल सच्चाई के साथ अपने अधीन प्रजा के भावों और उनके पक्षपातों तक को भी अत्यन्त सम्मान के साथ देखने की दम भरता था, उसी ने अन्त में न केवल हिन्दुस्तानियों की मौजूदा नस्ल को निष्ठुर शब्दों में भला बुरा कहा किन्तु उनके पूर्वजों और उनकी जाति के सर्वोपरि पूज्य आदर्शों तक को न छोड़ा जिसने अपने शासन के आरम्भ में हाकिमों को हुक्म जुआ यह चितावनी दी कि "अफसरों की बुद्धि इतनी उच्च नहीं है कि वह लोकमत की उत्तेजना और नियन्त्रण

के परे हो" और जिसने यह भी कहा कि हिन्दुस्तान की मौजूदा हालत मे "शिक्षित समुदाय की अवहेलना या उसका तिरस्कार करना राजनीतिज्ञता नहीं" उसी ने अन्त में विशेष रूप से उस लोकमत का परों से कुचला और अपने तथा अपने अधिकारी सहकारियों की सम्मति के लिए निभ्रान्त होने का वास्तविक दावा किया। बात तो यह है कि लार्ड कर्जन खास पके पकाये विचारों को लेकर हिन्दुस्तान का आये थे। उनकी दृष्टि में भारतवर्ष वह देश था जहा अंग्रेज सब काल के लिये शक्ति को तो अपने हाथ में रक्खें और हमेशा कर्तव्य का राग अलापें। हिन्दुस्तानी का तो काम अपने ऊपर हुकूमत कराने का था किन्तु कोई दूसरी आकांक्षा करना उसके लिये घोर पाप था। उनकी रचना में देश के पढ़े लिखे लोगों के लिये कोई स्थान नहीं; और जब वह उन्हे बहुत काल तक अपना विश्वासपात्र बनाने के निस्सार ढकोसले से फुसलाने में समर्थ न हुआ तब अन्त में उसने उन्हें दबाना शुरू किया। बम्बई के बाइकला क्लब में विदाई की वक्तृता में भी भारतवर्ष अंग्रेजों के केवल परिश्रम की रंग शाला है जिसमें देश की अगणित जनता—आबादी की ८० फीसदी—दर्शक है।

यदि लार्ड कर्जन कुछ कम अहम्मन्य होते, यदि उनमें कुछ अधिक विनम्रता होती, तो सम्भव है वह अपनी गलती समय से जान जाते। इससे वह उतना असतोष न पैदा करते और न उतनी चोट ही पहुचाते, जितना उन्होंने अपने आखिरी दो साल में उत्पन्न की लेकिन मुझे सन्देह है कि उनके शासन की मुख्य धारा दूसरी तरह से प्रभावित होती। लार्ड कर्जन के लिये राजनीतिज्ञता का सर्वोच्च आदर्श शासन-सचालन की

विशिष्टता थी जिसको मिस्टर ग्लेडस्टन स्वाधीनता का सिद्धान्त कहा करते थे उसको वे मानव उन्नति का एक साधन मानते थे। उन्हें जन-साधारण की आकांक्षाओं के साथ कुछ भी सहानुभूति न थी, और जब एक पराधीन प्रजा में उन्हें वैसी आकांक्षायें दिखाई देती हैं तब उनकी दृष्टि में उनको दबाना ही अपने देश की सेवा करना है। जैसे उन्होंने अपनी बाइकल्ला क्लब वाली स्पीच में साफ साफ कहा था कि उन्होंने राजनैतिक सुधार इसलिये नहीं किया क्योंकि उसमें उन्हें कुछ विश्वास न था। लार्ड कर्जन के गुणों ही पर ध्यान दें तो हम उनको इस दुस्साध्य कार्य की पूर्ति की कोशिश करते हुए देखते हैं कि भारतवर्ष में अंगरेजों की ताकत और मजबूत होती जाय और सार्वजनिक आन्दोलन और असंतोष का प्रवाह रोकदें। इसकी सिद्धि के लिये उन्होंने अधिकारियों में अपना सा कर्त्तव्य पालन का भाव उत्तेजित करना और हर तरफ शासन प्रणाली को अधिक सुव्यवस्थित बनाना चाहा। उनका यह प्रयत्न निष्फल हुआ जैसा उसको होना चाहिये था। इतना असंतोष भारतवर्ष में घोर और विस्तृत पहिले कभी न था जितना तब जब उन्होंने शासन की बागडोर अपने हाथों से छोड़ी। और अधिकारियों की सत्ता पर एकाधिकार के विषय में मैं जानता हूं कि हम उस समय के बहुत करीब हैं जब उस सफलता के साथ आक्रमण किया जायगा।

लार्ड कर्जन ने बम्बई में विदाई वाली वक्तृता में एक दावा किया था जिसकी कुछ विस्तार के साथ आलोचना करना आवश्यक है। उन्होंने अपने श्रोताओं से कहा, जैसा वे पहिले कह चुके थे—पिछले बजट पर बहस के समय पर कि यद्यपि उनको शिक्षित भारत की शत्रुता का सामना करना पड़ा है

किन्तु जनता उस सबके लिए उनकी कृतज्ञ होगी, जो कुछ उन्होंने उसके लिए किया है। शिक्षित समुदाय और हिन्दुस्तानी जनता के हितों में भेदभाव दिखाने का प्रयत्न उन लोगों का एक प्रिय साधन है, जो हमारे देशवासियों की न्याययुक्त आकाक्षाओं का दमन करना चाहते हैं। यह मार्के की बात है कि लार्ड कर्जन ने इसका आश्रय नहीं लिया जब तक उनका शिक्षित समाज से पूरा विगाड न हो गया। हमें मालूम है कि यह भेदभाव कृत्रिम और हास्यजनक है, और हम यह भी जानते हैं कि जो शिक्षित समुदाय की निन्दा करने का सरल साधन समझ इसका प्रयोग किया करते हैं उनको इसमें कुछ विश्वास नहीं है। लार्ड कर्जन अपने पक्ष की पुष्टि में निमक कर के घटाने, अकाल के कारण लगान के बकाये की माफी, नहर और प्रारम्भिक शिक्षा के लिए अधिक व्यय और पुलिस सुधार की तजवीजों का जिक्र करते हैं। इस कथन से ध्वनि यह निकलती है कि शिक्षित समुदाय के विरोध करने पर भी, कम से कम उनकी अवहेलना के होते हुए भी—उन्होंने इन तजवीजों को मजूर किया, यद्यपि असल बात यह है कि कांग्रेस बरसों से इनके लिए चिल्लाती रही है और वर्षों के अथक आन्दोलन ही के बाद, कांग्रेस इस ओर ध्यान देने में समर्थ हुई है। चार साल हुए जब ७ करोड़ की बचत होने पर भी सरकार ने टैक्सो में कुछ कमी न की थी और मैंने इसकी शिकायत करने की गुस्ताखी की थी और निमक कर को तुरन्त घटाने को कहा था, तब मुझे अच्छी तरह से याद है कि कैसे लार्ड कर्जन ने उनका मजाक उड़ाया था जो "जनता के बोझ" और निमक-कर को घटाकर उनका भार हल्का किया जाय। यह लार्ड कर्जन का सौभाग्य था कि वे हिन्दुस्तान

में ऐसे समय पर आये जब लार्ड लैंसडौन और सर डेविड बारबूर की सिक्का सम्बन्धी नीति ने रुपये का भाव कृत्रिम रूप से बढ़ा दिया था जिसके कारण भारत सरकार को "होमचार्जेस" की मद में सालाना लगभग ६ करोड़ की बचत होती थी। इससे और अफीम की आमदनी में बाढ़ से लार्ड कर्जन को अपने शासन कालमें बहुत बड़ी बचत होने लगी और उन्हें अपने पूर्वजों की तरह आर्थिक तंगी से पल भर के लिए भी व्यथित न होना पड़ा। बचत की, बड़ी रकमें देखते हुए मैं यह नहीं मान सकता कि लार्ड कर्जन ने प्रजा का बोझ खास तौर से हलका किया है। पिछले मार्च में उन्हों ने स्वयम् यह अनुमान किया था कि टक्सों में कुल करों के घटाने से जो आय घटी है वह लगभग १०½ करोड़ के थी। किन्तु उन्हों ने साथ ही यह भी न कह दिया कि इतने ही समय में साधारण आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए जितने धन की जरूरत थी, उसके अलावा भारतीय सरकार ने टैक्स देने वालों से ४१½ करोड़ अधिक वसूल किये। फिर, निमक कर के घटाने और अकाल के बकाये की माफी के कारण जो कुछ लाभ कर देने वालों को हुआ है वह उस बड़ी हानि के सामने कितना क्षुद्र है, जो प्रजा को कृत्रिम रूप से रुपये के भाव बढ़ाने से हुई है। इससे जो कुछ थोड़ा उन्हों ने जमा कर चांदी के गहनों में लगा दिया था उसका मूल्य तुरन्त ही गिर गया। अप्रत्यक्ष रूप से उनका लगान बढ़ा और उन पर जो कर्ज था वह भी रुपये के भाव में उलट फेर के कारण अधिक हो गया। इस तरह से उन पर जो स्थायी भार लदा है वह और भी अधिक हो गया। प्रारम्भिक शिक्षा के लिए लार्ड कर्जन के

समय में बहुत कुछ किया गया है। किन्तु जब हम यह देखते हैं कि भारत में जन साधारण की शिक्षा के लिए सरकार कितना कम खर्च करती है यह आश्चर्य की बात होती यदि इतनी अधिक बचत के होते हुए भी देश के शिक्षा सम्बन्धी व्यय में लार्ड कर्जन कुछ वृद्धि न करते। लेकिन यदि उन्होंने शिक्षा के लिए ३७½ लाख दिए हैं तो फौज पर ७½ करोड़ सालाना अधिक व्यय होने लगा, और आल मदक्कर चारों तरफ युरोपियन अफसरों के वेतन बढ़ाये गये। मिस्टर ग्लैडस्टन के शब्दों में "व्यय का भूत" देश में स्वच्छन्दता से विचर रहा है और लार्ड कर्जन ने मितव्ययता के सनातनी सिद्धान्त का अनुसरण कभी नहीं किया, यद्यपि देश का हित इसी में है। जो शासक उतनी ही दृढ़ता के साथ शासन-प्रणाली के सुधार का काम करता, जितनी लार्ड कर्जन ने पिछले सात साल में दिखाई, वह अवश्य ही बहुत से शासन-सम्बन्धी दोषों को या तो निकाल देगा या उनके कुपरिणामों को कम करेगा। किन्तु यह इस दावे से बिलकुल भिन्न है कि वे *जनता के स्वाभाविक नेताओं, देश के शिक्षित लोगों*, से बढ़ कर जन साधारण के हितैषी थे।

मैं समझता हूँ कि जब माननीय मेम्बर ने यह बात कही थी तब वह थोड़ी दिल्लगी कर रहे थे। यदि दिल्लगी नहीं कर रहे थे तो उनके कथन का कुछ अर्थ ही नहीं समझ पड़ता। मेरा अनुमान है कि किसी प्रस्तावित आईन के मसौदे का प्रकाशित करने का अभिप्राय यह है कि जिन लोगों पर उसका कुछ भी प्रभाव पड़ता हो उन्हें अपने विचार प्रकट करने का अवसर मिले। लोग तब ही विचार प्रकट कर सकते हैं जब उनको सब नियमों की समीक्षा करने का समय मिले। सरकार पर कोई अनुचित अन्याय या दोषारोप न हो, इसलिये आवश्यक है कि यह समीक्षा मसौदा पेश करने वाले मेम्बर के बतलाये हुये कारणों को ध्यान में रखते हुये, की जाय। अच्छा तो यह मसौदा अक्टूबर को शिमले में प्रकाशित हुआ था। यहा से इसके नियम तार द्वारा देश के दैनिक समाचार पत्रों के पास भेजे गये और १० तारीख को प्रातःकाल प्रकाशित हुए। समस्त भारत में केवल सात या आठ नगर हैं जहा से दैनिक समाचारपत्र निकलते हैं। दूसरे बड़े नगरों में यह पत्र एक या दो दिन बाद और कुछ नगरों में तीन चार या पाचदिन बाद पहुचते हैं। सामान्यतः छोटे छोटे नगरों में तो दैनिक पत्र जाते ही नहीं, उनको तो साप्ताहिक पत्रों से ही सतोष करना पड़ता है। इस लिए माननीय मेम्बर को मानना पड़ेगा कि शिमले से तारद्वारा भेजे हुए किसी समाचार को भारत के समान विशाल देश के सब भागों में फैलने के लिए कमसे कम एक सप्ताह चाहिये। फिर मसौदा कौंसिल में १८ अक्टूबर को पेश किया गया था और पेश करने वाले मेम्बर की वक्तृता की सक्षिप्त रिपोर्ट दैनिक पत्रों में १६ तारीख को प्रातःकाल निकली। वक्तृता

का देश भर में फैलाने के लिये कम से कम एक सप्ताह अवश्य लगा होगा। इस प्रकार सरकार का पूरा पक्ष देश के सामने विचार के लिये २६ अक्टूबर से पहिले किसी तरह नहीं पहुंच सकता। इसके बाद विचार करने के लिये, आपत्तियों को स्पष्टत प्रकट करने के लिये और उन आपत्तियों को सरकार के पास तक पहुचने के लिये भी कुछ दिन चाहिये। इसके लिये अगर एक महीने का समय दिया जाता तो भी वह काफी न होता। पर यहा हुआ क्या? मसौदे पर विचार करने के लिये नियुक्त की हुई विशेष कमिटी ने २२ अक्टूबर को पहिली बैठक की, २३ तारीख को अपना काम खत्म कर दिया और २४ को रिपोर्ट पेश करदी। सभी जानते हैं कि विशेष कमिटी के रिपोर्ट दे चुकने के बाद और कोई परिवर्तन नहीं हो सकता। इस लिये जनता की कोई सम्मति मसौदे के व्यापक लक्षणों या छोटी २ बातों में कोई परिवर्तन कराने में इसी शर्त पर कृतकार्य हो सकती है कि वह सरकार के पास विशेष कमिटी का काम खत्म होने के पहिले ही पहुंच जाय। यही कारण है कि कौंसिल का नियम है कि सामान्यत विशेष कमिटी मसौदे के सरकारी गजट में प्रकाशित होने के तीन महीने बाद ही अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत करे। आज के मामले के सम्बन्ध में विशेष कमिटी को किसी भी लोकमत से लाभ उठाने का अवसर न मिला। और तो क्या, तारद्वारा जो थोड़े बहुत प्रतिवाद सरकार के पास आये थे और जिन की प्रतिलिपियां हम में से कुछ लोगों के पास भी आई थीं वह भी विशेष कमिटी के सामने नहीं रक्खे गये। इस अवस्था में यह कहना कि हमने जनता को विचार के लिये काफी समय दिया, लोकमत की हँसी उड़ाना मात्र है। अच्छा होता

यदि माननीय मेम्बर ने साफ २ यह कहा होता कि "भारतवर्ष में व्यवस्थापक कौंसिल का एक मात्र कार्य यह है कि वह शासकवर्ग की आज्ञाओं को बिना कुछ कहे सुने मान लिया करे और लेखबद्ध कर लिया करे। कौंसिल से कोई मसौदा पास कराना निरी रस्म है और वर्त्तमान के समान अवसरों पर इस रस्म को पूरा करना हमें बहुत खलता है। यदि आज भी हम इस रस्म को पूरा कर रहे हैं तो इसका कारण मजबूरी है और कुछ नहीं। जनता को हमारे पास निवेदन पत्र भेजने का कष्ट न उठाना ही अच्छा है क्योंकि हम इस मसौदे को आईन बनाने का दृढ़ निश्चय कर चुके हैं और कोई चाहे कुछ भी कहे सुने हम अपने निश्चय से ढलने वाले नहीं हैं। दूसरे जनता का यह काम नहीं है कि हम से किसी बात का कारण पूछे या हमें जवाब देने की ढिठाई करे। उसका काम तो केवल हमारी आज्ञा का पालन करना है"। माननीय मेम्बर स्वयं अपने मन में जानते हैं कि हम ने मसौदे के हानि लाभ के पूर्ण विचार के लिये, सच पूछिये तो, कुछ भी समय नहीं दिया क्योंकि तभी तो उन्होंने अपने पक्ष की रक्षा के लिये दूसरी दलील की आवश्यकता समझी। वह कहते हैं कि "यद्यपि मसौदा जनता के सामने थोड़े ही दिन रहा है तथापि इसी आशय की, पूर्वीय बंगाल और पंजाब के लिये प्रचारित, विशेष आज्ञा, पांच महीनों से देश के सामने है"। खूब! उन्होंने यह भी क्यों न कह दिया कि आयरलैंड का इतिहास वर्षों से आपके सामने है और रूस में जो कुछ आज कल हो रहा है उससे भी आप सर्वथा अपरिचित नहीं हैं"।

मैं ऐसी अत्यंत आवश्यकता और ऐसे घोर संकट की अवस्था की कल्पना कर सकता हूं कि इस प्रकार का कानून

बनाना और इसी ढग से बनाना आवश्यक हो पडे। यदि देश में शासन के विरोध का प्रवल क्रियाशील और सुविस्तृत आन्दोलन होता, यदि बहुत से दगा फसाद हुआ करते, यदि लोगों को बलवा करने का खुल्लम खुल्ला उपदेश दिया जाता तो मैं समझ सकता कि शासकवर्ग अपने को इस प्रकार के दमनशील अस्त्रों से क्यों सुसज्जित कर रहे हैं। पर क्या कोई सत्यवक्ता यह कह सकता है कि आज देश में ऐसी भयकर दशा उपस्थित है। इसके विपरीत, मैं कहता हू और मेरे यह कहने का कोई प्रतिवाद नहीं कर सकता, कि देश की अवस्था में ऐसी कोई बात नहीं है जो ऐसी दशा से तनिक भी मेल खाती हो। माना कि सारे देश में असतोष व्याप रहा है, माना कि दो प्रान्तों में तीव्र असतोष भरा हुआ है, माना कि सरकार की दमन नीति ने इस असतोष में क्रोध की मात्रा जो प्रतिदिन बढती जाती है और प्रबल होती जाती है, और भी जोड दी है। पर सच पूछिये तो देश में क्रियाशील अशाति बहुत कम है और जो कुछ है भी उसके कारण प्रत्यक्ष हैं, उसका समझना कोई बडी बात नहीं है। मसौदे के साथ लगे हुये "उद्देश्यों और कारणों के विवरण" में कहा गया है कि "गत छ मास की घटनाओं से सरकार को विश्वास हो गया है कि देश की शाति-रक्षा के लिये और नियमानुपालक जनता की रक्षा के लिये आवश्यक है कि राजद्रोहात्मक सभाओं को रोकने के लिये एक नया कानून बनाया जाय और उस कानून को आवश्यकतानुसार भारत के किसी भी भाग में प्रचलित करने की व्यवस्था की जाय" और इस मसौदे को पेश करते समय माननीय मेम्बर ने कहा था —

"हमें आशा थी कि विशेष आज्ञा की अवधि समाप्त होने पर इस प्रकार का कानून बनाने की कोई आवश्यकता न रहेगी। पर हमारी यह आशा दुराशा मात्र सिद्ध हुई। हम दुख के साथ स्पष्ट देखते हैं कि लोग राजद्रोह फैलाने की की और शान्ति भङ्गकारी जातीय विद्वेष फैलाने की बराबर कोशिश कर रहे हैं, और यह कोशिशें विशेष आज्ञा के अन्तर्गत दो प्रान्तों के अलावा और जगह भी हो रही है"।

यह कथन भयंकर, किन्तु अनिश्चित शब्दों में किया गया है। मुझे आश्चर्य है कि इसकी पुष्टि में घटनाओं का कुछ प्रमाण देना माननीय मेम्बर ने आवश्यक नहीं समझा। उन्हों ने न तो कोई अंक उद्धृत किये और न किन्हीं घटनाओं का उल्लेख किया। बस, साधारण शब्दों में, एक बात कह मारी कि देश में राजद्रोह फैलाने के बराबर प्रयत्न हो रहे हैं और समझ लिया कि सारे देश के लिये ऐसा भयंकर कानून बनाने की आवश्यकता प्रमाणित हो गई। मैं समुचित नम्रता के साथ कहता हूं कि यह ईमानदारी का काम नहीं है। भारतवर्ष के अधिकांश निवासी जो पूर्णत राजभक्त हैं, इस बात से अवश्य रुष्ट होंगे और उनका रुष्ट होना बिल्कुल न्यायसंगत होगा। अच्छा आइये अब हम माननीय मेम्बर के दावे की जरा समीक्षा करें। पहिले तो वह यह कहते हैं कि हमें आशा थी कि गत मई मास की विशेष आज्ञा की अवधि समाप्त होने पर दोनों प्रान्तों में उस आज्ञा की नीति जारी रखने की आवश्यकता न होगी पर हमारी यह आशा पूरी न हुई। दूसरी बात वह यह कहते हैं कि यदि भारत के अन्य प्रान्तों में भी इस नीति का प्रयोग किया जायगा तो वहां भी शान्तिभङ्ग होने का खटका बना रहेगा। अच्छा असली बात

क्या है ! पहिले पंजाब को लीजिये। जहां तक मुझे मालूम है कि विशेष आज्ञा प्रचारित होने के बाद सारे प्रान्त में केवल एक सार्वजनिक सभा हुई है। वह दिल्ली में हुई थी और दिल्ली में विशेष आज्ञा प्रचारित होने के पहिले हुई थी। सभा का उद्देश्य लाला लाजपतराय जी के निर्वासन पर शोक प्रकाश करना था। उसमें हिन्दू मुसलमान दोनों सम्मिलित हुए थे। इस अर्से में प्रान्त भर में कहीं भी शान्तिभङ्ग नहीं हुए। माननीय मेम्बर शायद कहेंगे कि अभी यह सुव्यवस्था विशेष आज्ञा के कारण ही है। अच्छा थोडी देर के लिए मान लीजिये कि यही बात है तो भी उन्हें पंजाब के विषय में निराश होने की शिकायत करने का कोई कारण नहीं अब पूर्वीय बंगाल की ओर देखिये। वहाँ भी हिन्दू मुसलमानों के उन दंगों के बाद जिनके कारण विशेष आज्ञा प्रचारित की गई थी, कोई झगडा फसाद नहीं हुआ। जहां तक लोगों को मालूम है, विशेष आज्ञा का विरोध करके वहां कोई सार्वजनिक सभा नहीं हुई है। लोगों ने जिला मजिस्ट्रेट की इजाजत से फरीदपुर में एक जिला परिषद् करना चाहा था पर जब मजिस्ट्रेट ने कार्यक्रम के दो प्रस्तावों पर, जिनमें से एक लाला लाजपतराय के निर्वासन के सम्बन्ध में और दूसरा विदेशी माल के बायकाट के सम्बन्ध में था, आपत्ति की तब लोगों ने कान्फरेंस का विचार छोड दिया इससे लोगों में घोर असंतोष और क्रोध फैला था पर शान्तिभंग जरा भी न हुई। सम्भव है कि गुप्त पुलिस ने सरकार के पास पूर्वीय बंगाल में निजी घरों में छिप कर होने वाली सभाओं के वर्णन भेजे हों। माननीय मेम्बर ने अपनी १८ अक्टूबर की वक्तृता में कुछ ऐसी ही बात कही है। पर एक तो जैसा कि रावलपिंडी के मुकद्दमे से और हाल की

घटनाओं से सिद्ध होता है, गुप्त पुलिस की भेजी हुई सब रिपोर्टों पर बहुत समझ बूझकर विश्वास करना चाहिये दूसरे मान लीजिय ऐसी सभायें हुई हैं, तो भी शान्ति भङ्ग नहीं हुई और मालूम होता है, कोई बडी हानि भी नहीं हुई, मैं समझता हू कि, घरेलू जीवन के समान राजकीय मामलों में भी ऐसी बातों को, जो किसी को कुछ बडी हानि नहीं पहुचातीं और जिनको रोकना भी कठिन है, आख मीचकर टाल देना ही बुद्धिमानी है। यह तो हुई उन दो प्रान्तों की बात जिनमें गत मई मास से विशेष आज्ञा प्रचलित है। इन प्रान्तों के बाहर, देश भर में केवल दो जगह दगे हुए हैं—एक तो कुछ दिन हुये मद्रास प्रेसीडेन्सी के अन्तर्गत कोकोनद में और दूसरा हाल में कलकत्ते में। पहिले का कारण यह था कि एक अंग्रेज अफसर ने एक विद्यार्थी को "वन्दे मातरम्" चिल्लाने पर पीटा था। दूसरे के विषय में कहा जाता है कि स्वय पुलिस ने पहिले आक्रमण किया। पर इन दोनों दगों का मूल कारण कुछ भी क्यो न रहा हो और हमें उनका कितना ही शोक क्यों न हो, उनसे कदापि यह सिद्ध नहीं होता कि सारे देश को ऐसे कठोर कानून की जजीर से, जैसा कि आज कौन्सिल से पास करने को कहा गया है, बाध दिया जाय। भिन्न २ प्रान्तों में जो सार्वजनिक सभायें हुई हैं उनमें, कलकत्ते की कुछ सभाओं को छोडकर, ऐसी कोई नहीं है कि विशेष प्रकार से जनता का ध्यान आकर्षित करे। निस्सन्देह कुछ सभाओं में सरकार के विरुद्ध कडी २ बातें कही गई हैं और शायद दस पाच सभाओं में बहुत बढ बढ कर बातें कही गई हैं पर बहुत करके इसका कारण सरकार की, गत मई मास से प्रयुक्त की हुई, दमन नीति है। मेरी समझ में तो देश की स्थिति में ऐसी कोई बात नहीं

है जिसका निपटारा सरकार वर्तमान कानून के अनुसार प्राप्त शक्ति से अच्छी तरह नहीं कर सकती । हां, उस शक्ति का प्रयोग कुशलता, बुद्धिमानी और दृढ़ता के साथ होना चाहिये चाहे जिस दृष्टि से देखिये, ऐसा कोई सकट नहीं है, ऐसी कोई विषम अवस्था उपस्थित नहीं है जिसके कारण इस मसौदे के भयंकर नियम बनाने की, या इसको इस तरह झपटी से कौन्सिल से पास कराने की, आवश्यकता हो। माननीय मेम्बर कहते हैं कि 'मई मास की विशेष आज्ञा की अवधि आगामी १० नवम्बर को समाप्त हो जायगी, यदि उस तारीख तक नया आईन न बनेगा तो बडी गडबड मच जायगी" । यह कथन केवल पजाब और पूर्वीय बगाल के लिये लागू हो सकता है । फिर पजाब में तो ऐसी शान्ति विराजमान रही है कि यदि सरकार उसे एक बार फिर साधारण कानून के नीचे रहने का अवसर दे तो अच्छा होगा। रहा पूर्वीय बगाल सो यदि वहा की स्थिति में वस्तुत चिन्ताजनक लक्षण दीख पडते तो सरकार दूसरी विशेष आज्ञा निकाल सकती थी या पूर्व बगाल और आसाम प्रान्त की व्यवस्थापक कौन्सिल में कानून बनाया जा सकता था। मैं समझता हूँ कि यदि ऐसे मामलों के सम्बन्ध में कोई कानून बनाया ही जाय तो बहुत अच्छा हो कि प्रान्तीय सरकारों द्वारा प्रान्तीय कौन्सिलों में ही बनाया जाय। ऐसा करने से दोनों पक्ष पूरे ज्ञान से सम्पन्न होकर, प्रान्त का उन विशेष परिस्थितियों पर अच्छी तरह विचार कर सकेंगे जिनके आधार पर शासकवर्ग असाधारण अधिकार मागते हैं ऐसा करने से उन प्रान्तो के लिये विशेष दमनकारी नियम न बनेंगे जिन के लिये साधारण आईन काफी है।

भारत के अधिकाश शिक्षितजनों के हृदय में यह बात

घुस गई है। कि गत छ महीनों में उद्देश्य और आन्दोलन ब्रिटिश जनता के सामने बहुत नमकमर्च लगाकर असत्य रूप में रक्खे गये हैं और हमारे साथ ईमानदारी का बर्ताव नहीं किया गया है। कुछ लोगों ने थोडे से कल्पनाशील व्यक्तियों की वक्तृताओं को अत्यधिक महत्व प्रदान किया है और प्रत्येक प्रासंगिक घटना का अनुचित लाभ उठाकर सुधार के लिये और निर्दिष्ट कठिनाइयों के निवारण के लिये होने वाले आन्दोलन को बगावत के रूप में दर्शाया है। यह कार्य-मुख्यतः कुछ विद्वेषी उच्छृङ्खल पत्रसम्वाददाताओं का रहा है पर अभाग्यवश सरकार के दमननीति स्वीकार कर लेने से भी उनके कथनों का कुछ समर्थन सा हो गया है। सबसे अधिक शोक की बात यह है कि स्वयं भारत सचिव इन असत्य निरूपणों के शिकार हो गये हैं। स्वयं इस देश के लोगों को कुछ ज्ञान न होने से और अपने पद के उत्तरदायित्व के भाव के नीचे दब जाने से उनकी दृष्टि ने ठीक २ काम करना छोड दिया है और उनका, वस्तुओं का पारस्परिक परिमाण बुद्धि बिगड गई है। समय समय पर ब्रिटिश पार्लामेंट के हौस आफ कामन्स में उन्होंने विपत्तिसूचक संकेत किये हैं और अनेक बार अपने भाषण में ऐसे शब्द प्रयोग किये हैं कि मानो देश में बडा भारी विप्लव होनेवाला है और बडी घोर आपत्ति आनेवाली है। इस अवस्था में वर्तमान मसौदे के पास होने से और ऐसी झपटी के साथ पास होने से, इङ्गलैंड में हमारे विषय में प्रचलित असत्य भावनायें और भी गहरी जड पकडेंगी। और इससे अपने साथ होनेवाले अन्याय और अप कार का यह भाव और यह आभ्यन्तर क्रोध जिसके साथ मेरे देशभाई गत ६ महीनों में लगातार घटनाओं का निरीक्षण

करते रहे हैं, और भी बढ जायगे। मैं समझता हूँ कि इस मामले में सरकार अपनी उस भूल को दुहरा रही है जो उसने बगाल के दो टुकडे करने में की थी। बगविच्छेद से शासन सम्बन्धी सुव्यवस्था के चाहे जिन लाभों की आशा रही हो पर उसका फल यह हुआ है कि उस प्रान्त के अधिकाश जन अब सरकार की ओर प्रेम और प्रसन्नता की दृष्टि से नहीं देखते। महान् से महान् शासन सम्बन्धी लाभ भी इस क्षति की पूर्ति नहीं कर सकता। इसी तरह से जहाँ सरकार इस आईन से एक आदमी की बे सिर पैर की बातचीत रोकेगी वहा नौ सौ निन्यानबे आदमियों के मन में यह भाव उत्पन्न करेगी कि बिना किसी अपराध के हमारे सिर पर यह कठोर कानून लाद दिया गया है, चुपके २ धीरे २ किन्तु निश्चित रूप से उनके मन सरकार से हटते जायगे और अन्त में सरकार की ओर उनका सारा भाव बदल जायगा।

हाल में भारत में राजद्रोह के विषय में इतना कहा सुना गया है कि आज की सभा में सक्षेप से यह परीक्षा करना अनुपयुक्त न होगा कि वास्तव में राजद्रोह है या नहीं, यदि है, तो कितना है, उसका मूल कारण क्या है, उसके लक्षण क्या है? मैं समझता हूँ कि पाँच वर्ष हुए जब लार्ड कर्जन ने दिल्ली दरबार में यह घोषणा की कि भारतवर्ष की प्रजा राजभक्त है और हृदय से चाहती है कि इङ्गलैंड से हमारा सम्बन्ध बना रहे तब उन्होंने कोई अत्युक्ति न की थी, एक बिल्कुल सच बात कही थी। जब हम भारतीय राजभक्ति का जिक्र करते हैं तब हमारा अभिप्राय यूरोप में जमीन्दारी प्रथा के समय में प्रचलित या भारत में राजपूतो के समय में प्रचलित राजभक्ति भाव से नहीं है हमारा अभिप्राय यह है कि लोग यह

समझकर कि अंग्रेजी शासन ने भूतकाल में हमारे लिए बहुत कुछ किया है और अंग्रेजी शासन भविष्य उन्नति के लिए आवश्यक परिस्थितियों को स्थिर रक्खेगा, अपने आत्महित के उत्कृष्ट भाव से प्रेरित हो कर अंग्रेजी शासन से प्रेम करते हैं और उसकी स्थिरता के अभिलाषी हैं। इस अर्थ में भारत का शिक्षित समुदाय सदा से पूर्णत राजभक्त है। पर यह अवश्यभावी था कि वह धीरे २ अपनी स्थिति से और वर्तमान शासनपद्धति से असन्तुष्ट हो उठें और बाईस वर्ष हुये उन्होंने सुधार के लिए सुव्यवस्थित आन्दोलन प्रारम्भ किया। इस आन्दोलन के उद्देश्य और कार्यप्रणाली पूर्णत राज नियमानुकूल थी, यह प्रतिवर्ष देश में तेजी के साथ फैलने लगा। इसको सरकार से बहुत प्रोत्साहन न मिला था पर इसके मार्ग में कोई बडी अडचन भी नहीं डाली गई थी और लार्ड कर्जन के समय तक इसकी धारा बहुत करके बाधा हीन मार्ग से, जातीय विद्वेष की कटुता से सामान्यत पृथक, बहती रही। इसके बाद एक महान्, और कुछ अंशों में, विप्लवकारी परिवर्तन हो गया। लार्ड कर्जन की अउन्नति शील नीति ने, महारानी विक्टोरिया के घोषणापत्र को बातों में उडा देने के उनके प्रयत्न ने कलकत्ते, में विश्व विद्यालय के वार्षिक सम्मेलन के अवसर पर उनके बुद्धिमत्ता हीन भाषण ने सारे देश में ज्वलत क्रोध की अग्नि प्रज्वलित कर दी। यह अग्नि बगाल में सब से अधिक थी क्योंकि यद्यपि लार्ड कर्जन के कानूनों और व्यवस्थाओं का प्रभाव सारे देश पर पडा तथापि बगाल पर उनकी जैसी चोट पडी वैसी और प्रान्तों पर नहीं पडी थी। और जब इन सब बातों के ऊपर बगाल के दो टुकडे कर दिये गये तब तो यहा एक

तीव्र और उत्तेजित आन्दोलन उठ खड़ा हुआ जिसमें सुधार के लिये सामान्य आन्दोलन बिलकुल मिल गया। मानो एक प्रकार की सहानुभूति के द्वारा बंगाली आन्दोलन की कटुता सारे देश के आन्दोलन में व्याप गई। और प्रान्तों की अपेक्षा बंगाल में सदा से विचारों और भावों की अधिकता रही है। बंगविच्छेद के विरुद्ध आन्दोलन की असफलता लोगों के दिल में चुभ गई। अक्खड़ आदमियों के मन में नये प्रश्न उठने लगे और वह "नये सिद्धान्तों" का उपदेश करने लगे। सच है कि इन लोगों की बातें देश के कुछ लोगों ने सुन और मान ली हैं पर इसका मुख्य कारण यह नहीं है कि लोग उनके सिद्धान्तों के व्यवहार योग्य होने में विश्वास करते थे पर इस कारण से वह उनकी वक्तृताओं के ज्वलन्त, ओज और काव्य से मोहित हो गये थे। आज इनका जो कुछ प्रभाव है उसका कारण सरकार और जनता के बीच का वह मनमोटाव है जो अब बढ़ गया है लेकिन जिसको ठीक कर देना अब भी सरकार की सामर्थ्य में है। दमनशील कानून तो मनमुटाव को और भी बढ़ा देंगे और इस प्रकार नये उपदेशकों के प्रभाव को भी प्रबल कर देंगे।

इस वर्ष के प्रारंभ में नई बस्ती के सम्बन्ध में प्रस्तावित आईन के कारण एवं अन्य कृषिसम्बन्धी कष्टों के कारण, पञ्जाब में भी एक तीव्र आन्दोलन उत्पन्न हुआ। जब सरकार ने "सिविल और मिलिटरी गजट" को एक कोमल चेतावनी देकर छोड़ दिया पर "पञ्जाबी" पर जातीय विद्वेष भड़काने का अभियोग लगा कर, स्वयं मुकदमा चलाया तब आन्दोलन में कटुता का एक नया अंश आ मिला। थोड़े दिन के लिये पञ्जाब में साधारण सुधार-आन्दोलन नये आन्दोलन

में बिलकुल मिल गया। अन्य प्रान्तों पर इसका प्रभाव पड़ना ही चाहिये था और पड़ा भी। इसके बाद लाहौर में बृहत् सभाएँ हुई और रावलपिंडी में दंगा हुआ। तत्पश्चात् सरकार ने दमनशील कार्रवाइयाँ कीं, जिनमें से मुख्य लाला लाजपतराय का निर्वासन, रावलपिंडी के वकीलों की गिरफ्तारी, उन पर मुकदमा चलाना, और सार्वजनिक सभाओं के सम्बन्ध में विशेष आज्ञा की घोषणा थी। सारे देश में बेचैनी फैल गई, पञ्जाब को तो लकवा सा मार गया, दूसरे प्रान्तों के अत्यंत शान्त और विचार शील मनुष्यों के लिये भी संयम पूर्वक सम्मति प्रकट करना कठिन हो गया। लाला जी के समान मनुष्य, जिनसे उनके प्रान्तों के ही नहीं किन्तु अन्य प्रान्तों के हज़ारों आदमी प्रेम करते हैं, जो उन्नत चरित्र और उत्कृष्ट भावों से सम्पन्न हैं, जो हृदय से धार्मिक और सामाजिक सुधारक हैं, जो राजनैतिक कार्यकर्त्ता भी हैं, जिनके दोष चाहे कुछ भी क्यों न हों पर जो अपना सारा काम खुल्लमखुल्ला बिना किसी गोपनीय रहस्य के करते थे, ऐसा मनुष्य अचानक गिरफ्तार करके बिना मुकदमा चलाये ही निर्वासित कर दिया गया, यह देखकर सारा देश सन्न हो गया। रही रावलपिंडी की बात सो उसके विषय में मैं क्या कहूं। चार महीने तक सारा देश यह दृश्य देखता रहा कि पूजनीय लाला हंसराज, जो इस कौंसिल में बैठे हुए किसी मेम्बर की ही तरह, दंगा फसाद कराने का विचार भी अपने मन में नहीं ला सकते, अन्य माननीय सज्जनों के साथ मारपीट के लिये प्रोत्साहन देने के और राजराजेश्वर के विरुद्ध षड्यन्त्र रचने के अभियोग के कारण, हवालात में सड़ रहे हैं। इन महानुभावों के कष्ट जनता के मन

से जल्द नहीं भूल सकते। अब देश यह प्रतीक्षा कर रहा है कि देखें अधिकारीवर्ग उन लोगों को क्या दंड देते हैं जिन्होंने ऐसी गवाही देकर जिसे मजिस्ट्रेट ने अत्यंत अविश्वासनीय और बहुत कर के जाली बतलाया है, इन महानुभावों को ऐसे कष्ट दिये। जब देश में यह बातें हो रही हैं तब क्या आश्चर्य है कि धैर्य, नर्मी और आत्मसंयम का उपदेश देने वालों की आवाज कुछ न सुनी जाय? गत छः महीने की घटनाओं ने उन लोगों को बड़ा सहारा दिया है जो सख्त और कभी २ बे सिर पैर की भी बात चीत करते हैं।

अच्छा तो देश की ऐसी स्थिति है। बंगाल में कुछ लोग नये मंत्र का उपदेश देने लगे हैं और देश में कहीं २ उनके उपदेश की प्रतिध्वनि सुनाई पड़ती है। पर जनता पर प्रभाव डालने की उनकी जो कुछ सामर्थ्य है वह मुख्यतः इस कारण से है कि शासनसम्बन्धी सुधारों के विषय में और निर्दिष्ट कठिनाइयों के निवारण के विषय में देश के मन में अत्यन्त दीनता और निराशा का भाव प्रचलित है। स्पष्ट है कि इसका इलाज कोरी दमन नीति नहीं है किन्तु यह है कि सरकार बुद्धिमानी और दृढ़ता के साथ जनता को प्रसन्न करने की रीति अङ्गीकार करे। जहाँ तक पंजाब का सम्बन्ध है वहाँ तक श्रीमान् लाट साहब ने नई बस्ती वाले कानून को नामंजूर करके, इस नीति का एक अत्यंत महत्त्वपूर्ण प्रयोग किया है। जनता को राजी करने के काम का और भी बढ़ाइये, निर्वासित कैदियों को मुक्त कर दीजिये, यदि सरकार को उनके विरुद्ध कोई शिकायत है तो न्यायालय में न्याय्य रीति से उनका विचार होने दीजिये, विशेष आज्ञा की अवधि समाप्त होने पर प्रान्त में साधारण कानून का ही

राज्य रहने दीजिये। जैसे पञ्जाब में नई बस्ती वाला आईन रद्द कर दिया गया है वैसे ही वंग विच्छेद में भी कुछ ऐसा परिवर्तन कर दीजिये जो बंगालियों को अच्छा लगे। तब इन दोनों प्रान्तों के तीव्र असन्तोष के कारण दूर हो जायँगे और सुधार आन्दोलन की पुरानी धारा उन कडवी सहायक धाराओं से, जो हाल में आ मिली हं, पृथक हो जायगी। तब सरकार सुधार के प्रश्न पर उसके गुण दोष के अनुसार विचार कर सकेगी और यदि वह उस पर उदार राजकौशल के साथ विचार करेगी तो वह ऐसा निपटारा कर सकेगी जो सब को संतोष-जनक हो इस सम्बन्ध में मैं सर हार्वे ऐडमसन की एक बात के बारे में जो उन्होंने १८ तारीख को कही थी कुछ शब्द कहना चाहता हू। दमन की आवश्यकता बतलाते हुए माननीय मेम्बर ने कहा था कि "भारत सरकार ने बराबर यह स्वीकार किया है कि अशान्ति का एक मात्र कारण राज द्रोहात्मक आन्दोलन नहीं हे किन्तु उसका आधार शिक्षित भारतवासियों की स्वाभाविक उच्च आकाक्षाओं पर है। इन आकाक्षाओं को पूरा करने के लिये और भारतवासियों का देश के शासन में घनिष्ठता से सम्बन्ध करने के लिये हम ने सुधार का एक बडा और उदार प्रस्ताव प्रकाशित किया जो समालोचना के लिये जनता के सामने है"। इतना कहने के बाद उन्होंने खेद प्रकाश किया कि लोगों ने प्रस्ताव का स्वागत अच्छी तरह नहीं किया जिससे मालूम होता है कि सरकार का ऐसा आदमियों से पाला पडा है जो किसी तरह संतुष्ट ही न होंगे। मुझे विश्वास है कि माननीय मेम्बर उन सब लोगों को इस श्रेणी में नहीं गिन रहे हैं जो सरकार के प्रस्तावों का जोश के साथ अभिनन्दन नहीं कर सकते।

पर जैसा कि बम्बई प्रान्तीय समिति के तार से मालूम होता है, उनके शब्दों का यही अर्थ समझा गया है। यह अभाग्य की बात है। पर मैं एक बात ज़रूर कहना चाहता हू। यदि सरकार को आशा थी कि उनके प्रस्तावों के प्रकाशित होने से देश के असतोष की मात्रा कुछ भी कम हो जायगी तो उनको केवल निराशा ही हो सकती थी। प्रस्ताव न तो महान है और न उदार है और कुछ अंशों में तो वह सुधार से बिलकुल खाली है। उससे जो खेद उत्पन्न हुआ है उसने प्रचलित असतोष को और भी बढा दिया है। मानो यह भी काफी नही था, इसलिये प्रस्तावों को समझाने में बिना किसी आवश्यकता के कुछ ऐसे शब्द प्रयोग किये गये हैं जो कुछ वर्गों का चित्त दुखाये बिना नहीं रह सकते। मुझे खेद है कि लगभग सारा प्रस्ताव उस गौरव और गम्भीरता से खाली है जो मनुष्य महत्वपूर्ण राजकीय पत्रों में देखना चाहता है।

यह कहा गया है कि यद्यपि यह आईन सारे देश के लिये बना रहा है तथापि किसी भी स्थान के लोगों के लिये, इसके नियमों से रक्षा के हेतु, दो साधन प्रस्तुत हैं। एक तो यह कि भारत सरकार इसको किसी प्रान्त में प्रचलित करने की आज्ञा दे और दूसरा यह कि प्रान्तीय सरकार उस स्थान को उद्घोषित करे। जरा सा विचार करने से मालूम हो जायगा कि इन सरक्षक विधानों में कुछ भी नही है। पहिला तो नाम मात्र का है। एक स्थान राजद्रोह से सर्वथा शून्य है यद्यपि यदि यह समझा जावे कि उसी प्रान्त के किसी दूसरे स्थान में इसके नियम प्रचलित करने की आवश्यकता है तो इसके अलावा और कुछ नहीं कर सकती कि सारे प्रान्त के लिये आईन को लागू कर दे। इस प्रकार एक

स्थान के कारण सारे प्रान्त के लिये आईन लागू हो जायगा। फिर जब एक बार सारे प्रान्त के लिये आईन लागू हो गया तो लगभग सारे निवासियों के पूर्णत राजभक्त होने पर भी और राजद्रोह की आशंका से पूर्णत मुक्त होने पर भी इने गिने दस पाच आदमियों की वास्तविक या काल्पनिक राज द्रोहात्मक कार्यवाहियो के कारण किसी भी स्थान में एक दम आईन की घोषणा की जा सकती है। जब घोषणा हो गई तब सारी जनता, बिना किसी भेद भाव के, पुलिस शासन के हवाले कर दी जायगी। अन्य आपत्तिया दूर रहीं, यही आशंका उस चिन्ता और घबडाहट का मूल कारण है जो इस मसौदे को देखकर लोगों के हृदय में उत्पन्न हुई है। माननीय मेम्बर कहते है कि "जब किसी स्थान की घोषणा करना आवश्यक समझा जाय तब यह बेजा नहीं है कि राजभक्त प्रजा सावजनिक हित के लिये थोडी सी असुविधा सहन करने को तय्यार हो।" मुझे आश्चर्य है कि थोडी सी असुविधा से माननीय मेम्बर का क्या अभिप्राय है। क्या यह जरा सी बात है कि आपके घर पर दिल दुखाने वाले, पुलिस के हमले, हुआ करें? क्या यह जरा सी बात है कि आप बीस से ज्यादा मनुष्यों का सामाजिक सम्मिलन करें, तो पुलिस आके सबको तित्तर बित्तर कर दे, और घराती बराती सबको बिना नोटिस के सार्वजनिक सभा करने का अपराध लगा कर, मजिस्ट्रेट के सामने हाजिर कर दे? मान लीजिये कि आपने अदालत में अभियोग को झूठा सिद्ध कर दिया और मजिस्ट्रेट ने आपको छोड दिया। पर जरा यह तो देखिये कि कितनी अनावश्यक चिन्ता और विपत्ति का सामना आपको करना पडा। हमारे देश के समान उच्छृङ्खल

और हृदय हीन पुलिस के होते हुए यह भय कोरे काल्पनिक नहीं है। अभी हम रावलपिंडी में देख चुके हैं कि पुलिस क्या २ कर सकती है। और उदाहरण भी इस बात के दिये जा सकते हैं कि पुलिस ने आदि से अन्त तक मुक़दमे गढ़ डाले। माना कि मसौदे की मशा सामाजिक सम्मिलनों में हस्ताक्षेप करने की नहीं है। माना कि चौथे विभाग के अनुसार मजिस्ट्रेट को केवल उन सार्वजनिक सभाओं की नोटिस देने की आवश्यकता है जो कुछ विशेष विषयों पर विचार करने के लिये की जायँ। लेकिन यदि कोइ पुलिस अफसर किसी मनुष्य को आपत्ति में फसाना चाहता हो तो वह सदा यह बहाना कर सकता है कि बीस से अधिक मनुष्यों की अमुक सभा सार्वजनिक सभा है और वह कुछ गवाह भी यह गवाही देने के लिये तय्यार कर सकता है कि सभा का उद्देश्य राजनैतिक था। यह बहाना करके लोग अपराध कर रहे हैं अर्थात् बिना नोटिस दिये २० से अधिक मनुष्यों की सभा कर रहे हैं कोई पुलिस अफसर अन्दर घुसने का दावा कर सकता है। यदि घर का स्वामी दृढ मनुष्य है और अपने स्वत्वों को अच्छी तरह समझता है तब शायद वह अफसर का विरोध करेगा और उसे घर के अन्दर न आने देगा। पर तब शायद वह मजिस्ट्रेट के सामने उपस्थित किया जायगा और उस पर मुक़दमा चलाया जायगा। पर यदि एक मनुष्य इस तरह पुलिस का सामना करेगा तो दूसरे नौ मनुष्य बिना कुछ कहे सुने दब जायगे। दूसरे जब कोई मामला मजिस्ट्रेट के सामने जायगा तब न जाने वह "सार्वजनिक सभा" इन शब्दों का क्या अर्थ लगायगा। स्वय माननीय मेम्बर इस बात के उदाहरण हैं। गत शुक्रवार को

उन्होंने कहा था कि चौथे नियम में तीसरा उपनियम मिलाने का अभिप्राय यह है कि म्युनिसिपैलिटी इत्यादि के अधिवेशनों की भी नोटिस मजिस्ट्रेट के पास भेजने की कोई आवश्यकता न हो। उन्होंने कहा था कि "यदि उस नियम का कठोर प्रयोग किया जाय तो उद्घोषित स्थानों में म्युनिसिपैलिटी की बैठक करने के लिये भी नोटिस देने की और इजाजत लेने की आवश्यकता पड़ेगी"। इस प्रकार माननीय मेम्बर के मतानुसार म्युनिसिपैलिटी की बैठक सार्वजनिक सभा है। इसके विपरीत मेरे माननीय मित्र डाक्टर घोष कहते हैं कि मसौदे की परिभाषा के अनुसार म्युनिसिपैलिटी की बैठक सार्वजनिक सभा नहीं कही जा सकती। माननीय मेम्बर अपने वर्त्तमान पद पर नियुक्त होने के पहिले बर्मा प्रान्त में मुख्य न्यायाधीश थे। डाक्टर घोष देश के अत्यन्त विद्वान और प्रसिद्ध कानूनवेत्ताओं में से एक हैं। कानून बनने के पहिले ही जब ऐसे दो प्रामाणिक व्यक्तियों में सार्वजनिक सभा के अर्थ लगाने में इतना मतभेद है तब सीधे सादे अनुभव शून्य मजिस्ट्रेट न जाने क्या अर्थ लगावेंगे।

इस मसौदे में और भी बहुत सी आपत्तिजनक बातें हैं पर मैं उन सब का वर्णन कर के कौन्सिल को थकाना नहीं चाहता। यह मसौदा बड़ा भयंकर है। इसको सुधारने का एक मात्र संतोष जनक उपाय यह है कि इसको एक दम रद्द कर दो। पर स्वयं मसौदे की अपेक्षा अधिक आक्षेपणीय मसौदे की नीति है। मैं इस नीति को अत्यन्त बुद्धिहीन समझता हूँ। यह नीति सारे संसार में व्यर्थ सिद्ध हुई है और भारत में भी

व्यर्थ सिद्ध होगी। इससे जनता के मन मे कठोरता की ऐसी स्मृतिया शेष रह जायँगी कि वह समय के धोए भी न धुलेंगी। इससे शासन के कार्य में कोई सुगमता न होगी। बहुत करके तो यह दवा रोग को और भी बढा देगी।

बंगाल और बंगाली।



(नवम्बर, सन् १९०७, को शिमले में बडी व्यवस्थापक कौंसिल में राजद्रोही सभा सम्बन्धी बिल पर अन्तिम बहस के अवसर पर सरकारी मेम्बरों ने कई आक्षेपणीय बातें कही थीं। उनका जो उत्तर मिस्टर गोखले ने उसी समय पर दिया था, वह निर्भीकता और गम्भीरता के लिये बहुत प्रसिद्ध है। उसी का निम्नलिखित अनुवाद है —

श्रीमन्, मैं इस समय मसौदे के सम्बन्ध में थोडे ही शब्द कहना चाहता हू और वह भी आपके सामने अपील के तौर पर। माननीय सर हर्बर्ट ऐडमसन ने इस कानून के उत्तरदायित्व के सम्बन्ध में कुछ बातें कही हैं जिनका प्रतिवाद करना परमावश्यक है और जिनके जवाब में कुछ कहना मैं भी आवश्यक समझता हू। उनका कहना है कि इस कानून के बनाने की जिम्मेदारी उन लोगों पर है जो भारतीय सुधारक दल के नरम विभाग के सदस्य कहलाते हैं। मैने स्वय नरम गरम इन शब्दों को कभी पसन्द नही किया। गरम कहलाने वाले कुछ लोगों में भी कभी २ बडी नरमी दिखलाई देती है और नरम कहलाने वाले लोगों में भी बहुधा काफी गर्मी देखी जाती है। तो भी मुझे आशका है कि यह शब्द प्रचलित रहेंगे, और इस समय म उनका प्रयोग उसी अर्थ में करूगा जिसमें

माननीय मेम्बर ने किया है। मुझे तो यह घोर अन्याय मालूम होता है कि देश में यदि थोड़ा बहुत राजद्रोह है तो उसका उत्तरदायित्व नम्र दल के माथे मढ़ा जाय।

आज कुछ देर हुई, मैंने अपने भाषण में कुछ विस्तार से इस प्रश्न पर विचार किया था कि वर्तमान स्थिति कैसे उत्पन्न हुई है। मैं फिर उसी विषय पर कुछ कहना नहीं चाहता पर एक दो बातों को कहना और उनपर जोर देना मैं अवश्य चाहता हूं। जब इस देश में सरकारी अफसर राजद्रोह का जिक्र करते हैं तब उन सब का अभिप्राय एक ही वस्तु से नहीं होता। भिन्न २ अफसर 'राजद्रोह' का भिन्न २ अर्थ लगाते हैं। कुछ अफसर तो यह समझते हैं कि यदि कोई भारतवासी हम से दबी जबान से और सांस रोक कर बात चीत नहीं करता तो वह राजद्रोही है। कुछ यह समझते हैं कि यदि कोई हमारे कार्यों और शासन की प्रतिकूल समालोचना करता है तो वह राजद्रोही है। कुछ ऐसे हैं जो स्थिति को दीर्घ दृष्टि से देखते हैं और समझते हैं कि राजद्रोह शब्द केवल उन प्रयत्नों के लिये प्रयोग किया जा सकता है जो देश के शासन को उलट देने के लिये किये जाते हैं। इस समय मैं पहिली और दूसरी श्रेणी वालों के विरुद्ध कुछ नहीं कहना चाहता। तृतीय श्रेणी वाले लोग राजद्रोह का जो अर्थ करते हैं वही मैं भी करूंगा। मैं जोर दे कर कहूंगा कि यदि ऐसा राजद्रोह उत्पन्न हो गया है तो वह हाल में ही उत्पन्न हुआ है, गत तीन चार वर्षों के भीतर ही उत्पन्न हुआ है और उसकी उत्पत्ति का उत्तरदायित्व यदि बिलकुल नहीं तो मुख्यतः सरकार के या यों कहना चाहिये कि अधिकारीवर्ग के ऊपर है। १८८५ ई० से

अर्थात् लार्ड रिपन के उदार शासन के अन्त से कांग्रेस शासन में बहुत आवश्यक सुधार कराने का प्रयत्न कर रही है। शासन की वर्तमान पद्धति अब कोई पचास वर्ष की पुरानी है। अब बहुत दिन से वह पद्धति हमारे लिये अनुपयुक्त हो गई है। सरकारी अफसर भी यह मानने लगे हैं। पर यद्यपि सामान्य प्रकार से स्वीकार करते हैं कि परिवर्तनों की आवश्यकता है तथापि वह प्रत्येक प्रस्तावित परिवर्तन पर कुछ न कुछ आक्षेप अवश्य करते हैं। इसका फल यह है कि इतने वर्ष बहुत प्रयत्न करने पर भी हम जरा भी आगे नहीं बढ़ सके हैं और बहुत धैर्य न रखने वाले भारतीयों का धैर्य टूट गया है। कांग्रेस के पहिले दिनों में इस आशा के लिये स्थान था कि शासन में अभिलषित परिवर्तन कर दिये जायेंगे। लार्ड रिपन के बाद लार्ड डफरिन आये जो यद्यपि कुछ सशयालु थे, तथापि कांग्रेस के विरोधी न थे। उन्हों ने सरकारी नौकरियों की जांच करने के लिये एक कमीशन नियुक्त किया। उन के बाद लार्ड लैन्सडाउन आये जो, यद्यपि बहुत डरते २ पैर बढ़ाते थे तथापि हमारे पक्ष से मैत्रीभाव रखते थे और उन्हों ने व्यवस्थापक कौंसिलों को आदि रूप में स्थापित किया। उन के बाद लार्ड एलगिन आये और उनके समय से सुधारक दल का भाग्य लगातार मन्द होता गया। उनके समय में प्लेग आया, अकाल पड़ा, सीमा प्रान्त में लड़ाइयां हुईं। शासन के अन्तिम समय में समाचार पत्रों को दबाने की नीति का भी अवलम्बन हुआ। तत्पश्चात् लार्ड कर्ज़न आये। वह बड़ २ के वक्तृता देना खूब ही जानते थे और उनके शासन काल के पहिले दो वर्षों में बड़ी २ आशायें उत्पन्न हुईं। पर उनकी अवनतिशील कार्यवाहियों ने इन सब आशाओं को धूल में मिला दिया। उनके शासन के अन्तिम

तीन वर्ष मे बराबर हमारे चिढाने और हमारा क्रोध भडकाने वाली बातें होती रही। इससे कांग्रेस का एक दल बे तरह तग आ गया और कहने लगा कि इगलैंड मे हमारा जो पुराना विश्वास था वह अब मिट गया। तब विरक्ति का प्याला लबा लब भरने के लिये बगविच्छेद की घटना घटी। इस आपत्ति को दूर रखने के लिये बगाली लोग जो कुछ कर सकते थे सो उन्होंने किया। सारे प्रान्त में सैकड़ों सभायें हुई। सरकार पर प्रार्थनाओं और प्रतिवादों का मेह सा बरसने लगा। लोगों ने जो कुछ हो सकता था वह सब किया कि लार्ड कर्जन साहब अपना विचार छोड दे। पर वह सारे आन्दोलन को अवज्ञा की दृष्टि से देखते रहे। और बगविच्छेद करने से बाज न आये। नरम कहलाने वालों ने बार २ सरकार को चिता दिया था कि आप भूल कर रहे हैं। उन्होंने चिता दिया था कि यदि आप लोगों के प्रवल विरोध की कुछ भी परवा न करके जबर्दस्ती बगाल के दो टुकडे कर देंगे तो सब लोगों की राजभक्ति को भारी धक्का पहुचेगा और कुछ लोगों की राजभक्ति नष्ट हो जायगी। उनकी कही हुई बातें ठीक निकलीं। माननीय मेम्बर साहब जब शिकायत करते है कि बंगाल में खुलमखुला राजद्रोह का उपदेश दिया जा रहा है। पर जब समय था तब आपने "नरमों" की बात क्यों न मानी, जब शरारत हो चुकी तब मेम्बर साहब घूमकर हम पर ही उल्टा दोषारोपण करते हैं।

रही यह बात कि नरम लोग गर्मों की पूरी २ निन्दा क्यों नहीं करते सो, महाशय, यह कोई आसान बात नहीं है। एक तो गर्मों के प्रति प्रसन्नता प्रकाश करने का वैसा अभाव नहीं है जैसा माननीय मेम्बर समझते हैं पर दूसरे इस प्रकार

निन्दा करना बहुत कुछ अपने २ मिजाज की बात है। माननीय मेम्बर के प्रश्न का उत्तर मैं एक दूसरा प्रश्न कर के ही देता हूँ कुछ एंग्लो इन्डियन समाचारपत्र सदा भारतवासियों को गालियां सुनाया करते हैं। क्या माननीय मेम्बर ने उनके किसी लेख की कभी निन्दा की है? मुझे विश्वास है कि वह तथा और बहुत से लोग "सिविल ओर मिलिटरी गजट"-याइंग लिशमैन में बहुधा प्रकाशित होने वाले विचारों को पसन्द नहीं करते पर क्या कभी कहीं किन्हीं दस पाच अंग्रेजों ने मिल कर इन पत्रों की निन्दा की है। फिर हमारे लिये एक और कारण भी है। हम प्रचलित गडबड को और भी बढ़ाना नहीं चाहते। देश में काफी फूट फैली हुई है और जहा तक सम्भव हो हम फूट का एक नया कारण उत्पन्न करना नहीं चाहते। पर मैं यह कहना चाहता हू कि "नरम" लोग चाहे चुप रहें और चाहे "गरमी" की भरपूर निन्दा करें इससे गर्मी का प्रभाव कुछ भी कम न होगा। असतोष के पर काटने का एक मात्र उपाय यह है कि सरकार दृढता और साहस के साथ लोगों को प्रसन्न करने की नीति का अवलम्बन करे। श्रीमन्, इस प्रस्ताव पर सम्मति ली जाने के पहिले मैं कुछ शब्द कहना चाहता हू। अब सरकार दमनकारी अस्त्रों से सुसज्जित हो चुकी है। मैं नम्रता के साथ आप से प्रार्थना करता हू कि इन शक्तियों को सुरक्षित रखिये जहा तक हो सके अभी इनका प्रयोग न कीजिये, और बगाल को सतुष्ट कीजिये। सारी आपत्ति की जड़ यही है। जब तक बग विच्छेद के मामले में बगाल सतुष्ट न होगा तब तक बगाल में ही क्या सारे भारत में कभी सच्ची शान्ति स्थापित नहीं हो सकती। इस मामले में बगाल में जो कटुता उत्पन्न हो

गई है उसने सारे देश के सार्वजनिक जीवन की सारी धारा को कलुषित कर दिया है। मैं स्वयं बंगाली नहीं हूं और इस लिये बिना संकोच के और बिना इस भय के कि कोई मेरे अर्थ का अनर्थ करेगा, मैं बोल सकता हूं। सारे भारत में बंगालियों से बढ़ कर भावुक जाति और कोई नहीं है। वह रुपये पैसे की हानि को जल्दी भूल सकते हैं पर भावों का चोट पहुंचाने वाली बात को नहीं भूल सकते। मुझे इस समय इससे कुछ प्रयोजन नहीं है कि बंगविच्छेद से क्या लाभ और क्या हानि होगी पर इसमें कोई सन्देह नहीं कि यह विषय हृदय के गहरे से गहरे भावों से सम्बन्ध रखता है। बंगाली समझते हैं कि हम पैर तले कुचल दिये गये हैं और जब तक वह यह समझते हैं तब तक कोई शान्ति नहीं हो सकती। लोगों के मन सरकार से बहुत काफी फिर चुके हैं और स्थिति प्रतिदिन अधिकाधिक बुरी होती जाती है।

हाल के दंगों में हानि उठाने वाले लोगों ने मि० वेस्टन के सामने उपस्थित होने से इन्कार किया। इससे मालूम होता है कि बंगाल में कैसा परिवर्तन हो रहा है। सरकार चाहती है कि दमननीति से परिवर्तन को दबा दें। मैं बंगालियों को जानता हूं और भविष्यद्वाणी करने का साहस करता हूं कि आप इन्हें कभी नहीं दबा सकते। कुछ बातों में तो बंगालियों से बढ़ कर कोई जाति भारत में नहीं है। उनके दोष बताना सहज है। वह तो स्पष्ट ही हैं पर उनमें बहुत से गुण हैं जो लोग कभी २ भूल जाते हैं। जीवन के जिन विभागों में भारतवासी प्रवेश कर सकते हैं प्रायः इन सब में ही बंगालियों ने सब से ज्यादा नाम पैदा किया है। हाल के कुछ सर्वश्रेष्ठ धार्मिक और सामाजिक सुधारक बंगालियों में ही

उत्पन्न हुए हैं। हाल के कुछ सर्वश्रेष्ठ वक्ता, सम्पादक और राजनीतिज्ञ बंगाल में ही हैं। पर यहां मैं इन लोगों का ज़िक्र न करूंगा क्योंकि इस स्थान पर लोग ज़रा टेढ़ी नज़रों से देखे जाते हैं। साहित्य, क़ानून या विज्ञान को ले लीजिये, सारे भारत में आपको डाक्टर जगदीशचन्द्र बोस या प्रफुल्लचन्द्र राय सा विज्ञानवेत्ता कहां मिलेगा? डाक्टर घोष सा क़ानून वेत्ता कहां मिलेगा रवीन्द्रनाथ ठाकुर सा कवि कहां मिलेगा? यह लोग आकस्मिक कारणों से नहीं उत्पन्न हुए हैं। यह जाति के सर्वश्रेष्ठ रत्न हैं—मैं फिर कहता हूं कि जिस जाति में ऐसे रत्न उत्पन्न हो सकते हैं वह दबाई नहीं जा सकती। उनके जातीय चरित्र पर बहुधा यह लाञ्छन लगाया जाता है कि उनमें शारीरिक साहस नहीं है पर वह अब इस को दूर कर रहे हैं। इस कलङ्क की बात बंगालियों के मन में इतनी चुभ गई है कि यदि हम कुछ एंग्लो इंडियन पत्रों में प्रकाशित होनेवाली कहानियों को सच मानें तो, शारीरिक संग्राम से दूर भागने की कौन कहे उनका खून तो संग्रामों के लिये मानो उबला ही पड़ता है। यदि सरकार और बंगीय जनता का वर्तमान मनमुटाव बना रहेगा तो दस वर्ष के बाद हज़ार में एक बंगाली भी ऐसा न मिलेगा जो अङ्गरेज़ों से तनिक भी अनुराग रखता हो। सरकार के सामने एक भयंकर समस्या उपस्थित हो जायगी। बंगालियों की संख्या तीन करोड़ तीस लाख है। ऐसी जनता में फूट कूट कर असन्तोष भरने की मूर्खता और भय स्पष्ट है।

श्रीमन्, मैं आप से अपील करता हूं कि आप समय रहते २ इस घाव को ठीक कर दीजिये। मुसलमान अब आशा करने लगे हैं कि बंगविच्छेद से हमें कुछ शिक्षा सम्बन्धी तथा दूसरे लाभ होंगे। इससे समस्या और भी जटिल हो गई है।

मैं यह मानता हूं। भारत का कोई सच्चा हितैषी यह नहीं चाहता कि वह इनमें से किसी भी लाभ से वंचित किये जाय क्योंकि मुसल्मानों की जितनी अधिक उन्नति हो देश के लिये उतना ही अच्छा है। पर ऐसी व्यवस्था करना राजकौशल की सामर्थ्य के सर्वथा बाहर नहीं है कि मुसलमान सब अपेक्षित लाभ उठाते रहें और बंगालियों का महान कष्ट भी दूर कर दिया जाय। लोगों को प्रसन्न करने के मार्ग में प्रतिपत्ति के सरकारी रोबदोब के जो विचार अब तक अड़चन डालते रहे हैं वह शायद अब भी अड़चन डालेंगे। पर मैं नहीं समझ सकता कि जिस सरकार के पास ऐसे विशाल साम्राज्य का बल है उसकी प्रतिपत्ति हमारी बतलाई नीति का अवलम्बन करने से कैसे कम हो जायगी। श्रीमन्, आप चाहें तो इस मामले को ठीक कर सकते हैं। यदि आप कटुता और विद्वेष के इस महान कारण को देश से दूर कर दें तो बंगाल ही नहीं किन्तु सारा भारत आपकी जय मनायेगा।

सुधार के प्रस्ताव।

(दिसम्बर १६०८ में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के मद्रास वाले अधिवेशन में माननीय मि० गोखले ने यह भाषण किया —)

श्रीयुत सभापति जी, महिलाओ और सज्जनो, मैं यह प्रस्ताव आप की स्वीकृति के लिये पेश करता हूं।

(क) "कांग्रेस एलन आक्टेवियन ह्यूम के पास यह सन्देशा भेजे कि हम हृदय से आप का अभिनन्दन करते हैं और आप को बधाई देते हैं। लार्ड मार्ले के उद्घोषित सुधारों से कांग्रेस का २३ वर्ष का प्रयत्न थोड़ा बहुत सफल हो गया। आप कांग्रेस के जन्मदाता हैं। हमें यह सोच कर बड़ा हर्ष होता है कि आप को इनसे परम हार्दिक सन्तोष होगा।

(ख) कांग्रेस सर विलियम वेडर्बर्न को उनकी हाल की भयकर बीमारी से मुक्त हो जाने की बधाई देती है। कांग्रेस इस अवसर पर उनके उस अथक उत्साह, भक्ति, प्रेम और एकाग्रता को भी स्वीकार और प्रकाश करती है जिससे उन्होंने बीस वर्ष कांग्रेस पक्ष के लिये काम किया है और बहुत करके जिसके कारण ही इंगलैंड में कांग्रेस और सम्मतियों और निवेदनों पर इतना अनुग्रह पूर्ण विचार हुआ।

(ग) ब्रिटिश कमिटी ने भारतीय राजनैतिक उन्नति के

लिये निःस्वार्थ सेवाभाव से जो लगातार परिश्रम किया है उसके लिये कांग्रेस उसको कृतज्ञता पूर्वक धन्यवाद देती है।

प्रतिवर्ष साधारण कार्य्य समाप्त होने के बाद कांग्रेस ब्रिटिश के द्वारा हमारे लिये इंग्लैंड में किये हुए कार्य का कृतज्ञता पूर्वक अभिवादन करती है। पर इस वर्ष धन्यवाद के साधारण प्रस्ताव के अलावा हम दो और प्रस्ताव पास करने वाले हैं जिनमें से एक मि० ह्यूम को और दूसरा सर विलियम वेडर्बर्न को भेजा जायगा। कमिटी के विषय में मुझे बहुत कहने की आवश्यकता नहीं है। कमिटी ने गत वर्षों में जैसा उपयोगी कार्य किया था वैसा इस वर्ष भी किया है। यह सच है कि इस वर्ष उसे कुछ असुविधाओं के बीच काम करना पड़ा है। एक तो उसे हमारे समय के सर्वोत्तम भारतीय सज्जन, पूर्णत निःस्वार्थ, पूर्णत कलङ्क रहित, हमारे वयोवृद्ध परन्तु यौवन काल के ज्वलन्त उत्साह से सम्पन्न नेता, दादा भाई नवरोजी (हर्षध्वनि।) की सहायता और खबरदारी से वंचित होना पड़ा। दूसरे सर विलियम वेडर्बर्न जो सदा से ब्रिटिश कमिटी के प्राण रहे हैं इस वर्ष भयंकर रोग के कारण कमिटी के कार्य की ओर स्वयं ऐसा ध्यान न दे सके जो गत वर्षों में दिया करते थे। उनके स्थान पर सर हेनरी काटन ने सभापति का आसन ग्रहण किया तथा अन्य सदस्यों के साथ मिल कर सदा की तरह काम किया। अच्छा तो आज हमारा पहिला कर्तव्य ब्रिटिश कमिटी को धन्यवाद देना है कि उन्होंने इतनी प्रबलता और सावधानी के साथ इङ्गलैण्ड में हमारे पक्ष का समर्थन किया। इसके बाद हम उन दो अंग्रेज सज्जनों की ओर ध्यान देते हैं जो इङ्गलैण्ड में हमारे सर्वोत्तम मित्र हैं। हमारे प्रस्ताव का पहिला भाग मि०

ह्यूम के सम्बन्ध में है। हम सब जानते हैं कि मि० ह्यूम कांग्रेस के जन्मदाता हैं (हर्षध्वनि।) हम सब जानते हैं कि प्रारंभ में कैसे प्रेम के साथ, कैसी सावधानी के साथ उन्होंने इसकी खबरदारी की थी। हम सब जानते हैं कि जब स्वास्थ्य बिगड़ जाने से वह इस देश में रह कर कांग्रेस की उन्नति में भाग न ले सकते थे तब इङ्गलैण्ड में उन्होंने कांग्रेस-आन्दोलन के लिये कितना काम किया। इस आन्दोलन से आज तक उनका अनुराग वैसा ही बना हुआ है जैसा पहिले था। जब हमें उनकी बुद्धिमत्तापूर्ण सलाह और नेतृत्व की आवश्यकता हुई तब उन्होंने अवश्य हमें सलाह और नेतृत्व प्रदान किया। गत वर्षों के अवनतिशील काल में कांग्रेस आन्दोलन की ऊपरी असफलता का जितना खेद मि० ह्यूम को हुआ उतना और किसी को नहीं हुआ। जब गतवर्ष सूरत में कांग्रेस पर आपत्ति आई तब जितनी वेदना और चिन्ता मि० ह्यूम को हुई उतनी और किसी को नहीं हुई। मुझे व्यक्तिगत ज्ञान और अनुभव है कि जब गत मासों में लन्दन में इन सुधारों के सम्बन्ध में चिन्ताजनक बातचीत हो रही थी, जब हमारे सामने कभी तो आशा का उज्ज्वल प्रकाश होता था और कभी निराशा की घटा छा जाती थी तब सारी कार्यवाहियों के सम्बन्ध में मि० ह्यूम को जितनी चिन्ता थी, जितना अनुराग था उतना और किसी को न था। अब अन्धकार दूर होता मालूम पड़ता है-और नवीन प्रातःकाल की उषा प्रगट हो रही है। इस समय कांग्रेस के जन्मदाता को जितनी प्रसन्नता होनी चाहिये उतनी और किसे होगी। मैं कहूँगा कि मि० ह्यूम को यह सदेशा भेजने में हम केवल अपना वह कर्तव्य पालन कर रहे हैं जो पिता की ओर पुत्र का है। मि० ह्यूम की अवस्था

८० वर्ष से अधिक है। हमें यह सोच कर परम हर्ष है कि वृद्धावस्था में उनको यह आश्वासन मिल सका। हम सब की हार्दिक आशा और अभिलाषा है कि वह बहुत दिन जीते रहें और इस नये मार्ग में जो उन्नति हम करना चाहते हैं उसको देखते रहें।

प्रस्ताव का तीसरा भाग सर विलियम वेडर्बर्न के सम्बन्ध में है। जैसा कि आप सब लोग जानते हैं, अभी ७८ वर्ष की अवस्था में सर विलियम भयकर रोग से पीड़ित हुये थे। ७८ वर्ष की अवस्था में भयकर रोग बड़ा ही भयकर होता है। परम दयालु ईश्वर ने हमारे लिये सर विलियम को अच्छा कर दिया। यह ठीक ही है कि इस अवसर पर हम आनन्द मनायें। सज्जनो, जिन्होंने इग्लैंड में हमारे लिये सर विलियम का कार्य देखा है वही अच्छी तरह समझ सकते हैं कि इस अग्रेज महात्मा के हम कितने आभारी है। गत तीन वर्षों में इस कार्य के सम्बन्ध में तीन बार मैं इगलड गया था। मैं बराबर उनकी अत्यन्त घनिष्ट सगति में और उनके प्रेम पूर्ण उपदेशानुसार कार्य करता था। मैं इस विषय में कुछ प्रामाणिक ढग से बोलने का दावा कर सकता हूँ। मैं कहता हू कि सर विलियम ने हमारे लिये जैसा काम किया है वैसा किसी दूसरे अग्रेज ने कभी नहीं किया। माना कि कुछ महान् अग्रेजों ने, इंगलैंड के सार्वजनिक जीवन में प्रसिद्ध स्थान रखने वाले अग्रेजोंने, हमारे पक्ष को सहारा दिया है, ब्राइट, फासेट और बेडला के पूजनीय नामों को हम सदा प्रेम और श्रद्धा से स्मरण रक्खेंगे। पर उनका सारा ध्यान भारत की ओर नहीं था। उनको और विषयों से अनुराग था, वह और विषयों की ओर ध्यान देते थे, वह और काम करते थे। सर विलियम में यह

बात नहीं है। जब से वह लौटकर इंगलैंड गये हैं तब से एक मात्र भारत से ही उनका अनुराग रहा है, एक मात्र भारत के लिये ही उन्होंने काम किया है, एकमात्र भारत की सेवा का ही जोश उनके हृदय में रहा है। गत बीस वर्षों में बराबर उन्होंने अपना सारा समय, अपनी सारी शक्ति, अपना बहुत सा धनभी निःसङ्कोच हमारे लिये लगा दिया है। (हर्ष ध्वनि।) हमारे लिये उन्होंने बहुत कुछ सहन किया है। कोई बुरा कहे चाहे भला कहे, विपत्ति का समय हो चाहे सम्पत्ति का, इस अंग्रेज महात्मा ने सदा हमारा साथ दिया है। हमारे लिये ही वह पार्लामेन्ट के मेम्बर हुये। जब उन्होंने देखा कि वह अपने निर्वाचकों की सेवा के साथ २ हमारी सेवा नहीं कर सकते तब वह पार्लामेन्ट से अलग हो गये। हमारे लिये ही वह भारत में अपने देश बन्धु अंग्रेजों के बुरे बने। उन्होंने हमारे आनन्द में आनन्द मनाया है, हमारे शोक में शोक मनाया है। जब हमारे लिये चिन्ता का समय आता था तब उनका हृदय चिन्ता से भर जाता था। पर जब हम निराश हो जाते थे तब वह निराश नहीं होते थे। अब नवीन प्रातःकाल होने पर नये २ मित्र आकर हमारा उत्साह बढ़ायेंगे पर रात्रि के अन्धकार में हमारी रक्षा वाली सर विलियम ने ही की थी। इस लिये मैं प्रस्ताव करता हू कि इस अवसर पर कांग्रेस सर विलियम को अच्छी तरह धन्यवाद दे क्योंकि मुझे विश्वास है और जो लोग उनके कार्य से परिचित हैं उनको भी निस्सन्देह यह विश्वास होगा कि इंगलैंड में भारतीय पक्ष के आगे बढ़ाने में और आज उसका सानुग्रह विचार कराने में उनका बड़ा हाथ है।

प्रस्ताव के व्यक्तिगत अंश के बारे में इतना कहने के बाद, यदि आपकी आज्ञा हो तो मैं प्रस्ताव के प्रथम भाग के एक वाक्य

के सम्बन्ध में कुछ शब्द कहना चाहता हूं। मि० ह्यूम को जो सदेशा हम भेज रहे हैं उसमें हमने यह वाक्य कहा है कि "लार्ड मार्ले के उद्घोषित सुधारों से काँग्रेस का २३ वर्ष का प्रयत्न थोडा बहुत सफल हो गया"। मैं समझता हूं कि इस स्थान पर मेरे लिये इस बात की परीक्षा करना अप्रासंगिक और अनुचित न होगा। इस वर्णन से पता चलेगा कि काँग्रेस के २३ साल के उद्योग कैसे कुछ थोडे बहुत सफल कहे जा सकते हैं। इसके लिये आवश्यक है कि पहिले तो आप काग्रेस के २३ साल के उद्योगों का विचार करें और फिर उन सुधारों पर जो प्रकाशित किये गये हैं। इन सुधारों के साथ आप को उन बातों को भी सम्मिलित करना पडेगा कि जो इनके पहिले निश्चित हो चुकी हैं, या जिनके अभी हाल ही में निश्चित होने की आशा है।

काग्रेस के सम्बन्ध में सक्षेप से आप यह कह सकते हैं कि गत तेईस वर्षों में इसने तीन उद्देश्यों की सिद्धि के लिये प्रयत्न किया है। पहिले उद्देश्य को हम सामाजिक कह सकते हैं। वह यह है कि काग्रेस ने देश के भिन्न २ वर्गों में अधिकाधिक ऐक्यता का भाव और सारे देश में अधिकाधिक राष्ट्रीयता का भाव फैलाने की चेष्टा की है। गतवर्ष की शोकजनक फूट के बाद भी काग्रेस के मच पर खडा होकर, वर्गों की भिन्नता का विचार करके मैं कह सकता हूं कि देश में तेईस वर्ष पूर्व की अपेक्षा आज ऐक्यता का भाव अधिक वास्तविक, अधिक गम्भीर और अधिक दृढ है। (हर्षध्वनि।) राष्ट्रीयता के भाव का भी वही हाल है। देश के एक कोने से दूसरे कोने तक एक नई उत्तेजना, नई भावना, नई लहर फैल रही है। प्रत्येक मनुष्य जिसे भारत की उन्नति से अनुराग है यह देख

कर प्रफुल्लित होगा कि देश में यह भाव सच्चा है, गम्भीर है, वास्तविक रूप में है। पर आज हमें कांग्रेस के इस कार्य पर विचार नहीं करना है। इसके अलावा दो अन्य उद्देश्य हमारे सामने थे जिनका सम्बन्ध इस बात से था कि हम सरकार पर कितना प्रभाव डालना चाहते थे। हमारा एक उद्देश्य सरकार का ध्यान सुधार के या कठिनता के निवारण के उपायों की ओर दिलाना था। इनका उल्लेख करने की यहां कोई आवश्यकता नहीं है। पर हमारा दूसरा उद्देश्य जो हमारे बतलाये हुए सब उपायों का आधार था और जिस पर हम बराबर जोर देते आते हैं वह यह है कि अधिकारी तन्त्र शासन के लक्षणों में, जितना हो सके उतना, परिवर्तन किया जाय। कुछ अंशों में तो कांग्रेस का अत्यंत महत्वपूर्ण कार्य यही है कि उसने इन लक्षणों में परिवर्तन कराने का बडा उद्योग किया। जहां तक इस बात का सम्बन्ध है, वहां तक यह कहना न्याय संगत है कि प्रस्तावित सुधारों से बहुत कुछ वांछित परिवर्तन हो जायगा। यह प्रस्तावित सुधार क्या हैं ?

सब सुधारों पर एक साथ में एक दृष्टि डालना चाहता हूं और तत्पश्चात् देखना चाहता हूं कि हमारा दावा कहां तक न्यायसङ्गत है। इस प्रयोजन के लिये मैं चाहता हूं कि आप भारत सचिव की कौंसिल में दो भारतवासियों की नियुक्ति पर और डिसेन्ट्रलाइजेशन कमीशन (स्थानिक शासन के अधिकार सम्बन्धी कमीशन) की रिपोर्ट के फलस्वरूप होने वाले सुधारों का विचार भी प्रस्तावित सुधारों के साथ करें। तीनों बातें एक ही व्यवस्था का अङ्ग हैं, तीनों एक दूसरे पर निर्भर हैं। मैं यह भी चाहता हूं कि आप हमारी गतवर्ष की राजनैतिक स्थिति की तुलना सुधार के बाद होनेवाली स्थिति

मे करें। आप चाहें तो शासनविभाग की तुलना एक भवन से कर सकते हैं। सब के नीचे ग्रामीण और नागरिक आत्म शासन है। बीच में साधारण शासन अर्थप्रबन्ध और व्यवस्थापना है। चोटी पर कार्यकारिणी कौंसिलें और भारतसचिव की कौंसिल है जिनको सर्वोन्च अधिकार प्राप्त हैं, जिनमें शासन की नीति स्थिर की जाती है और महत्वपूर्ण समस्याओं का निर्णय किया जाता है। इस प्रकार चोटी, मध्य और तले की कल्पना करके आप विचार करें कि गतवर्ष हम कहा थे और इन सुधारों के पूरे हो जाने के बाद कहा होंगे।

स्थानिक आत्मशासन के विषय में हम कह सकते हैं कि उसका बहुत थोडा अंश हमारे पास है। नाम को आत्मशासन है। मैं चार वर्ष तक एक म्युनिसिपैलिटी का प्रधान था, हम जानते हैं कि हमारे पास कितना आत्मशासन है, मैं जानता हू कि बहुत नही है। शासन के मध्यभाग की ओर देखिये। आज कल हम वर्ष में एक बार सरकारी बजट पर बहस करते समय अर्थ प्रबन्ध पर—आय-व्यय पर—अपने विचार प्रकट कर सकते हैं। और जब कोई नया कानून बनाया जाय तब उस पर विचार प्रकट कर सकते हैं। साधारण शासन के सम्बन्ध में हमारे पास अधिकारीवर्ग के सामने अपने विचार उपस्थित करने का कोई सुव्यवस्थित साधन नहीं है। रही कार्यकारिणी कौंसिलों और भारतसचिव की कौंसिल की बात, सो आज वहा तक किसी तरह भी हमारी पहुच नही है। नई व्यवस्था के अनुसार हमारा क्या पद होगा? पहिले तो अपने स्थानिक जिला बोर्ड और म्युनिसिपैलिटी के मामलों का पूरा प्रबन्ध और अधिकार हमारे हाथ में आ जावेगा। लार्ड रिपन ने भारतीय स्थानिक सरकार के

जिस भवन की नींव डाली थी वह अच्छी तरह पूरा हो जायगा। यह बड़ी भारी बात है। बहुत से लोगों ने स्थानिक स्वराज्य की ठीक ही परिभाषा की है कि यह जनता के लिये राजनैतिक शिक्षा का क्षेत्र है। वहां हम राजनैतिक शिक्षा के लिये जितना चाहें उतना ही क्षेत्र मिल सकता है। फिर शासन के मध्य भाग में तो स्थिति इतनी बदल जायगी कि मानो राज्यक्रान्ति ही हो गई। इस समय सब बातें निम्न श्रेणी के अफसरों से लेकर वाइसराय और भारत सचिव तक अधिकारीवर्ग की गुप्त लिखा पढ़ी के द्वारा ही तै होती हैं। जब तक अन्तिम निर्णय नहीं होता तब तक हमको कुछ मालूम ही नहीं होता। यदि निर्णय हमारे प्रतिकूल या हमारी इच्छा के विरुद्ध हुआ तो हमको शोक प्रकाश करके चुप हो रहना पड़ता है, हम और कुछ नहीं कर सकते। नई व्यवस्था के अनुसार साधारण शासन-सम्बन्धी सब महत्वपूर्ण प्रश्न अधिकारीवर्ग के सामने उत्तरदायित्व पूर्ण रीति से प्रान्तीय व्यवस्थापक कौंसिलों में उपस्थित किये जायगे। इन कौंसिलों में बहुमत गैरसरकारी मेम्बरों का रहेगा। गैर सरकारी बहुपक्ष को शासन सम्बन्धी प्रश्न उठाने का अधिकार दे देना अत्यंत महत्व की बात है। मुझे पूरा विश्वास है कि इससे शासन के अधिकारी तन्त्र के लक्षण में बड़ा अन्तर पड़ जायगा। फिर रुपये पैसे के मामले में हमारा अधिकार बढ़ जायगा। इन मामलों पर हमको पूरा अधिकार तो तब ही होगा जब प्रान्तों को अपने आर्थिक मामलों का प्रबन्ध आप ही करने का अधिकार मिल जायगा। पर इसका पता तो डिसेन्ट्रलाइजेशन कमीशन की रिपोर्ट पर सरकार की आज्ञा प्रचारित होने पर लगेगा। तथापि यह आशा है और सर्वसा

भारत को भी यह मालूम है कि कमीशन की रिपोर्ट के कारण प्रान्तीय सरकारों को भारतीय सरकार के नियंत्रण से बहुत कुछ मुक्ति मिल जायगी और उसके स्थान पर व्यवस्थापक सभाओं का—अर्थात् वादविवाद और समालोचना का नियंत्रण हो जायेगा। प्रान्त में सर्वोच्च अधिकार [illegible] कौंसिलों में भारतीयों का प्रवेश होगा। हम जानते हैं कि यह दशा [illegible] हो रही है। भारतीय [illegible] कौंसिलों में भी [illegible] [illegible]

[illegible]

सरकार पीछे हटती जायगी, प्रान्तीय सरकार आगे आती जायगी और हमको प्रान्तीय शासन पर प्रभाव डालने के आव श्यकतानुसार अवसर मिलेंगे। कल लोग यह शिकायत कर रहे थे कि बडी व्यवस्थापक कौंसिल के सम्बन्ध में भारतसचिव की व्यवस्था भारतीय सरकार की प्रस्तावित व्यवस्था से बुरी है और निर्वाचन की व्यवस्था से विशेष वर्गों को विशेष प्रतिनिधित्व प्रदान करने का सिद्धान्त बहुत बढ जायगा। सज्जनों, मैं समझता हू कि इन दोनों बातों के सम्बन्ध में काग्रेस से जाने के पहिले, आप अपने विचार सुस्पष्ट कर लें। (सुनो सुनो की ध्वनि।) जहा तक बडी व्यवस्थापक कौंसिल का सम्बन्ध है, प्रस्तावित पद्धति पूरी व्यवस्था का एक भाग है। भारत सरकार का प्रस्ताव यह था कि बडी कौंसिल तथा सातों प्रान्तीय कौंसिलों में सदा सरकारी बहुपक्ष रहें। कलकत्ते में होने वाली बडी कौंसिल में सरकारी मेम्बरों को भिन्न २ प्रान्तों से बडा लम्बा रास्ता तै कर के आना पडता है। इस लिये सरकार ने प्रस्ताव किया था कि सरकारी बहुपक्ष वहा सदा उपस्थित न रहे किन्तु जब आव श्यकता पड़े तब बुला लिया जाय। व्यवहारिक दृष्टि से तो वहा सरकार का बहुपक्ष रहता ही। इसके अलावा प्रान्तीय कौंसिलों में भी रहता। भारत सचिव इन प्रस्तावों से बहुत आगे बढ गये हैं। इन सब कौंसिलों में सरकारी बहुपक्ष रखने के बजाय उन्हों ने सातों प्रान्तीय कौंसिलों को उससे मुक्त कर दिया है। यह तो मानी हुई बात है कि सरकार कहीं न कहीं अपने पास सर्वोच्च अधिकार रक्खेगी क्यों कि हमारी प्रगति की वर्तमान दशा में यह आशा करना बुद्धिमानी नहीं है कि वह शासन और व्यवस्थापन का नियंत्रण हमारे हाथों

में सौंप देगी। पर बड़ी कौंसिल में बहुपक्ष रखने से सब प्रान्तीय कौंसिलें सरकारी बहुपक्ष के बन्धनों से मुक्त हो गई हैं। भारत सरकार पीछे हटती जायगी और उसका बहुपक्ष बहुत करके सरक्षित शक्ति के समान है। इसलिये व्यवहार कुशल लोगों की तरह हमको सतुष्ट रहना चाहिये। हमें कृतज्ञता पूर्वक इस व्यवस्था को वर्तमान स्वरूप में स्वीकार करना चाहिये क्योंकि या तो हमें पूरी व्यवस्था स्वीकार करनी होगी या पूरी व्यवस्था रद्द करनी होगी।

अब रही निर्वाचकवर्ग और विशेष जातियों के पृथक् प्रतिनिधित्व की बात, सो भाई यह कहना तो बहुत अच्छा मालूम होता है कि हमारा आदर्श देश में पूर्ण ऐक्य स्थापित करना है, भिन्न २ वर्गों में पूर्ण एकयता स्थापित करना है। अजी जीवन में हमारे और भी बहुत से आदर्श हैं। कुछ धर्मों के अनुयायी आदर्श जगत देखने की आशा करते हैं पर हमको वर्तमान परिस्थितियों का सामना करना है। आज देश की जातियों में तीक्षण भेदभाव विद्यमान है। इस लिये मेरी समझ में तो ऐसी व्यवस्था देश की एक्यता की वृद्धि ही करेगी, जिसके अनुसार महान विशेष वर्गों को प्रतिनिधिकसस्थाओं में अपने ही विश्वासपात्र जन चुन कर भेजने का प्रबन्ध हो। इससे आपस में उत्पन्न होने वाले ईर्ष्या द्वेष के भाव मिट जायगे। बहुत से मुसल्मान सज्जन मेरे बड़े मित्र हैं। मुसल्मान जाति के विषय में मैं कह सकता हूँ कि जब व्यवस्था का प्रकृत व्यवहार होगा और वह अपने ही निर्वाचित, अपने विश्वासपात्र सज्जनों को कौंसिल में भेज देंगे तब उनकी यह अन्याय पूर्ण आशंका मिट जायगी कि हिन्दुओं के सामने हमारी कुछ भी न चलेगी तब उनको इस महान राष्ट्रीय कार्य

में सम्मिलित होने का प्रोत्साहन प्राप्त होगा (हर्ष ध्वनि।) सज्जनो मैंने इन थोड़े से शब्दों में यह बतलाया कि वर्तमान स्थिति क्या है और नई व्यवस्था के कार्य में परिणत होने पर हमारी क्या स्थिति होगी। अब मैं अपनी वक्तृता की अन्तिम बात कहना चाहता हूं।

एक वाक्य में परिवर्तन का वर्णन इस प्रकार किया जा सकता है। अब तक हम बाहर से आन्दोलन करते रहे हैं, अब से हम उत्तरदायित्व पूर्ण रीति से शासन के कार्य में सम्मिलित किये जायगे। इस का अर्थ शासन का नियन्त्रण करना नहीं है, पर तो भी शासन के कार्य में सम्मिलित होना है—उत्तरदायित्व पूर्ण रीति से सम्मिलित होना है। यहां वृद्धि के लिये बहुत स्थान है। ज्यों २ हम उन्नति करते जायगे और अपने कर्त्तव्य को यथोचित रीति से पालन करते जायगे त्यों २ हम उत्तरदायी शासन पद्धति के आदर्श के पास पहुचते जायगे। कोरे आन्दोलन से हम शासन में उत्तरदायित्व पूर्ण भाग लेने की अवस्था तक पहुच गये। इस अवस्था से हम किसी न किसी दिन उत्तरदायी शासन प्राप्ति की अवस्था तक अवश्य ही पहुंचेंगे (हर्षध्वनि।) अच्छा, सरकार ने जो महान् और उदार स्वत्व हमको दिये हैं उनका हमें यथायोग्य अभिवादन करना चाहिये। विशेष कर हमारे दो कर्त्तव्य हैं, एक तो यह कि सरकार के कोरे छिद्रान्वेषण के स्थान पर हमारे हृदय में सरकार के साथ सहकारिता का भाव उत्पन्न होना चाहिये। यदि हम सरकार का निरन्तर विरोध करेंगे तो नई व्यवस्था का उद्देश्य कभी पूरा न होगा और वह बिलकुल व्यर्थ

प्रमाणित होगी। इस लिए हमारे ऊपर पहिला कर्तव्य भार यह है कि हम अपने हृदय में सरकार की सहकारिता करने के भाव को स्थान दें। दूसरा कर्तव्य यह है कि हम अपनी नई शक्तियों का प्रयोग सयम और नम्रतापूर्वक करें और उनका प्रयोग जनसमूह के हितसाधन के एक मात्र उद्देश्य से करें (सुनो, सुनो की ध्वनि।) बहुत से प्रश्न हैं जिनका निपटारा करना आवश्यक है पर इस समय सरकारी अफसरों को उनका यथोचित विचार करने के लिए समय नहीं मिलता। जनसमूह की शिक्षा का प्रश्न है, सफाई का प्रश्न है, कृषकवर्ग के ऋण का प्रश्न है, शिल्पीय शिक्षा का प्रश्न है, इसी तरह और भी प्रश्न हैं। मैं मानता हू कि बहुत कुछ हो रहा है पर जब सरकार को कौंसिल की सहायता मिल सकेगी तब और भी अधिक काम हो सकेगा। मुझे विश्वास है कि इन सब दिशाओं में भूतकाल की अपेक्षा भविष्य में बहुत ज्यादा काम होगा। इस लिये हमें अपनी नई शक्तियों का प्रयोग सयम और नम्रता के साथ एक मात्र जनसमूह के हितार्थ करना होगा। यदि ऐसा होवे तो फिर भविष्य के विषय में मुझ कोई आशङ्का नहीं है। सज्जनों, मेरे कुछ मित्र इस विषय में बहुत कुछ कर रहे हैं कि कौंसिल के कानूनों और प्रस्तावों को मानने न मानने का अन्तिम अधिकार सरकार ने अपने ही हाथ में रक्खा है। पर हमें इस सम्बन्ध में बहुत कहने सुनने की आवश्यकता नहीं है। इस अधिकार पर आक्षेप करना अथवा यह आशा करना कि सरकार इस अधिकार को जल्द ही छोड़ देगी, वैध शासन प्रणाली समझने में अपनी असमर्थता दिखलाता है। इस समय लन्दन पार्लामेंट के हौस आफ कामन्स के ऊपर भी इस प्रकार के दो

अधिकार हैं, एक तो हौस आफ लार्डस का वास्तविक अधिकार और दूसरा राजराजेश्वर का नाम मात्र का अधिकार। अंग्रेज लोग आत्मशासित जाति हैं पर तो भी वह इन अधिकारों की असुविधा को सहन करते हैं। पहिले हमें अपने को नये अवसरों के सर्वथा योग्य बनाना चाहिये, तब सरकार के इस अधिकार को कम करने की बातचीत का अवसर बहुत मिलेगा।

बस, एक बात कहके मैं बैठ जाना चाहता हू। हम अधिकाश भारतवासी—हिन्दू, मुसलमान और पारसी कुछ कल्पनाशील मनुष्य हैं—दूर २ के स्वप्न बहुत देखा करते हैं। इसमें तो कोई सन्देह ही नहीं कि हिन्दू इस बात में सब से बढ कर हैं। मैं मानता हू कि यदि स्वप्नों से और कुछ नहीं होता तो कभी २ आनन्द तो होता ही है। भविष्य के लिए आदर्श और आकाक्षाएँ बनाने में स्वप्नों की महिमा को भी मैं मानता हू पर व्यवहारिक मामलों में हमको व्यवहार कुशल मनुष्यों की भाति व्यवहार करना चाहिये और दो बातें याद रखनी चाहिये। जीवन यात्रा सर्वथा स्पष्ट कोरी पट्टी पर लिखना नहीं है। पट्टी पर पहिले ही से बहुत से शब्द लिखे हुए हैं। हम कुछ अन्य ऐसे शब्द जोडते हैं कि सार्थक वाक्य बन जाय। दूसरी बात यह है कि आप चाहे जो कुछ मांगे पर इसका यह अर्थ नहीं है कि आपको वह चीज मिल जायगी, अथवा यह कि आप उसके योग्य हैं और प्राप्त होने पर आप उसकी रक्षा कर सकते हैं। इसलिये हमें उचित है कि कोरे स्वप्नों के पीछे न पडें और वर्तमान अवकाशों की उपेक्षा न करें। देश का भविष्य इसपर निर्भर है कि हम लोग और विशेष करके हमारे नवयुवक भाई, अपने को

नये अवसरों के लिये पूर्णत उपयुक्त किस प्रकार सिद्ध करते हैं। वर्तमान स्थिति से कोई भी सतुष्ट नहीं रहना चाहता। पर अन्य उत्तरदायी अधिकार मागने के पहिले हमें यह प्रमाणित करना चाहिये कि हम वर्तमान कर्तव्यों को अच्छी तरह पालन कर सक्ते हैं। मैं अनेक बार कह चुका हू और एक बार फिर कहता हू कि मैं नहीं चाहता कि हमारे देशवासियों की वृद्धि में किसी प्रकार की कोई रुकावट होवे। मैं चाहता हू कि हमारे देश के सब स्त्री पुरुष अन्य देशों के स्त्री पुरुषों की तरह, सब तरह की पूर्ण उन्नति करें। पर हमारी उन्नति कर्त्तव्यपालन के द्वारा ही हो सकती है। नये अधिकारों की बात सोचने के पहिले हमें अपने वर्तमान कर्तव्यों का अच्छी तरह पालन करना चाहिये। महिलाओ और सज्जनो, आपने जिस ध्यान से मेरी वक्तृता सुनी है और जिस प्रकार से मेरा स्वागत किया है उसके लिये मैं आप सब को हार्दिक धन्यवाद देता हू।

भारतवासी और सरकारी नौकरियां।



१७ मार्च सन् १९११ ई० को माननीय मि० सूबाराव ने गवर्नर जनरल की कार्यकारिणी कौंसिल में इस विषय का एक प्रस्ताव पेश किया था कि सरकारी शासक और गैर सरकारी सदस्यों का एक कमीशन इस उद्देश्य से नियुक्त किया जाय कि वह भारतवासियों के उन मतालबों पर विचार करे जो वे देश के शासन विभाग में उच्चपद और अधिकार पाने के विषय में पेश करते हैं। इस प्रस्ताव के समर्थन में मि० गोखले ने निम्न लिखित वक्तृता दी —

सभापति महोदय! मेरे माननीय मित्र ने जो प्रस्ताव पेश किया है उसके विषय में कुछ कहने के पहले मैं माननीय मि० सूबाराव को उस परिश्रम और योग्यता के लिए अनेकश धन्यवाद देता हूं जो उन्होंने इस प्रस्ताव के तैयार करने और पेश करने में खर्च की है। निःसन्देह यह प्रश्न बड़े महत्व का है, और महत्व के दूसरे प्रश्नों की भांति इसमें भी अनेक कठिनाइयां हैं। मैं चाहता हूं कि मैं इस प्रश्न पर विचार करने के लिए यथासम्भव न्याय से काम लूं क्योंकि इसके दो भाग हैं। यद्यपि मेरी यह मुख्य कामना है कि मेरे देशभाइयों की अभिलाषाएं गवर्नमेंट की ओर से उचित और सच्चे मान की दृष्टि से देखी जायें तथापि मैं यथासम्भव उन कठिनाइयों

की अवहेलना नहीं करना चाहता जो इस प्रश्न को हल करने के मार्ग में गवर्नमेन्ट के लिए बाधक हैं।

इस देश में विलायती शासन जिन सिद्धान्तों पर अव लम्बित है उनमें से एक यह है कि शासन की नीति हमेशा उन्नति पक्ष की ओर ले जाने वाली रहे, मैं समझता हूँ कि सभी बुद्धिमान चाहे वह किसी जाति के क्यों न हों, इस सिद्धान्त का समर्थन करेंगे। मैं इस बात की जाँच के लिए चार बातें पेश करता हूँ कि यहा का शासन उन्नति का सहायक और उन्नति की ओर ले जाने वाला है या नहीं। पहली बात ध्यान देने योग्य यह है कि वर्त्तमान सरकार देश के सर्वसाधारण निवासियों की सभ्यता शिक्षा और आर्थिक उन्नति तथा उनकी भलाई के लिए किन किन उपायों का उपयोग करती है इस में मैं उन उपायों और साधनों को नहीं गिनता, जिनका ब्रिटिश सरकार ने इस देश में उपयोग किया है क्योंकि वे साधन तो ऐसे थे जो स्वयम् राज्य की दृढ़ता के लिए अनिवार्य थे, यद्यपि इनसे प्रजा को भी लाभ अवश्य पहुंचा। उदाहरण के लिए, रेल्वे का बनाना, डाक और तार का प्रचार करना, तथा और भी ऐसी अनेक चीजें हैं। शिक्षा के साधन और उन्नति के उपायों से मेरा तात्पर्य यह है कि राज्य की ओर से प्रजा की शिक्षा, आरोग्यता, कृषि की उन्नति और उद्योग शिल्प आदि के प्रचार के लिए क्या किया जाता है। यह मेरे ख्याल में पहली कसौटी है। दूसरी बात जाचने के योग्य यह है कि सरकार हमको राज्य के प्रान्तिक मामलों में भाग और अधिकार देने की क्या व्यवस्था कर रही है? मेरा तात्पर्य लोकल और डिस्ट्रिक्ट्बोर्डों से है। तीसरी बात यह है कि

सरकारी कौंसिलों में जहा सरकारी नीति का निर्माण होता है और उन पर विचार किया जाता है, गवर्नमेन्ट हमको किस कदर भाग देने के लिए तैयार है। और अन्त में यह भी विचारणीय है कि सरकारी उच्च पदों पर भारतवासी कहाँ तक नियुक्त किये जाते हैं ?

पहली बात के विषय में यह अनुमान किया जाता है कि सरकार इस सम्बन्ध में आगे पग बढानेवाली है, जिसमें सरकारी और गैर सरकारी सदस्यों को मिलकर सच्चे दिल से कोशिश करना चाहिये। दूसरी बात के विषय में मैं विश्वास करता हूँ कि "डीसेन्ट्रीलायजेशन" कमीशन की सिफारिशों के अनुसार शीघ्र ही उन्नति होगी। आरम्भ तो आशाप्रद है यदि कुछ और उन्नति हुई तो हमें कुछ दिनों के लिए सताप करना पडेगा। बडी व्यवस्थापक सभा तथा प्रान्तीय छोटी कौंसिलों में जो सुधार हाल में हुए हैं वे भी उन्नति के साधन कहे जा सकते हैं और यह प्रश्न भी कुछ दिन न उठेगा। परन्तु जब हम अन्तिम प्रश्न पर आते हैं तो हमको यह अनुभव होता है कि मामलात में सुधार करने के लिए अवश्य कुछ होना चाहिये, और मैं आशा करता हूँ कि शीघ्र ही कुछ न कुछ किया जायगा।

महाशयो! मैं कह चुका हूँ कि गवर्नमेन्ट को बराबर उन्नति पर लक्ष्य रखना चाहिये। और इन में से किसी मामले में भी गवर्नमेन्ट जिस स्थान पर अनिकाल से ठहरी हुई है बराबर खडी नहीं रह सकती। भारतवासियों के उच्च पदों पर नियुक्त होने की बाबत मैं उन बातों का कुछ कथन किया चाहता हूँ जिनका उल्लेख मेरे माननीय मित्र मि० मुधोलकर ने अभी किया है—अर्थात् अंग्रेजी शासन के जमाने में इस यात्रा की चार या

पांच मजिलें तै हुई हैं। पहली मजिल यह थी जब स १८३३ ई० में पार्लामेन्ट ने स्पष्टत यह निश्चय किया था कि इस देश में सरकारी पदों की नियुक्ति के विषय में किसी प्रकार के धार्मिक या जातीय पक्षपात का व्यवहार न किया जायगा। अंग्रेज जाति ने यह उदारता पूर्ण वादा स्वयम् ही किया था उस समय इस विषय में यहा वालों ने कई आन्दोलन नही किया था। वास्तव मे यहा उस समय तक पाश्चात्य शिक्षा का प्रचार भी नही हुआ था। यह एक बडा कौल करार था जो अपने आप ही प्रसन्नता पूर्वक किया गया था। दूसरी मजिल वह थी, जब १८५३ ई० में सिविलसर्विस की परीक्षा का द्वार युरोपियन की भाति भारतवासियो के लिए भी मुक्त कर दिया गया। पुरानी शिक्षा पद्धति रद्द की गई नई परीक्षाए स्थापित की गई और उनका द्वार सब के लिए एकसा खोल दिया गया। आगे चलकर मल्कामुअज्जमा की १८५८ वाली राजघोषणा तीसरी मजिल थी।

उस वक्त तक भी प्रजा में इसके लिये कोई असतोष नही फैला था, कारण यह था कि तब तक यूनीवर्सिटियाँ कायम न हुई थीं, शिक्षित लोगों का सख्या बहुत कम थी। स १८६१ में भारत मत्री ने वह कमेटी नियत की, जिसका उल्लेख मेरे माननीय मित्र ने किया है, और यह भी अग्रेज जाति की ही ईमानदारी थी अन्यथा भारतीयों की ओर से इस कमेटी की नियुक्ति के लिये भी कोई आन्दोलन नही किया गया था। फिर जब १८७० वाला एक्ट पास किया गया, जो इस मामले की चौथी मजिल थी तब इस विषय पर सर्वसाधारण राय जनी करने लगे थे, और कुछ भारतीय विशेषत मिस्टर दादा भाई

नौरोजी भारतवासियों को उच्च पद दिये जाने के लिये इङ्गलैण्ड में आन्दोलन कर रहे थे। परन्तु उस मौके पर भी इस काम का अधिकांश अंग्रेजों ही के हाथ से हुआ अर्थात् उन योग्य अंग्रेजों के हाथ से जो हमारी इच्छाओं और आवश्यकताओं के विषय मे यह अनुभव करने लगे थे कि भारतवासियों के लिए वर्तमान प्रबन्ध न्याय-विरुद्ध है। परन्तु जब स १८८६ में "पब्लिक सर्विसेज कमीशन" नियत हुआ जो इस मामले की पाँचवीं मंजिल कही जा सकती है। तो मामलात की दशा बिलकुल बदल गई, उस वक्त शिक्षित जनों का एक अच्छा समूह तैयार हो चुका था और यह समूह इस बात को भली भाँति अनुभव कर रहा था कि उसको सरकारी उच्च पदों से पृथक् रखा जाता है। कमीशन के नियत किये जाने का मुख्य उद्देश्य यही था कि वह उन सुधारों पर विचार करे जिनसे भारतवासी अधिक संख्या में उच्च पदों पर प्रतिष्ठित हो सकें। परन्तु कमीशन के प्रयत्नों का परिणाम उलटा हुआ और उसने हमारे साहस में बाधा डाली।

महोदय! इस प्रश्न की दशा बड़ी मनोरंजक है। कितने समय में हमने एक मंजिल तै की, १८३३ से १८५४ या १८५८ तक, कोई ले लीजिये कम से कम २० २५ वर्ष का समय लगा, १८५८ से १८७० तक १४ वर्ष हुए, १८८६ में जब इस प्रश्न की फिर जाँच पड़ताल की गई तो १६ वर्ष व्यतीत हो चुके थे। उस वक्त से फिर गत २५ वर्षों में कोई जाँच पड़ताल इस मामले में नहीं हुई, एक यह भी कारण है, जिसके सहारे मैं कहता हूँ कि यह प्रस्ताव स्वीकार कर लिया जावे। यह ठीक बात है कि गत ३—४ वर्षों में कई प्रधान उच्च पदों पर कुछ भारतवासी नियुक्त किये गये हैं, मेरे मित्र मि० अली इमाम

क़ानून के परामर्शदाता हैं, दो माननीय सज्जन भारत मंत्री की कौंसिल में भी शामिल किये गये हैं। एक हिन्दुस्तानी हाल ही में कलकत्ता हाईकोर्ट के एडवोकेट जनरल थे, और भिन्न भिन्न भारतीय हाईकोर्टों के अस्थायी चीफ जस्टिस भी रहे हैं। इन उच्च पदों पर भारतवासियों का नियुक्त किया जाना निःसन्देह मेरे देशभाइयों ने पसन्द किया है और साधारण प्रजा पर इसका बहुत प्रभाव पड़ा है। परन्तु हमारी शिकायत तो हिन्दुस्तानियों को अधिक संख्या में उच्च पदों पर नियुक्त करने की है। इन मुख्य मुख्य थोड़े से पदों पर हिन्दुस्तानियों के नियुक्त होने से हमारी शिकायत दूर नहीं होगी। और जहां तक इस शिकायत का सम्बन्ध है, पब्लिक सर्विसेज़ कमीशन की सिफारशों से कार्य रूप में बहुत कम लाभ और थोड़ा सा सुधार हुआ है बल्कि कुछ विभागों में तो उल्टी हानि हुई है। मेरे माननीय मित्र मि० सुवाराव ने यह दिखाया है कि सिविलसर्विस के सम्बन्ध में तो कमीशन की सिफारशों और भारतमंत्री की आज्ञाओं ने, १८७९ ई० की सर्विस के नियमों की व्यवस्था के मुकाबिले में भी हमें और पीछे हटा दिया है।

१८७९ ई० के नियमों के अनुकूल सारे देश के सिविल सर्विस के पदाधिकारियों में से ⅙ भाग हमको मिलना चाहिये। यदि उनकी संख्या १००० रक्खी जावे तो थोड़ी बहुत कमी बेशी की परवा नहीं पर कम से कम १६० जगहें हमें अवश्य मिलना चाहियें। परन्तु कमीशन ने १६० के बजाय सिर्फ़ १०८ नियत कीं, और भारत मंत्री ने उनमें भी काट छाँट करके ९३ ही पदों के देने का निश्चय किया। यही संख्या हमारे भाग में आई। फिर यह कुल ९३ जगहें भी अभी हमारे

नौरोजी भारतवासियों को उच्च पद दिये जाने के लिये इङ्गलैण्ड में आन्दोलन कर रहे थे। परन्तु उस मौके पर भी इस काम का अधिकांश अंग्रेजों ही के हाथ से हुआ अर्थात् उन योग्य अंग्रेजों के हाथ से जो हमारी इच्छाओं और आवश्यकताओं के विषय में यह अनुभव करने लगे थे कि भारतवासियों के लिए वर्तमान प्रबन्ध न्याय-विरुद्ध है। परन्तु जब सन् १८८६ में "पब्लिक सर्विसेज कमीशन" नियत हुआ जो इस मामले की पाँचवी मंजिल कही जा सकती है। तो मामलात की दशा बिलकुल बदल गई, उस वक्त शिक्षित जनों का एक अच्छा समूह तैयार हो चुका था और यह समूह इस बात को भली भाँति अनुभव कर रहा था कि उसको सरकारी उच्च पदों से पृथक् रक्खा जाता है। कमीशन के नियत किये जाने का मुख्य उद्देश्य यही था कि वह उन सुधारों पर विचार करे जिनसे भारतवासी अधिक संख्या में उच्च पदों पर प्रतिष्ठित हो सकें। परन्तु कमीशन के प्रयत्नों का परिणाम उलटा हुआ और उसने हमारे साहस में बाधा डाली।

महोदय! इस प्रश्न की दशा बड़ी मनोरंजक है। कितने समय में हमने एक मंजिल तै की, १८३३ से १८५३ या १८५८ तक, कोई ले लीजिये कम से कम २०-२५ वर्ष का समय लगा, १८५८ से १८७० तक १४ वर्ष हुए, १८८६ में जब इस प्रश्न की फिर जाँच पड़ताल की गई तो १६ वर्ष व्यतीत हो चुके थे। उस वक्त से फिर गत २५ वर्षों में कोई जाँच पड़ताल इस मामले में नहीं हुई, एक यह भी कारण है, जिसके सहारे मैं कहता हूँ कि यह प्रस्ताव स्वीकार कर लिया जावे। यह ठीक बात है कि गत ३—४ वर्षों में कई प्रधान उच्च पदों पर कुछ भारतवासी नियुक्त किये गये हैं, मेरे मित्र मि० अली इमाम

कानून के परामर्शदाता हैं, दो माननीय सज्जन भारत-मंत्री की कौंसिल में भी शामिल किये गये हैं। एक हिन्दुस्तानी हाल ही में कलकत्ता हाईकोर्ट के एडवोकेट जनरल थे, और भिन्न भिन्न भारतीय हाईकोर्टों के अस्थायी चीफ जस्टिस भी रहे हैं। इन उच्च पदों पर भारतवासियों का नियुक्त किया जाना निःसन्देह मेरे देशभाइयों ने पसन्द किया है और साधारण प्रजा पर इसका बहुत प्रभाव पड़ा है। परन्तु हमारी शिकायत तो हिन्दुस्तानियों को अधिक संख्या में उच्च पदों पर नियुक्त करने की है। इन मुख्य मुख्य थोड़े से पदों पर हिन्दुस्तानियों के नियुक्त होने से हमारी शिकायत दूर नहीं होगी। और जहां तक इस शिकायत का सम्बन्ध है, पब्लिक सर्विसेज कमीशन की सिफारशों से कार्य रूप में बहुत कम लाभ और थोड़ा सा सुधार हुआ है बल्कि कुछ विभागों में तो उलटी हानि हुई है। मेरे माननीय मित्र मि० सुब्बाराव ने यह दिखाया है कि सिविलसर्विस के सम्बन्ध में तो कमीशन की सिफारशों और भारतमंत्री की आज्ञाओं ने, १८९१ ई० की सर्विस के नियमों की व्यवस्था के मुकाबिले में भी हमें और पीछे हटा दिया है।

१८९१ ई० के नियमों के अनुकूल सारे देश के सिविल सर्विस के पदाधिकारियों में से ⅙ भाग हमको मिलना चाहिये। यदि उनकी संख्या १००० रक्खी जावे तो थोड़ी बहुत कमी वेशी की परवा नहीं पर कम से कम १६० जगहें हमें अवश्य मिलना चाहियें। परन्तु कमीशन ने १६० के बजाय सिर्फ १०८ नियत की, और भारत मंत्री ने उनमें भी काट छांट करके ६३ ही पदों के देने का निश्चय किया। यही संख्या हमारे भाग में आई। फिर यह कुल ६३ जगहें भी अभी हमारे

अधिकार में नहीं है, मेरे ख्याल से इस संख्या में जिसका श्रीमान् भारतमंत्री ने वादा किया था अभी लगभग दस की कमी है। ब्रह्मा और आसाम के लिये जो बाद में बढ़ाये गये हैं मैंने उनकी गणना नहीं की है। श्रीमान् भारत मंत्री ने इस विषय में १८६० ९१ में आज्ञाएं प्रकाशित की थी, इसको २० साल का समय हुआ। यदि और किसी आधार पर नहीं तो मैं केवल इस कारण से, कि कमीशन को नियुक्त हुए २५ साल हो गये और उसकी सिफ़ारशों पर भारत मंत्री की आज्ञाएं प्रकाशित किये २० साल हुए हैं, प्रार्थना यह है कि इस मामले की फिर से छानबीन होना चाहिये। मेरा कथन है कि पब्लिक सर्विसेज कमीशन की सिफारशों के कारण कई विभागों में भारतवासियों की दशा और खराब हो गई उसे ठीक करना चाहिये। श्रीमन्, प्रथम तो पब्लिक सर्विसेज कमीशन ने यह सिफारिश की कि सरकारी नौकरी के विभागों को दो भागों में विभाजित करना चाहिये अर्थात इम्पीरियल और प्रान्तिक। यह सिफारिश शोचनीय है मैं विश्वास करता हू कि पब्लिक सर्विसेज-कमीशन के सभापति अर्थात् तत्कालीन पंजाब के छोटे लाट जो एक उदार शासक थे वे हिन्दुस्तानियों को पीछे नही रखना चाहते थे परन्तु परिणाम यही हुआ कि हिन्दुस्तानी पीछे रहे। इस के दो कारण हैं एक तो प्रान्तिक सर्विस के शासकों की हैसियत हीन दृष्टि से देखी जाती है। जो उन्हें अवश्य ही बुरा लगता है फिर यदि आपने इम्पीरियल और प्रान्तिक सर्विस के लोगों में यह भेद भाव रक्खा तो वे योग्य व्यक्ति जो कई इम्पीरियल सर्विसवाले शासकों से भी अधिक अनुभवी और चतुर हैं, बराबर यह अनुभव करते रहेंगे कि उनके साथ अन्याय किया जाता है अतएव

मैं अनुरोध पूर्वक राय देता हूं कि इस इम्पीरियल और प्रान्तिक भेद का अस्तित्व मिटा देना चाहिये।

मैं आशा करता हूँ कि यह अन्तर न रहेगा और यदि रहा तो बारबार इस मामले को कासिल में उठाना पड़ेगा। दो विभागों में तो इस अन्तर ने बहुत ही हानि पहुंचाई है। शिक्षा विभाग और तामीर के मोहकमे में इससे बहुत क्षति हुई है। हां कुछ दूसरे विभागों मे प्रान्तिक सर्विस के कायम हो जाने से भारतवासियों को कुछ लाभ हुआ है। क्योंकि इन विभागों में पहले भारतवासी लिये ही न जाते थे अब प्रान्तिक सर्विस कायम होने से उन्हें अवसर मिलने की आशा हुई है परन्तु तामीर और शिक्षा विभाग में हमें बहुत नुकसान पहुंचा है। उदाहरण के लिए प्रान्तिक सर्विस कायम होने के पहले शिक्षा विभाग में भारतवासी और अंगरेजों को समान पद मिलते थे। निस्सन्देह उनका वेतन अंगरेजों के वेतन का ⅔ होता था परन्तु और सब बातों में समान थे। अब इनको केवल मातहती का स्थान दिया जाता है और चारों ओर ऐसे अन्याय के उदाहरण मिलते हैं जिनसे हर शख्स के दिल पर चोट लगती है। हम देखते हैं कि कुछ योग्य पुरुष प्रान्तिक सर्विस में केवल इस कारण से रक्खे गये हैं कि वे हिन्दुस्तानी हैं और वह शख्स जो कलही कालेजों से अलग हुए हैं, जिन्होंने कोई अच्छा काम करके प्रसिद्धि नहीं प्राप्त की है, केवल इस कारण से इम्पीरियल सर्विस में हैं कि वे युरोपियन हैं। मैं केवल एक उदाहरण पर सतोष करूंगा, कलकत्ते के एक महाशय डा बी सी राय विज्ञान के प्रकाण्ड पण्डित हैं। फ्रान्स और जर्मनी के नामी विद्वान भी उनका मान करते हैं,। उनके विद्यार्थी उन्हें हृदय से भी अधिक चाहते हैं। विज्ञान के केमिस्ट्री

विभाग में आज २० साल से वे नई नई खोजें और आविष्कार कर रहे हैं। परन्तु वे भी प्रान्तिक सर्विस में ही हैं और कल के लडके जो अभी कालेजों से निकले हैं जिन्होंने कोई करतूत करके नहीं दिखाई, जो वास्तव में उनकी बराबरी नहीं कर सकते, वे इस देश में लाकर उनके अफसर बनाये जाते हैं। केवल इस कारण से कि वे प्रान्तिक सर्विस में हैं और यह विलायत ही से इम्पीरियल सर्विस के मेम्बर बना कर लाये गये हैं। श्रीमन्, इस तरह की बातें केवल उन्हीं का दिल नहीं दुखातीं जो इस अन्याय के शिकार होते हैं बल्कि उसका प्रभाव उन विद्यार्थियों पर भी पडता है जो उनसे शिक्षा पाते हैं, और विभागों में जो अन्याय भारतीयों पर किया जाता है उसका प्रभाव एक सीमा तक परिमित रहता है परन्तु शिक्षा विभाग में यह प्रभाव विद्यार्थियों तक पहुंचता है। अध्यापकों से चल कर यह जहर विद्यार्थियों में फैलता है और उनमें असन्तोष और घृणा के विचार उत्पन्न करता है।

अब तामीरात के मोहकमे-पी० डब्ल्यू० डी० विभाग को लीजिये। एक जमाना था, जब भारतीय इंजिनीयर यूरोपियन के समान ही पद और अधिकार पाते थे बल्कि वेतन भी बराबर ही मिलता था। स० १८६२ में पहली बार वेतन में अन्तर किया गया अर्थात् भारतीय इंजिनीयर का वेतन यूरोपियन इंजिनीयर की अपेक्षा ⅔ रक्खा गया। अब नई योजना के अनुसार प्रान्तिक इंजिनीयर का पद भी घटा दिया गया है क्योंकि उनकी फेहरिस्त पृथक् तैयार की गई है। पहले तो हम इस विभाग में अंगरेजों के बिलकुल समान थे, बाद को वेतन ⅔ कर दिया गया, और बातों में समानता रक्खी गई। अन्त में यह तै हुआ कि यह समानता भी न

रक्खी जाय। अतएव अलग फेहरिस्त बनाई गई और यह सुलूक केवल नये आदमियों के साथ ही नहीं हुआ वल्कि अत्यन्त विवादास्पद और अन्याययुक्त प्रयत्न इस बात के लिए किया गया है कि उन लोगों के साथ भी जो १८६२ में नौकर हुए थे, यही सुलूक किया जाय। लगभग १०० कर्मचारी ऐसे है जो इस अन्याय के शिकार हुए हैं। १८६२ में सरकार ने इन लोगों के साथ निश्चय वादा किया था कि इनके नाम भी उसी फेहरिस्त में रहेंगे जिसमें इम्पीरियल इजिनीयरों के। इसके होते हुए भी अब इनके नाम पृथक् किये जाने की कोशिश की जा रही है यह दु ख की बात है। इन लोगो ने अभी इस सरकारी प्रबन्ध को स्वीकार नहीं किया है, और शिकायत करते हुए ३ साल होगये परन्तु अब तक कोई सुनवाई नहीं हुई है। भारत मन्त्री, भारत सरकार के मन्तव्य की प्रतीक्षा कर रहे है जो अभी तक पहुच जाना चाहिये था। कुछ दिन हुए मैंने इस विषय में एक प्रश्न किया था और मि० कारलायल ने उसका जवाब दिया था, इस जवाब से कुछ आशा झलकती थी अतएव आज मै उस सवाल पर जोर नहीं दूगा परन्तु अगर जरूरत बाकी रही तो मै शिमले की कौंसिल के अधिवेशन में इस पर एक प्रस्ताव पेश करूगा।

पहली बात जो मुझे कहना है यह यह है कि इम्पीरियल और प्रान्तिक भेद दूर होना चाहिये। दूसरा मामला, जिससे हमने भूतपूर्व पब्लिक सर्विसेज कमीशन के जमाने से नुकसान उठाया है, चुनाव की परीक्षाओं का है, इन परीक्षाओं वाला नियम न्यूनाधिक सारे देश से दूर कर दिया गया है। और अब हमारे भाग्य का निपटारा केवल सरकारी नाम

ज़दगी पर रह गया है। चुनाव की परीक्षाओं के द्वारा सरकारी पदाधिकारियों के निर्णय में जो दोष हैं, मे उनसे अपरिचित नहीं। निस्सन्देह यह व्यवस्था अच्छी नहीं। परन्तु मैं यह अवश्य कहूंगा कि वर्त्तमान दशा में जो कुछ सम्भव है इसमें ही सुधार किया जाय। हमारे से देश में जहां अंग्रेज शासक है, जो हमारे स्वभावों से सर्वथा अपरिचित हैं, और दो व्यक्तियों की जाच कठिनता से कर सकते हैं, उनका दिखावे की बातों, सिफारिशों तथा और ऐसी ही बातो से धोखा खा जाना बहुत सम्भव है। अतएव मैं प्रार्थना करूंगा कि उक्त परीक्षाओं में कुछ दोष होते हुए भी वे नामजदगी के तरीके से फिर भी कहीं अच्छी है। यदि किसी अंग्रेज को किसी दूसरे उम्मेदवार अंग्रेज की परीक्षा करनी हो तो सम्भव है कि चुनाव की परीक्षा आवश्यक न हो क्योंकि सजातीय होने और एक ही समाज में चलने फिरने, उठने बैठने के कारण वे एक दूसरे के स्वभावों से भली भाति परिचित हो सकते हैं। परन्तु जब दो व्यक्ति दो जातियों और दो देशों के हैं और एक दूसरे से कतई परिचित नहीं हैं तो उस दशा में नामजदगी वाले नियम से बुरे परिणाम निकलेंगे। चुनाव ठीक नहीं होगा और पक्षपात से काम किया जायगा। अतएव मेरा दूसरा प्रस्ताव यह है कि सरकारी नौकरी के लिए फिर नये सिरे से उक्त परीक्षाओं का प्रबन्ध किया जाय।

अब मैं एक या दो विभागों के बारे में कुछ बात कहना चाहता हूं। अभी कह चुका हू कि तामीर और शिक्षा विभाग में हमारी दशा खराब हो गई है। डाक्टरी विभाग में यद्यपि हमारी दशा बुरी नहीं हुई है तथापि वह भी बहुत असंतोष

जनक है। अध्यापकों के ओहदे इंडियन मेडिकल सर्विस के शासकों के हाथ में हैं और अस्पतालों में सर्विस के बाहर के लोग नहीं लिये जा सकते। हाल में कलकत्ता कालेज के 'एनाटोमी' (शरीर-विज्ञान) के अध्यापक के पद का द्वार बाहर के लोगों के लिए भी खोल दिया गया है। परन्तु ऐसा करते ही इस नौकरी में शर्तें ऐसी रख दी गई हैं जो आकर्षक नहीं हो सकतीं। इस पद के लिये अब तक पेन्शन नियत थी और निजी तौर से भी इलाज करने का स्वत्व प्राप्त था, परन्तु अब निश्चय किया गया है कि इस पद में न पेन्शन होगी, न उक्त रीति से डाक्टरी करने का अधिकार रहेगा, और न रहने के मकान का खर्चा मिलेगा जो हर किसी को मिलता है। मैं पूछना चाहता हूँ कि यह सब क्यों किया गया है? फिर केमिकल एकजामिनर बम्बई और कराची को लीजिये, कुछ दिन हुए भारत मन्त्री ने यह तै किया था कि इन पदों पर इंडियन मेडिकल सर्विस वालों का ही अधिकार न रहना चाहिये। बम्बई में इस वक्त एक बड़े ही योग्य पुरुष इस पद के लिए प्राप्त हैं। इंडियन मेडिकल सर्विस के लोग जो इस पद पर नियुक्त किये जाते हैं वे उनसे प्राइवेट रीति पर शिक्षा प्राप्त करते हैं और उसके अफसर बना दिये जाते हैं। मुझे ज्ञात हुआ है कि बम्बई गवर्नमेंन्ट इन महाशय की सहायता किया चाहती है परन्तु मामला भारत सरकार के हाथ में है। अस्तु। इन महाशय के प्रकाण्ड पाण्डित्य के स्वत्वों का अब तक कुछ मान नहीं किया गया है।

अन्त में मैं रेलवे विभाग की ओर आता हूँ। मेरे मित्र मि० मधोलकर इस विषय पर भली भांति कथन कर चुके हैं अतएव मैं आज इस प्रश्न पर संक्षिप्त विचार करूंगा। इस

विभाग के उच्च पदों से हम विलकुल अलग रक्खे गये हैं और यह सरासर अनुचित है। यह नो किसी दशा में नहीं कहा जा सकता कि रेलवे विभाग के काम के लिए हिन्दुस्तानी २००J से ऊपर के वेतन वाले ओहदों के योग्य नहीं, विशेषत: जबकि तुम इनको जिलों और कमिश्नरियों का शासक बनाते हो हाईकोर्टों का चीफ जस्टिस नियुक्त करते हो, और भारत के मन्त्रिमंडल में सम्मिलित करते हो। मैं उन लोगों को जो हमारी अयोग्यता के चर्चे चलाया करते हैं एक मनोरञ्जक घटना का हाल सुनाना चाहता हूं जो रेलवे विभाग के सम्बन्ध में नहीं बल्कि पैमायश के मोहकमे के सम्बन्ध में है। बात लगभग एक ही सी है। बहुत समय नहीं हुआ कि पैमाइश विभाग में यह विवाद उठा था कि हिन्दुस्तानियों की भी इस विभाग में कदर होनी चाहिये यूरोपियन अधिकारियों की ओर से यह बड़े जोर शोर से कहा गया कि हिन्दुस्तानी अयोग्य होते हैं अतएव उन्हें इस विभाग से दूर ही रखना चाहिये। दुर्भाग्य से इस विभाग के उच्च अधिकारी कर्नल डियोपर की ओर से हिन्दुस्तानियों के दाखिल के विरोध में एक रिपोर्ट प्रकाशित की गई जिसमें निम्न लिखित बातों का उल्लेख था।—

"मैं यहा पर, यह कहा चाहता हूं कि मुझे भिन्न भिन्न स्थानों पर जाच करने के बाद मालूम हुआ है कि युरोपियन अफसरों में प्राय यह बात पाई जाती है कि वे हिन्दुस्तानियों से तो डाइङ्ग और नकशों के बनवाने का काम लेते हैं और स्वयम् केवल खड़े खड़े देखा करते हैं, मानो वे इस काम को हीन समझते हैं। यह एक भूल है और भविष्य में

यह दुहराने न दी जायगी। फिर युरोपियन अफसरों को यह अगीकार करना, कि कोई भी काम हिन्दुस्तानी उनसे अच्छा कर सकते है बहुत ही हानिकारक होगा। उन्हें इस बात का दावा रखना चाहिये कि वह हर बात में उनसे बढ़े चढ़े हैं। और हिन्दुस्तानियों को केवल तुच्छ काम देना चाहिये। अपने प्रारम्भिक समय में मे कभी किसी हिन्दुस्तानी को असली और बढ़िया काम नहीं छूने देता था। इस सिद्धान्त पर कि पैमाइश का उच्च काय बडे युरोपियन अधिकारियों का है। और इसी एक तरीके से मैं युरोपियन और हिन्दुस्तानियों में भेद कायम रख सकता था कि इन दोनों की पृथक् प्राप्त की हुई मर्यादाओं के लिये कोई विवाद बाकी रहे। हिन्दुस्तानी पैमायश के कार्य और दफ्तर के कामों म युरोपियन के समान ह। हिन्दुस्तानी नक्शा बनाने का काम करता है और युरोपियन और कोई तुच्छ काम।"

श्रीमन्, मैं अत्यन्त नम्रतापूर्वक विनीत वचनों म इस न्याय के लिये वायस चेयरमैन रेलवे बोर्ड की सेवा म एक प्रार्थना पत्र पेश किया चाहता हूं। अब म केवल एक ही शब्द और कहूंगा। मने यह स्वीकार कर लिया है कि यह प्रश्न कठिन है परन्तु फिर मैं यह कहता हूं कि क्रमश उन्नति होना चाहिये। यह कोई नहीं कहता कि अङ्गरेजी भाग बिलकुल उठा दिया जाय या अधिकाश हटा लिया जाय। परन्तु यदि हिन्दुस्तानी उच्च पदों पर दिन बदिन नहीं नियुक्त किये जायँगे तो फिर वह असन्तोष जिसे सरकार दूर किया चाहती है, और भी अधिक बढेगा। इन शब्दों के साथ मैं उस प्रस्ताव का समर्थन करता हूं जिसे मेरे माननीय मित्र ने उपस्थित किया है।

वर्त्तमान स्थिति के अनुकूल कार्यनीति।

४ फरवरी स० १९०७ ई० को प्रयाग में होने वाली एक सार्वजनिक सभा में पण्डित मोतीलाल नेहरू के सभापतित्व में मि० गोखले ने निम्न लिखित वक्तृता दी थी —

मित्रों को उस स्वागत के लिए धन्यवाद देते हुए जो उन्हों ने अपने सच्चे हृदय से किया था, मि० गोखले ने कहा —

वह प्रयाग में पहली बार ही नहीं आए थे। इससे पहले भी वे दो बार प्रयाग आ चुके थे। उन्होंने उस दिन का जिक्र किया, जब पहली बार उन्होंने इस नगर में पदार्पण किया था, और गंगा जमुना के सङ्गम के दृश्य ने जो हिन्दूमात्र के लिए आज अनेक शताब्दियों से महत्व की चीज है, जो प्रभाव इनके हृदय पर डाला था, उस का उल्लेख करते हुए मि० गोखले ने कहा कि उस समय चित्त में अपूर्व उत्साह उमड आया था, अकारण ही आनन्द का अनुभव हो रहा था। वह इस सङ्गम पर खड़े आश्चर्य चकित से हो रहे थे और मस्तिष्क, इस पवित्र भूमि का प्राचीन गौरव, उसकी वर्त्तमान असफलता, अपनी जाति के उत्साह पूर्ण धार्मिक विश्वास की उन सफलताओं और कठिनाइयों का अनुभव कर रहा था जो उस पर गुजर चुकी थीं। इस बात को १७ साल बीत गये उस वक्त से प्रयाग का नाम उनके हृदय पर अद्भुत प्रभाव डालना

है। और उनके दिल में ऐसे उत्साहों की लहरें उठने लगती हैं जिनका पैदा होना ही गौरव और महत्व का कारण है। इसी से अनुमान किया जा सकता है कि वह प्रयाग इस बार किस प्रसन्नता से आये होंगे और वह कृतज्ञ हो रहे थे कि मित्रों ने उनको उस दिन विचार परिवर्तन करने का अवसर दिया।

सब से महत्व का प्रश्न उनके सामने यह था कि राजनैतिक क्षेत्र में उनकी वर्तमान अवस्था कैसी है? और भविष्य में कैसी होनी चाहिये? मि० गोखले ने कहा कि वह इस विषय में कुछ कहना चाहते हैं कि उनके सामने कौन सा काम करने के लिये पड़ा हुआ है, जो हमें अपनी जातीय स्वतन्त्रता की कामनाएँ पूरी करने के लिये अवश्य करना होगा। उन्होंने कहा कि इस वक्त हमारे देश की अवस्था बड़ी नाज़ुक है यह वह समय है, कि जातीय उन्नति के पथ में लोग अग्रसर हो रहे हैं। और यदि हम उचित परिणाम पर पहुंच सकेंगे तो जातीय शक्ति में वृद्धि होगी, इसके विरुद्ध यदि हम उचित परिणाम पर न पहुंच सके तो उसके परिणाम साधारण से अधिक हानिकारक होंगे। कई बातों से इस समय देश की ऐसी अवस्था है, जिससे प्रत्येक देशप्रेमी सन्तुष्ट होगा। नवीन शताब्दी का आरम्भ पूरब के लिए बहुत शुभ जान पड़ता है। हमने अपनी आंखों के सामने एक ऐसा नाटक होते देखा है, जिसने पूरब और पश्चिम के सम्बन्धों पर बहुत ही गहरा प्रभाव डाला है। आज कल के नवीन विचारों ने वायु के रुख में बिलकुल परिवर्तन कर दिया है, हम में एक नई शक्ति और उत्साह का समावेश हो रहा है। अपना अस्तित्व हमें एक नया

रूप दिखा रहा है। लार्ड कर्जन की कड़ी नीति अभ्युदय के रूप में प्रमाणित हो रही है स्वदेशी आन्दोलन का इतनी शीघ्रता के साथ सारे देश में फैल जाना प्रत्येक देशवासी के हृदय में आनन्द और गौरव की लहरें पैदा कर रहा है। क्योंकि स्वदेशी का अर्थ व्यापक देशभक्ति के अतिरिक्त और कुछ नहीं निदान उषा का उजाला हमारी आशाओं के आकाश पर एक नई झलक डाल रहा है, जो बढ़ते बढ़ते सूर्य की भांति प्रकाशित होगा। वर्त्तमान अवस्था में कुछ बातें ऐसी हैं जो चित्त को प्रसन्न करती और हृदय में साहस पैदा करती है। परन्तु उसीके साथ मैं यह भी कहूंगा कि कुछ चिन्ह ऐसे भी हैं जिनसे असंतोष होता है और हरतरह का सोच विचार पैदा हो जाता है। अतएव आपने कहा कि हम वर्त्तमान अवस्था पर एक सरसरी दृष्टि डालें और स्पष्टतः यह देखने की चेष्टा करें कि हमारा उद्देश्य क्या है अथवा क्या होना चाहिये और हम उसकी ओर कितना बढ़े हैं? यह विचार कर लेना लाभदायक होगा।

वर्त्तमान अवस्था के मुख्य मुख्य रूप क्या है? हमारे एक ओर तो विजातीय शासकों का समूह है जो सारी शक्ति और शासन पर अधिकार जमाये हुए हैं। इनलोगों ने जिनका सरक्षक एक बड़ा भारी साम्राज्य है, एक शताब्दी के मध्य में हमारे देश में अपने शासन का एक बड़ा उच्च भवन तयार कर लिया है, और यद्यपि यह भवन हमारे जीवन के व्यवहारों से बिलकुल पृथक् है तथापि यह उनकी उत्तम प्रबन्ध शैली का हमारे लिये पूरा प्रमाण है और उससे यह प्रकट होता है कि उनके हृदयों में नियमों की पाबन्दी का कैसा महत्व है और कामों को शृङ्खलाबद्ध करने में वे कैसे निपुण

हैं। प्रजा की दृष्टि म इन के शासन का वडा महत्व है। हमारी दूसरी ओर प्रजा का एक बहुत वडा समूह है जो एक मिट्टी के ढेर की तरह लथर पथर पडा हुआ है जिसमें से कभी २ धार्मिक उत्साह की दशा म एक आध चिनगारिया निकल पडती ह। जिनसे एक नये जीवन के अस्थिर प्रभाव देखने में आते हैं। यह समूह पारस्परिक द्वेष, के कारण दुखी है, इसमें न जातीयता का कुछ मान है और न मेलमिलाप की कुछ इज्जत ह। यह मूर्खता और दीनता के गड्ढों में पडा हुआ है। और ऐसे रीति रवाजो को मानता है कि जातीय भागो को जीवित रखने के लिए उनकी आवश्यकता भले ही हो पर जाति के छिन्नभिन्न समूहों को एकत्र करके उन्नति के क्षेत्र म आगे बढाना उनकी शक्ति के बाहर है।

इन दोंनो के बीच म शिक्षित जनों का समुदाय है जिसकी संख्या में दिन दिन वृद्धि होती जाती है और जो अब भी उक्त बड़े समूह पर अपना अधिकार रखता है। और जो अपनी शिक्षा य ग्यता, अवसर की आवश्यकताओं की जानकारी, और देश भक्ति के उत्साह से भविष्य में अनिवार्य रीति से उक्त अग्ठित समाज का मार्ग दर्शक बनेगा। यह समुदाय जो किसी समय ब्रिटिश शासन से पूरी सहानुभूति रखता था, अब वह अपना असंतोष प्रकट करने लगा है। उसको सरकार का, आशाजनक वादे न करना अनुचित प्रतीत होता है और अपनी निर्बलता और विवशता उसे असहनीय जान पड़ती है। वह इस पर तुला हुआ है कि सभ्य जातियों की भांति यह भी संसार की दृष्टि में जातीय मान प्राप्त करे। प्रश्न की कठिनाइयों और गम्भीरताओं का उल्लेख करने के बाद जिन

का हमें मुकाबिला करना है, मि० गोखले ने कहा कि अब हमको यह देखना है कि ऐसी दशा में हमारा उद्देश्य क्या होना चाहिये ? आपने कहा कि मैं आरम्भ ही में यह कह देना चाहता हूँ कि में अपनी जाति की इच्छाओं और कामनाओं को परिमित नही समझता । मैं अपनी जातिवालों को अपने देश में वैसा ही स्वतंत्र और स्वाधीन देखना चाहता हू जिस तरह अन्य देशों के लोग अपने देशों में होते हैं। बिना किसी मतमतान्तर के भेदभावों के म अपने सजातियों के लिए वे अवसर और सुभीते चाहता हू जिनसे वे अनुचित और अस्वाभानिक बन्धनों से मुक्त हो कर बढें और फलें फूलें। मे चाहता हू कि भारतवर्ष, धार्मिक, राजनैतिक, उद्योग शिल्प इत्यादि जीवन के सभी गुणो में ससार की जीवित और प्रसिद्ध जातियों के पार्श्व मे स्थान पाने और अपना सम्मान स्थापित कर सके। मे यह सब कुछ चाहता हू परन्तु इस के साथ ही यह भी विश्वास करता हू कि हमारी यह सब कामनायें ब्रिटिश सामाज्य के भीतर रह कर पूरी हो सकती हैं। हमारे सामने यह प्रश्न नही कि केवल बातों में ही हमारे उद्देश्य की पूर्ति क्या होनी चाहिए? बल्कि यह कि वास्तव में हमारे उद्देश्यों की पूर्त्ति कहा तक सम्भव है ? यह केवल मनमोदकों का प्रश्न नहीं है, भरसक योग्यता और साहस दिखाने तथा जाति के लिए तन, मन, धन समर्पण करने का है।

केनाडा में फ्रांसीसियों और दक्षिण अफ्रीका मे बोयरों के उदाहरणों स ज्ञात होता है कि ब्रिटिश सामाज्य की परिधि के भीतर भारतवर्ष को भी स्वाधीनता के विकास के लिए स्थान है। हमारे कई एक मित्र मार्ग की कठिनाइयों से भारी

आकर यह सोचते हैं कि वहां तक पहुंचना असम्भव और है, एक दूसरे नए मार्ग का अनुसरण कर रहे हैं जो पहले से भी अधिक कटकाकीर्ण है। वे लोग उनकी तरह हैं जो ऐसी विपत्ति से जिससे वे परिचित हैं, प्राण बचा कर उस विपत्ति की ओर भागते हैं जिससे वे अनजान हैं। ब्रिटिश साम्राज्य की छत्रछाया में स्वाधीनता का एक ऐसा मार्ग है जिससे हम परिचित हैं चाहे वह कितना ही कठिन क्यों न हो। इसके अतिरिक्त हमारे विचारों और प्रबन्धों में विघ्न पड़ सकता है। फिर हमारे इस उद्देश्य के साथ उन अंग्रेजों की सहानुभूति होगी, जो स्वाधीनता के समर्थक, विज्ञ और उच्च प्रकृति के आदमी हैं। और इसमें सन्देह नहीं कि इंगलैंड में ऐसे लोगों की पर्याप्त संख्या है। कहीं कहीं पर उनकी कूटनीति अवश्य ही खेद प्रकट करने योग्य है, वे अपनी टेढ़ी और तिरछी चालें सांसारिक मामलों को पार करने में अनिवार्य रीति से चला करते हैं तथापि इन सब बातों के होते हुए भी ब्रिटिश जाति का एक परमोत्तम गुण जो इतिहास के प्रत्येक पृष्ठ से झलकता है वह उनकी जातीय स्वतन्त्रता है। नैतिक स्वतन्त्रता के वे सदा ही पक्षपाती रहे हैं। यह मूर्खता है, सरासर उन्माद है कि इस झगड़े और मुकाबिले में जिसका हमें सामना करना है, हम उनकी सहायता से लाभ न उठावें।

मि० गोखले को यह देख कर प्रसन्नता हुई कि उस दल के एक नेता ने जो नया दल कहा जाता है, अपने समाचारपत्र के एक अङ्क में स्पष्ट रीति से लिखा है कि वह ब्रिटिश-छत्रछाया में स्वाधीनता प्राप्त करने पर सन्तुष्ट होने के लिए तैयार हैं। और वे इसके लिए प्रयत्न करना चाहते हैं। यह

अच्छी तरह प्रमाणित करके कि हमारे लिए ब्रिटिश छत्रछाया में ही स्वाधीनता प्राप्त करने का उद्देश्य सर्वोत्तम है, मि० गोखले ने उन नियमों और उपायों पर सबका ध्यान दिलाया जिनसे हम इस उद्देश्य में सफलता प्राप्त कर सकते हैं। आपने कहा कि इसके लिए मैं कोई सरल मार्ग नहीं बता सकता, भिन्न भिन्न उपायों में कठिन प्रयत्न की आवश्यकता है परन्तु एक बात हमें स्पष्ट समझ लेना चाहिये कि जिस दशा में हमारा उद्देश्य यह है, जिसका ऊपर उल्लेख किया गया, तो उसके प्रयत्न भी नैतिक समर की परिधि में परिमित रहना चाहिये।

प्राय यह प्रश्न किया जाता है कि नैतिक समर का क्या तात्पर्य है मैं इसका उत्तर देने की चेष्टा करूँगा। नैतिक समर उस समर को कहते हैं जिनके द्वारा हम कानूनी कठिनाइयों में परिवर्तन करा के अपना अभीष्ट प्राप्त करना चाहें, और उन उपायों का प्रयोग करें जिन के प्रयोग करने का स्वत्व हमें प्राप्त है। इस के अनुसार नैतिक समर का अर्थ बहुत विस्तृत होता है, परन्तु इसमें दो बातें मानना ज़रूरी है, प्रथम तो यह कि जिन उपायों का हम प्रयोग करें, उनके प्रयोग करने का हमें अधिकार हो। दूसरे यह कि जो परिवर्तन हम कराना चाहते हैं वह कानूनी फेरफार ही से प्राप्त किया जावे।

वे कौन से उपाय हैं जिन का हम उचित रीति से प्रयोग कर सकते हैं। पहली बात जो ध्यान में आती है, वह यह है कि इस समर में हाथापाई और शारीरिक शक्ति का कुछ काम नहीं—अर्थात् तीन बातें इस समर से भिन्न हैं, बागी हो जाना पापपूर्ण चालें चलना, किसी शत्रु के आक्रमण में सहायता

कैगा। इन तीन बातों के अतिरिक्त सब उपाय नैतिक समझ में परिगणित हैं। यद्यपि इसका यह तात्पर्य नहीं कि हर प्रत्येक नियम जो नैतिक और उचित हैं, वह आवश्यक भी है परन्तु यह दूसरा प्रश्न है। एक ओर तो अनुनय विनय करना, अपने कष्टों पर न्याय चाहना नैतिक लड़ाई में शामिल है और दूसरी ओर निष्क्रिय प्रतिरोध और टैक्स और करों को भी उस समय तक अदा न करना जब तक कि अभीष्ट आकांक्ष कनाएँ पूर्ण न हों। यदि इस ख्याल से देखा जाय तो अब तक हमारे देश में जो कुछ आन्दोलन हुआ उसमें नैतिक नियमों के विरुद्ध कोई बात न थी। यह बात दूसरी है कि कुछ लोगों ने अयुक्ति पूर्ण बात चीत की हो। रहा यह प्रश्न कि उचित और अनुचित क्या है? यह प्रश्न अत्याव श्यक है, तथापि इस पर फिर विचार होगा। दूसरी शर्त यह कि हमारे उद्देश्यों की पूर्ति कानूनी मशीन के द्वारा ही होना चाहिये अर्थात् इस पर लगातार ज़ोर डालने से इस विषय में यह स्पष्ट प्रकट होता है कि सरकार और सरकारी मामलों से कुछ सम्बन्ध न रखना चाहिये, यह राय सरासर अनु चित और अयोग्य है। यह ज़रूर है कि आप सरकार पर उतना ही ज़ोर और दबाव डाल सकेंगे जितना सर्वसाधारण की सम्मति और शक्ति में प्राबल्य होगा और इस सम्मति को शक्तिशाली बनाने का प्रश्न ही सब से आवश्यक प्रश्न है, तथापि यह विचार कि सर्वसाधारण को सरकार से कुछ सम्बन्ध रखना ही नहीं चाहिये और अपने भाग्य का फैसला अलग ही अलग से कर लेना चाहिये, सरासर मिथ्या और अनुचित है।

इसके बाद मि गोखले ने कहा कि लोग कभी कभी यह भी

बहुधा बातें किया करते हैं कि नैतिक समर हमारे देश में बिलकुल व्यर्थ साबित हुआ। यह उचित नहीं क्योंकि अभी तो आप ने वास्तविक नैतिक समर में कुछ भी उद्योग नहीं किया। इसमें सन्देह नहीं कि कांग्रेस ने २० वर्ष में भारतवर्ष में जातीयता पैदा करने का जो काम किया वह सर्वथा प्रशंसनीय है। हमें स्मरण रखना चाहिये कि यदि हम को अपनी पूर्व सम्पत्ति में कुछ वृद्धियां प्राप्त हुईं तो इसके साथ ही अनेक कष्ट भी उठाने पड़े। इन कष्टों को सहन करने के लिए हम सफलता के साथ प्रयत्न कर रहे हैं। कांग्रेस के काम ने हम में जातीयता पैदा की, हमारी आवश्यकताएं हमारे सामने रक्खीं, एकत्र हो कर काम करना सिखलाया, हम में सार्वजनिक जीवन के उत्तर दायित्व के भार को उठाने की आदत डालदी। इस में सन्देह नहीं कि हम ने पूरे साहस और सच्चे हृदय से जाति की सेवा की होती तो जितना काम हुआ उससे कहीं अधिक हो सकता था। परन्तु इसका उत्तरदायित्व सब पर एक समान है। और यह भी अनेकांश में सत्य है कि हर काम तभी होता है जब उसका समय आता है। गत २० वर्षों में भारत में ही नहीं बल्कि इंगलैंड में भी विरोध वायु के झोंके चलते रहे। अतएव यदि हम उन सुधारों को प्राप्त करने में सफल नहीं हुए, जो हम चाहते थे तो यह हमारे उपायों और प्रयत्नों का दोष नहीं। राजनैतिक स्वत्व खाली मांगने से ही नहीं मिल जाते हैं, अन्य जातियों को तो बड़े लम्बे चौड़े युद्धों के अनन्तर प्राप्त हुए हैं। यदि हम अपने प्रयत्नों का अनुमान करें और देखें कि कार्यरूप में उनका परिणाम क्या हुआ तो हमारे आन्दोलनों में शिष्टता का भाग तो बिलकुल नज़र से ओझल हो जाता है। उस बातचीत को सुनकर जो मेरे कुछ मित्र किया करते

हैं, कभी कभी मेरी ऐसी इच्छा होती है कि यदि यह थोड़ी बहुत स्वतन्त्रता भी जो हमें दूरदर्शी महानुभावों की बदौलत मिल गई, इस तरह न मिलती बल्कि इसके लिए भी हम को रक्त और पसीना एक करना पड़ता तो अच्छा होता। शासन के उच्च अधिकारियों में जिन पर हमें दबाव डालना है, अंग्रेज़ी शासकों के विषय में तो हमें समझ लेना चाहिये कि वे विरोध करेंगे, परन्तु इंगलैन्ड में भिन्न भिन्न दलों की दशा में गतवर्ष से जो अन्तर दिखाई दे रहा है, और स्वतन्त्रता और जातीयता का प्रभाव जो वर्तमान हौस आफ कामन्स और इंगलैंड निवासियों में इस वक्त पाया जाता है, उससे हमें सहायता की पूरी आशा रखनी चाहिये। हां इससे हम कहां तक लाभ उठा सकेंगे, यह हमारे प्रयत्नों पर निर्भर है। मेरा सदा ही यह ख्याल रहा है कि हमारे काम का १५/१६ भाग भारतवर्ष के भीतर ही है, जहां हमें अपनी जातीय शक्ति की वृद्धि करना है। परन्तु वर्तमान अवस्था में हमें इंगलैंड में भी जाकर उत्कट प्रयत्न करना है। यदि हम ब्रिटिश प्रजा को अपने दुःख दर्द का परिचय देते रहें तो हम यहां के शासकों पर एक प्रकार का दबाव रख सकेंगे जिस के कारण वे अपने अनुचित व्यवहारों से हमें पीड़ित न कर पावेंगे। इस के अतिरिक्त वैसे भी जातीय जीवन का भवन तैयार करने के लिए आरम्भ में हमको इंगलैंड की प्रजा से सहायता मिलेगी। उदाहरण के लिए प्रारम्भिक शिक्षा के प्रश्न को लीजिये। प्रारम्भिक शिक्षा को सारे भारत में फैलाने के लिए ७-८ करोड़ रुपये के खर्च की आवश्यकता होगी। यदि हम केवल यहां के शासकों पर ही भरोसा रक्खें, तो मुझे यह आशा नहीं कि यह शासक कभी भी शिक्षा के लिए इतने रुपये का व्यय स्वीकार करें। और न स्वयम् अपने

प्रबन्ध से यह बडा भारी काम पूरा पड सकता है। परन्तु यदि हम ब्रिटिश प्रजा—इंगलैंड की प्रजा—के द्वारा दबाव डलवाएं तो आशा है की हमारी इच्छा के अनुकूल परिणाम निकले।

कुछ काल से देश में यह वायु बह रही है कि व्यक्तिगत सुधारों की अवहेलना की जाती है, परन्तु हमें समझना चाहिये कि हम एक दम किसी विशेष परिवर्तन की चेष्टा करके सफल-मनोरथ न हो सकेंगे बल्कि क्रम क्रम से आगे बढ़ते हुए अभीष्ट स्थान पर जा पहुंचेंगे। हमें विरोधों के समूह को दूर करना है, फिर मार्ग से भी हम भली भांति परिचित नहीं। अतएव हमको अपनी विवशता से उकताना नहीं चाहिये, बल्कि हम में से प्रत्येक व्यक्ति को यह स्वीकार करना चाहिये कि हम अपनी आत्मशक्ति को प्रबल बनावें, यह हमारा मुख्य कार्य है। यह काम तीन बातों पर निर्भर है। पहले तो भारतवर्ष की विविध जातियों जैसे हिन्दुओं और मुसलमानों तथा हिन्दुओं के अन्तर्गत अनेक जातियों में परस्पर मेल मिलाप को दृढ बनाना चाहिये, फिर हमारी जाति के व्यक्तियों में वे उत्तम गुण होने चाहियें, जिनसे हम अपनी धुन के पक्के और कार्य के समय आज्ञाकारी सिपाहियों की भांति तैयार रहें। हम में जातीयता का भाव ऐसा होना चाहिये, जिस के आगे जाति पाति और मतमतान्तर के झगडे काफूर हो जाय। और देश के लिए प्राण अर्पण करने में ही सब से बडा आनन्द हो। इसके साथ ही सर्वसाधारण में राजनैतिक शिक्षा का भी प्रचार बढ़ता रहे। मि० गोखले ने कार्य के विविध भागों की कठिनाई पर जोर डालते हुए हिन्दू मुसलमानों के प्रश्न के विषय में कहा कि वास्तव में यह सब से अधिक उलझी हुई गांठ है परन्तु ऐसी नहीं जो सुल

झाई न जा सके। उच्च शिक्षा अपना काम कर रही है तथापि समय की अवस्था के अनुकूल हमें चाहिये कि सहानुभूति और सहनशीलता से अधिक काम लें। मुझे पूर्ण आशा है कि बहुत समय नहीं गुजरेगा जब उदार और देशभक्त मुसलमान द्वेषभाव को त्याग कर हर काम और हर बात में हमारे कन्धे से कन्धा मिलाते हुए देख पड़ेंगे।

अन्त में मि० गोखले ने नवीन शिक्षा की आलोचना की। आप ने कहा कि व्यर्थ विवाद में मैं नहीं पड़ना चाहता। जब हमसे कहा जाता है कि हम नए नियमों को स्वीकार करें, उन्हीं में हमारा कल्याण है तो हमको यह अधिकार है कि हम नए नियमों की भली भांति जांच पड़ताल करें। हमसे कहा जाता है कि हमको सरकार से कोई सम्बन्ध न रखना चाहिये और यदि हम केवल एक व्यापक बहिष्कार आरम्भ करदें तो हमारा कार्य सिद्ध हो जायगा। मि० गोखले ने पहले व्यापार सम्बन्धी बहिष्कार पर ध्यान दिलाते हुए कहा कि वह लोग जो व्यापारी बहिष्कार के पक्षपाती हैं और सारे विदेशी मालों का बहिष्कार करना चाहते हैं, वास्तव में उनका यह तात्पर्य होता है कि स्वदेशी वस्तुओं के व्यवहार का प्रचार होना चाहिये, चाहे ऐसा करने में कितना ही कष्ट और अधिक आर्थिक व्यय क्यों न हो। इसमें कोई सन्देह नहीं कि स्वदेशी आन्दोलन को लाभ पहुंचाने का एक यह भी उपाय है। आर सर्व साधारण के लिये, जिनकी आवश्यकताएं बहुत कम होती हैं, और जो नये नये उद्यमों में अधिक रुपया नहीं लगा सकते हैं, स्वदेशी आन्दोलन से सहायता पहुंचाने का केवल यही एक उपाय है। इस उपाय से जो माल देश में बनाया जाता है उसकी बिक्री का प्रबन्ध हो

जाता है। और नए उद्योग और शिल्पकारियों के आरम्भ करने में उत्तेजना मिलती है। जिससे आरम्भ में नए उद्योग और शिल्प को प्रतियोगिता करने में सुविधा होती है। यह सब स्वदेशी आन्दोलन के भाग हैं। इनका अर्थ यह नहीं कि हम केवल कथन मात्र ही से स्वदेशी उद्योग की उन्नति चाहते हैं बल्कि प्रत्येक व्यक्ति अपनी स्थिति के अनुसार सहायता करके स्वदेशी वाणिज्य को उन्नत करने का पक्षपाती है। हाँ, बहिष्कार का शब्द इस विषय में कुछ खटकने वाला है क्योंकि बहिष्कार से बदला लेने का अर्थ प्रकट होता है जिसमें दूसरों को हानि पहुचाना मुख्य उद्देश्य होता है, चाहे ऐसा करने में स्वयम् अपने ही को हानि पहुचे। इसी लिये स्वदेशी आन्दोलन के विरुद्ध बहुत कुछ अनावश्यक विरोध लोगों में पैदा हो गया है। और हमारे मार्ग में इस कारण से कुछ अनावश्यक बाधाएँ आ गई हैं। स्वदेशी आन्दोलन में सफलता प्राप्त करना कोई सरल काम नहीं, उसके लिये हमें हर तरफ से सहायता प्राप्त करने की आवश्यकता है। आप ने इसका उदाहरण दिया कि हाल में बम्बई की गवर्नमेन्ट ने अनुभव के लिये सिन्ध में मिसर की रुई का प्रचार किया है, उससे बहुत कुछ उन्नति की आशा है। प्रत्येक दशा में आप ने कहा कि इस प्रश्न के इस भाग पर विशेष जोर मैं नहीं दिया चाहता। मेरे कथन का सिर्फ यह तात्पर्य है कि हमको अपनी मण्डियों में से बाहर के माल को (जो वर्त्तमान में लगभग १०० करोड का आता है।) कतई निकाल कर बाहर कर देने के लिये बहुत समय की आवश्यकता है। और यदि यह उद्देश्य पूर्ण रूप से सिद्ध भी हो गया तो वह हमारे उपायों और साधनों में भले ही वृद्धि करदे पर हमारी वर्त्तमान शासित

अवस्था में उससे कोई विशेष अन्तर नहीं आ सकेगा। यह सम्भव है कि कुछ दशाओं में वह हमारी शासित अवस्था को और भी अधिक सख्त और असहनीय बना दे।

इसके बाद मि० गोखले ने साधारण या राजनैतिक बहिष्कार की ओर, लक्ष्य रखते हुए, जिसका कुछ लोग उपदेश दे रहे हैं, कहा कि यह बात विचार में लाने के सर्वथा अयोग्य है कि कोई मनुष्य यह समझे कि देश की वर्त्तमान अवस्था में राजनैतिक बहिष्कार का प्रयोग करना उचित है। अपनी निज की पूंजी से सारे देश में जातीय पाठशालाओं, और कालेजों को पर्य्याप्त सख्या में स्थापित करने के लिये एक जमाना चाहिये, इसके अतिरिक्त इसके लिये उच्च उदारता से काम लेना पडेगा। इसके पहले कि हम इस ओर कुछ कर के दिखलाए, वर्त्तमान स्कूलों का बहिष्कार कर देना सरासर उन्माद है। यह बात भी ध्यान देने योग्य है कि जातीय शिक्षा के बुद्धिमान पक्षपाती यह नहीं कहते कि वर्त्तमान स्कूलों को लात मार दो, बल्कि जातीय शिक्षा के विषय मे वे गवर्नमेन्ट का हाथ बंटाना चाहते हैं। इसमें सन्देह नहीं कि वर्त्तमान शिक्षा प्रणाली मे अनेक दोष हं परन्तु इससे बहुत कुछ लाभ भी पहुचा है और पहुच रहा है, और जातीयता की जान जो इस वक्त भारतवर्ष के शरीर में पडी हुई दिखाई देती है वह इसी वर्त्तमान शिक्षा का फल है।

सरकारी नौकरियों के बहिष्कार का उल्लेख करते हुए आपने कहा कि मैं स्वयम् प्रसन्न हूगा कि सरकारी नौकरियों के प्राप्त करने के लिए हमारे नवयुवकों में जो अभिलाषाए रहा करती है वे समाप्त हो जाय। या कम से कम हमारे —

युवकों की एक बड़ी संख्या स्वतन्त्रता पूर्वक जीवन बिता का निश्चय करले। यदि ऐसा हो तो स्वदेश का काम करने वालों की संख्या में वृद्धि होगी। मैं स्वयम् कुछ दिनों से बरा बर यह कह रहा हूँ कि उनमें से कुछ नवयुवक जो प्रति वर्ष यूनी वरसिटियों से निकलते हैं, ऐसे होते कि अपने व्यक्तिगत मान सम्मान का ख्याल परित्याग करके उदारता के साथ जाति की सेवा करने पर कटिबद्ध होते। परन्तु वर्तमान अवस्था में सरकारी नौकरियों का एक दम बहिष्कार करना उपहासमात्र है। गवर्नमेन्ट पर बहिष्कार का प्रभाव उस समय पड़ सकता है जब इतने आदमी गवर्नमेन्ट को न मिल सकें जितनों की उसे कार्य संचालन के लिए जरूरत है। मैं नम्रता पूर्वक यह निवेदन करूंगा कि इस विचार को कार्य रूप में परिणत करना सर्वथा अयोग्य है। अन्त में सम्मानित पदों के बहिष्कार का प्रश्न है जैसे म्युनिस्पल बोर्ड और कौंसिलों की मेम्बरी। यदि वर्तमान मेम्बर आज पदत्याग कर दें तो दूसरे ही दिन मालूम हो जायगा कि उनके स्थान पर दूसरे आ डटे और उन्होंने उस अवसर को जो उन्हें जाति सेवा के लिए प्राप्त था, हाथ से खो दिया। आवश्यकता इस बात की है कि साम्राज्य के प्रबन्ध में नाममात्र के लिए, जो अधिकार हमें प्राप्त हैं उन्हें क्रमशः बढ़ान की कोशिश करें, और अधिक अधिकार जमायें। इसके विरुद्ध यदि उक्त उपाय के अनुसार कार्य किया जावे। तो लाभ के बजाय हम देश की उन्नति की ओर भी हानि पहुंचावेंगे। हमारे सार्व जनिक जीवन के मूल को हिलाने की जो कोशिश की जा रही है, उसका विरोध करना हमारे लिए परमावश्यक है। जो लोग इस तरह के बहिष्कार के पक्षपाती हैं, और जो सोचते

हैं कि स्वराज्य प्राप्त करने का केवल यही एक उपाय है, उन के सामने मैं एक प्रस्ताव पेश करता हूँ, महसूलों का अदा न करना बहिष्कार का सब से अधिक प्रभावशाली और सीधा सादा नियम है, इसमें विशेष गुण यह है कि प्रत्येक पुरुष को अपनी कार्य नीति के परिणामों के उत्तरदायित्व का भली भाँति अनुभव हो जाता है। यदि उन लोगों में से कुछ, जो निष्क्रिय प्रतिरोध के द्वारा वर्तमान-अवस्था में स्वराज्य प्राप्त करने का दावा रखते हैं निष्क्रिय प्रतिरोध की रीति का उपयोग करें तो उन्हें भली भाँति ज्ञात हो जायगा कि वह कितने गहरे पानी में है और कहा तक उन्हें इनसे सहायता मिलती है।

अपने व्याख्यान को समाप्त करते हुए जो १½ घन्टे से हो रहा था, मि० गोखले ने अपने देशवासियों को छोटी मोटी विभिन्नताओं को दूर कर देने और सच्चे हृदय से देश की सेवा करने के लिए उत्तेजना दिलाई। आपने कहा कि जरा जरा से तुच्छ अन्तरों के कारण दलबन्दी करके लडना झगडना उचित नहीं। अन्त में प्रारब्ध ही हमारे परिणाम को बनाता और बिगाडता है। हम तो उसके हाथ में केवल आवाज की तरह हैं। वह प्रत्येक व्यक्ति जो देश में मेल मिलाप की जड को दृढ बनाता है, स्वदेशी आन्दोलन का उपदेश देता है उदारता आदि सद्गुणों का अनुसरण करता है, अथवा व्यवसायिक, राजनैतिक सामाजिक, इत्यादि किसी तरह से भी जातीय शक्ति की वृद्धि करता है, वह अपना बन्धु और सहायक है। हमारे सामने जो सग्राम है वह बहुत बडा और थकाने वाला प्रमाणित होगा। और यद्यपि इस का खयाल चाहिये कि हमारा उत्साह और जोश हर समय ताजा रहे, तथापि आवश्यकता से अधिक असतोष काम बिगाड देगा। जातीयता के भवन का निर्म्माण

कहीं भी सरल काम नहीं, विशेषत भारत वर्ष में तो ऐसी कठिनाइयाँ हैं जो वास्तव में साहस छुडाने वाली है, और जो बिना हमारी पूरी योग्यता और विज्ञता के किसी भाँति तै हो ही नही, सकतीं। हमें क्षणमात्र के लिए भी यह नहीं भूलना चाहिये कि हम वर्तमान में देशोन्नति की अवस्था के उस स्थान पर हैं जहा सफलताएं बहुत कम और असफलता और निराशाए अधिक हैं। जो हमें हैरान करेंगी। इस संग्राम में सर्वशक्तिमान ने जो पद हमें प्रदान किया है वह यही है। और हमारा उत्तरदायित्व वहा पर समाप्त हो जाता है जब हम अपने पद के अनुकूल कार्य करके सर का भार उतार डालें।

भावी पीढियों का यह सौभाग्य होगा कि वह सफलता और विजय के साथ देश की सेवा करेंगी। वर्तमान पीढ़ी के लोगों को सिर्फ इसी पर संतोष करना चाहिये कि उन्होंने भी देश की सेवा की, भलेही वे असफल रहे हों। चाहे यह अच्छा न मालूम हो परन्तु अन्त में, इन्ही असफलताओं से जातीय शक्ति मे वृद्धि होगी और यही शक्ति आगे चलकर बडे बडे संग्रामों में विजय प्राप्त करेगी।

हिन्दू मुसलमानों का मेल।



४ जुलाई सन् १६०६ को एक सार्वजनिक सभा में जो दक्षिण सभा, पूना, के प्रबंध से हुई थी, माननीय गोखले जी ने निम्न लिखित व्याख्यान महाराष्ट्रभाषा में दिया था —

अबतक जो हिन्दू मुसलमानों के भेद सर्व साधारण के सामने आते थे, उनका कारण प्राय धर्मभाव ही होता था, यद्यपि ये भेद बहुत दुखदायी हुआ करते थे। उदाहरण के लिये गोवध या त्योहारों पर जलूस निकालने और बाजा बजाने के झगड़ों का ही वर्णन काफी है। इसमें संदेह नहीं कि कभी कभी समाचारपत्रों और मुसलमानों की सभाओं में पढ़े हुए व्याख्यानों में इस प्रकार की शिकायत हुआ करती थी कि सरकारी नौकरियों स्थानिक संस्थाओं, और म्यूनिसिपल बोर्डों में मुसलमानों को काफी हिस्सा नहीं मिलता। परन्तु शासन और राजकार्य में मुसलमानी जाति को विशेष सुविधाए दिलवाने के लिए मुसलमानी नेताओं की ऐसी चेष्टा, जिसका नियमानुसार संगठन हो और जिसका कार्यक्रम स्पष्ट हो, अभी दो तीन वर्षों से ही आरम्भ हुई है। यद्यपि बरसों राजनैतिक मामलों से अलग रह कर और उनकी उपेक्षा करके अब हमारे मुसलमान भाइयों का उनमें भाग लेना ऐसा काम है जिसपर उनको बधाई दी जा

सके, तो भी मुसलमानों का अपनी एक अलग सभा बनाना और विशेष सुविधाओं का मांगना हमारे सार्वजनिक जीवन की बढती हुई कठिनाइयों को घटायेगा नहीं।

इसके बाद माननीय गोखले ने हिन्दू और मुसलमानों के पुराने इतिहास तथा समार की सभ्यता और उन्नति की वृद्धि के लिये दोनों जातियों की कोशिशों का जिक्र करके उनकी वर्त्तमान दशा पर विचार करना आरम्भ किया।

भारतवासियों का पांचवां हिस्सा मुसलमान हैं, जो भिन्न २ प्रान्तों में, कहीं कम और कहीं जियादा फैले हुए हैं। पंजाब और पूर्वी बंगाल * में उनकी संख्या बहुत अधिक है। पंजाब में वह आधे के लगभग हैं। पूर्वी बंगाल में $\frac{2}{3}$ के लगभग है। इसके विरुद्ध बम्बई में केवल $\frac{1}{5}$ मुसलमान हैं और पश्चिमी बंगाल में $\frac{1}{5}$। संयुक्त प्रांत में उनकी संख्या $\frac{1}{7}$ है, मद्रास और मध्यप्रदेश में $\frac{1}{15}$ है और $\frac{1}{20}$। हिन्दू और मुसलमानों का बहुत बड़ा भाग एक ही पूर्वजों की संतान है, परन्तु स्मरण रखना चाहिये कि हमारे जीवन पर धर्म का बहुत बड़ा प्रभाव पड़ता है और कभी २ जातीय वंश-परंपरा की आदतों को बहुत कुछ बदल भी देता है, हिन्दुओं की संख्या शिक्षा, धन और सार्वजनिक हित के भाव मुसलमानों की अपेक्षा इससमय अधिक हैं। भारतवर्ष में जातीयता के भाव उत्पन्न करने में भी हिन्दुओं ने मुसलमानों की अपेक्षा अधिक

* स्मरण रहे कि सन् १९०६ में, जब यह व्याख्यान दिया गया था, पूर्वीय बंगाल एक भिन्न प्रांत था। सन् १९११ में उसका वर्तमान बंगाल प्रांत में समावेश हो गया, अनु०।

भाग लिया है, परन्तु जाति पाति के बंधन हिन्दुओं के मार्ग में बड़ी रुकावटें डाल रहे हैं, आचरणों के विचार से भी वे नम्र स्वभाव के और दब्बू हैं। इसके विरुद्ध मुसलमानों में इतने भेद और श्रेणियां नहीं हैं, उनकी सामाजिक व्यवस्था सर्व साधारण की प्रधानता पर स्थिर है उनमें आपस में मेल अधिक है और वे ज़ियादा मुस्तैद होते हैं। वास्तव में कठिनाई यह है कि हिन्दू और मुसलमानों में विरोध तथा शत्रुता की जनश्रुति सारे भारत में फैली हुई है। साधारण तौर पर वह दबी पड़ी रहती है, पर ज़रा सी भी उत्तेजना मिलने से उग्र हो उठती है। हम को इन पुरानी जनश्रुतियों पर विजय प्राप्त करना है। यद्यपि हमारे मार्ग में कुछ कठिनाइयां हैं और कभी २ उद्दिष्ट स्थान तक पहुंचना असम्भव मालूम होता है, पर वास्तव में ऐसा नहीं है। यूरोप में भी तो २०० वर्ष तक प्रोटेस्टेंट और कैथेलिक सम्प्रदायों की आपस में घोर शत्रुता रही है, शिक्षा का प्रचार, राजनैतिक कर्तव्यों का ज्ञान जातीय गौरव और जातीय भावों की बलवृद्धि ऐसी शक्तियां हैं, जो अन्त में दोनों जातियों की पुरानी दुखमयी स्मृति को धीरे धीरे बिलकुल लोप कर देंगी, निस्सन्देह उन्नति धीरे २ होगी। और कभी २ आगे बढ़ कर पीछे भी हटना पड़ेगा परन्तु हमें अपनी भारी सफलता का पूर्ण विश्वास रखना चाहिये। और सब प्रकार की कठिनाइयां पड़ने पर भी हम को दृढ़ रहना चाहिये। हमारी राजनीति की यह साधारण कहावत है कि भारतीय जाति का भविष्य उस समय तक अंधकारमय रहेगा जब तक दोनों जातियों के सार्वजनिक मामलों में एकता और मेल के भाव दृढ़ न हो जाय। आप एक दूसरे से कितने ही अप्रसन्न क्यों न हों, पर उपर्युक्त कथन की सत्यता से

कभी इन्कार नहीं कर सकते। हम में से कुछ लोग हिन्दू और मुसलमानों में मेल कराना अपना कर्तव्य समझते हैं उनके लिए इसके सिवाय और कोई ढंग नहीं है कि वे यथा शक्ति ऐसी झगडालू बहसों से बिलकुल दूर रहें, जो दोनों जातियों में द्वेष पैदा करती हैं। उन्हें स्वयं भी सहनशीलता की आदत डालना चाहिये और दूसरों को भी ऐसी ही सम्मति देना चाहिये।

माननीय गोखले ने कहा कि इस मामले में हिन्दुओं पर विशेष दायित्व है, क्योंकि शिक्षा के विचार से यह दूसरी जाति से आगे बढ़े हुए हैं। और इसी कारण से ये जातीयता की बढ़ती हुई आवश्यकताओं को जियादा अच्छी तरह समझ सकते हैं। यदि कुछ सज्जन मुसलमानों ही की शिक्षा तथा, उन्हीं के हितार्थ अन्य कार्यों के लिए अपना जीवन समर्पित कर दें, तो सन्देह नहीं कि दोनों जातियों में मेल की मात्रा बढ़ने लगेगी। सम्भव नहीं कि धीरे २ इस कार्य का आदर न हो, वरन् वर्तमान अविश्वास और पार्थक्य की जगह पर परस्पर सहनशीलता और विश्वास के प्रचार होने में भी उपर्युक्त कार्य से बहुत कुछ सहायता मिलेगी—

इस प्रकार विषय के सामान्य अंश पर विचारों को प्रगट करने के बाद माननीय गोखले ने उस बहस के सम्बन्ध में कथन आरम्भ किया जो पिछले ६ महीने से चल रही थी। आपने कहा कि उत्तेजना का एक बड़ा कारण तो यह है कि जन साधारण ने नये सुधारों की असलियत और विस्तार के समझने में भूल की है। आपने इस विषय में अपनी सम्मति का स्पष्ट वर्णन किया। उन्होंने कहा कि कम संख्या वाली

जातियों को प्रतिनिधि भेजने और पृथक् निर्वाचन करने के अधिकार देने के पक्ष में मैं सदा रहा हूँ। परन्तु मेरी सम्मति है कि जिन स्थानों की कोई विशेष जाति अधिकारिणी हो, उनकी पूर्ति अलग चुनाव से न होना चाहिये बल्कि पृथक् निर्वाचन मे केवल वह कमी पूरी होनी चाहिये जो सर्वसाधारण द्वारा चुनाव में बाकी रह गई है। अर्थात् यदि किसी जाति के प्रतिनिधियों की एक विशेष संख्या नियत हो, तो पहले सर्वसाधारण द्वारा चुनाव हो। इस चुनाव मे उस जाति का भाग होगा ही। यदि पूरा चुनाव हो चुकने पर प्रतिनिधियों की नियत संख्या उस जाति की नहीं है जिसे विशेष अधिकार मिले हैं, तो इस कमी को केवल वह जाति ही प्रतिनिधि चुन कर पूरा करेगी। इसी के साथ ही मै मुसल्मानों के सिवाय अन्य थोड़ी संख्या वाली जातियों को भी आवश्यकता पड़ने पर यही अधिकार मिलने के पक्ष में रहा हूं। देश की भावी भलाई और सार्वजनिक जीवन के विकास के लिये परम आवश्यक है कि पहले सर्व साधारण द्वारा चुनाव हुआ करे, जिसमें धर्म और सम्प्रदाय का विचार छोड़ सब जातियां एक ही प्रकार से भाग लें। पर यदि कोई थोड़ी संख्या वाली जाति ऐसी रह जाय जिसे सर्व साधारण के चुनाव में अपना उचित और पूरा हिस्सा न मिल सका हो, तो उसे अपने प्रतिनिधियों की संख्या पूरी करने के लिये अलग और विशेष चुनाव करने का अधिकार होना चाहिये। मैंने पिछले मार्च के महीने में यही विचार बड़ी व्यवस्थापक सभा में प्रकट किये थे। यद्यपि हिन्दू और मुसल्मान दोनों ही ने मुझे बुरा भला कहा तो भी मैं अभी तक अपनी पहिली सम्मति पर स्थिर हूं। अर्थात् देश की

मैं उस समय जब मैं इस पद पर नियुक्त हुआ था मद्रास आसका। परन्तु यह अच्छा ही हुआ क्योंकि उस समय ऐसी न थी कि जो लोग बाहर से आते, वे कुछ परिवर्तन अनुभव करते। अब मैं उस परिवर्तन पर लम्य रख आया हूँ और आशा करता हूँ कि यहा मैं अपने मित्रों से पर सर्म्प कर सकूंगा। मुझे खेद है कि मैं अवकाश की न्यूनता के कारण उन स्थानों पर न जा सकूंगा, जहां पर लोगों ने बड़ी कृपापूर्वक मुझे निमन्त्रण दिया है और जहां मैं स्वयम जाना पसन्द करता। परन्तु मैं आशा करता हूं कि ऐसा अवसर फिर मिलेगा, जब मैं इस प्रान्त में लम्बा प्रवास कर सकूंगा। बल्कि यों कहिये कि मैं नेशनल कांग्रेस के भाग्य के साथ ही साथ डोलता फिरता हूँ। मेरे सार्वजनिक जीवन और कांग्रेस की आयु एक ही साथ आरम्भ होती है। गत कुछ वर्षों में मुझे भारतवर्ष के भिन्न २ प्रान्तों की घटनाओं और विचारों से परिचित होने का सुअवसर मिला है और मैंने एक बात निश्चय रूप से देखी है, वह यह है कि भिन्न २ पत्रों और नेताओं के व्याख्यानों से तथा राजनैतिक आन्दोलन विषयक साधारण बातचीत में मैं निराशा की एक सूक्ष्म रेखा बराबर देखता हूँ। ऐसा तो ज़ होता है कि राष्ट्रीय विचारकों के दिमाग में एक प्रकार की निराशा घुसती जाती है। जनता खुले खजाने अब पूछने लगी है कि कांग्रेस ने इन उन्नीस वर्षों में क्या किया? कोई इसी प्रश्न को फेर कर यों पूछते हैं कि क्या कांग्रेस इसी प्रकार काम करके कुछ वास्तविक लाभ पहुंचा सकेगी? कुछ लोग तो ऐसे हैं जो और भी बढ़कर उस राजनैतिक आन्दोलन को जिसमें हमलोग लगे हुए हैं, निरर्थक बतलाने का उद्योग करते हैं। उनका कथन है कि

ससार के इतिहास में एक भी ऐसा उदाहरण देखने में नहीं आता जिसम हम लोगों के राजनैतिक आन्दोलन के समान कोई भी उद्योग, आन्दोलनकारियों को कुछ भी लाभ पहुचा सका हो, उन लोगों का यह उद्देश है कि राजनैतिक झगड़ों को छोड़ यदि औद्योगिक आन्दोलन किया जाय तो देश को विशेष लाभ होने की सम्भावना है। इन बातों से आप कुछ भी परिणाम निकालें, पर इतना निश्चय है कि हमलोगों के नेताओं और कार्यकर्ताओं का विश्वास शन २ परन्तु निश्चय रूप से राज नैतिक आन्दोलनों की ओर से खिंच रहा है।

अब यदि इस नैराश्य का कोई वास्तविक कारण है तब तो भविष्य अवश्य ही अन्धकारमय समझना चाहिये। परन्तु मैं प्रश्न करता हूँ कि क्या सचमुच ही यह न्यायसगत है? यह प्रश्न मैं आप लोगों से उसी प्रकार करता हू जैसे मैं कभी अपने आप से हताश होने पर किया करता हू। यह प्रश्न तभी हल होगा जब आप धीर और निरुद्वेग होकर इसकी मीमांसा करेंगे। इसमें आपको दो तीन बातें अपने आप से पूछनी होंगी। पहिली बात यह है कि राजनैतिक चर्चा चलानेवाले जन्मदाताओं का क्या विचार और मन्तव्य था? उनके हृदय को उथल पुथल करनेवाली आशाएं और लालसाएं कौन २ सी थीं? दूसरी बात विचार करने के योग्य उस समय की अवस्था है जिस समय इन राजनैतिक विचारों का जन्म हुआ था, तथा अन्त में यह देखना होगा कि इस समय कैसी अवस्थाओं में इस काम को करना होगा तथा उस समय से आज की अवस्था में क्या २ फेर बदल हुआ है। इन प्रश्नों को आप पहले हल कर लेवें, इन्हीं के द्वारा आप अपनी राज नैतिक स्थिति का ज्ञान भी प्राप्त कर सकेंगे।

पहले प्रश्न, अर्थात् राजनैतिक विचारों के जन्मदाताओं के क्या २ विचार थे? उनकी आशाएं और लालसाएं क्या थीं?—का उत्तर अधिक नहीं ढूंढना होगा। उन महापुरुषों का उद्देश्य शासकों और प्रजा के बीच में वकालत करने का था अर्थात् शासकों के विचारों को प्रजा पर विदित कर देने तथा प्रजा के कष्टों की पुकार को शासकों के कानों तक पहुंचा देने ही का था। राजनैतिक आन्दोलन का यह पहिला भाग है और यह न्यूनाधिक सफलता के साथ सम्पादित भी हो रहा है तथापि मैं यह अवश्य ही कहूंगा कि इसमें अभी, उन्नति करने का मैदान खाली है। परन्तु इससे भी ऊपर उनका उद्देश्य उन जटिल प्रश्नों को हल करने का था जिस पर हम लोगों के देश का भविष्य निर्भर है। उनकी लालसाएं थीं कि वह हानिकारक नीति और कायदे कानून जिनके कारण हमारी पूरी उन्नति नहीं होने पाती, दूर करें और ब्रिटिश प्रजा के पूरे स्वत्वों को जो इस समय केवल नाम के लिये हमें मिले हैं, प्राप्त करें। यही हमारे राजनैतिक आन्दोलन का दूसरा परन्तु सर्वश्रेष्ठ भाग है। इसी प्रश्न के साथ अड़चन खड़ी होती है, और वे विचार जो प्रायः राजनैतिक सफलता के विषय में सुनने में आते हैं, इसी प्रश्न के अन्तर्गत हैं।

सज्जनो! अब हम लोग दूसरे प्रश्न पर विचार करें, जिस समय यह कार्य आरम्भ होनेवाला था उस समय की अवस्था क्या थी और हमारे पूर्व कार्यकर्त्ताओं को किन २ अवस्थाओं का अनुभव करना पड़ा था और हम लोगों को, जो उनके कार्य को आज कर रहे हैं क्या अनुभव करना है? हम लोगों की एक ओर जातीय उन्नति, अनन्य अधिकार और सत्ता, दूसरी ओर भयानक अविद्या, प्लेग, और अशिक्षा का

दलदल है। इन दोनों असमान शक्तियों के बीच में हम लोगों को कार्य करना है, हमें इन शक्तियों का सामना करना है और उन शक्तियों को जो हम लोगों के विरुद्ध जमी हैं, उन पर विजय पाना है तथा जल्दीजल्दी किसी प्रकार उस बड़े जन समूह को जो सो रहा है, जाग्रत करके कार्यक्षेत्र में उत्साह पूर्वक प्रवृत्त कराना है। सज्जनो! आप स्वयं विचारें कि यह कैसा दुष्कर काम है। हम लोगों को इस बात की आशा करने का कोई कारण नहीं कि एकाधिकार का दुर्गम दुर्ग पहले ही धक्के में टूट जायगा। अब यदि इस हार से हम लोग निराश हो बैठें तो यह हमारा ही दोष है और किसी का नहीं। सज्जनो! स्मरण रहे कि जिन लोगों से हमें सामना करना है, और जिनके हाथ में अधिकार की अविच्छिन्न बाग-डोर है, शासन की पूरी शक्ति उनकी सहायक है। अस्तु, इसके स्वीकार करने में कोई लज्जा नहीं कि हमारा सामना करनेवाले चुने हुए शिष्ट पुरुष हैं, और उन लोगों के व्यक्तिगत गुण हमसे कहीं बढ़े चढ़े हैं, उनका कर्तव्य, देशप्रेम, राज भक्ति, सम्मिलित होकर कार्य करने की शक्ति और कानून की पाबन्दी इत्यादि गुण अतुलनीय हैं। वे जानते हैं कि अपने स्वत्वों को प्राप्त करने के लिए किस प्रकार उद्योग करना चाहिये। हम उनके वास्तविक गुणों के स्वीकार करने में लज्जा नहीं। बल्कि यदि हम लोग राजनैतिक कार्यों के सच्चे सद्गुणों को जानते हैं तो आज ऐसे प्रतिरोधियों को पाकर हम अपने को धन्य मानते हैं। हम लोगों को इस बात पर प्रसन्नता प्रगट करनी चाहिये कि हमारे सामना करनेवाले ऐसे गुणों से भर पूरे हैं। निराश होने के बदले हम लोगों को अपनी हार पर प्रसन्न होना चाहिये और सौभाग्य समझना चाहिये

कि हमें ऐसे विरोधियों से सामना करना है, और ईश्वर की कृपा समझना चाहिये कि हम लोगों को सामना करने के लिए ऐसे शक्तिवानों से काम पड़ा जिनसे सामना करके हम भविष्य में दृढ़ और बलवान बन सकते हैं। उस बड़ी जनता को जिसका जिक्र मैंने ऊपर किया है और जो दूसरे दल में शामिल है, उत्तेजित करना, जीवन देना और अपने साथ लेचलना अत्यन्त कठिन काम है। अतएव यह काम निःसंशय शनैः २ होगा ही, और ऐसा ही हो भी रहा है। मेरा असल मतलब इन दो दलों के वर्णन करने से यह है कि जिसमें आप लोग इस कार्य की गुरुता और दुःसाध्यता को समझ लें और देखलें कि हम लोगों को कितनी कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है। मैं चाहता हूँ कि आप लोग इस कठिनता का भली प्रकार अनुभव करलें, और अपने उद्योग की माप करें कि कितना कार्य करने पर कितनी सफलता प्राप्त होती है, तब मैं विश्वास करता हूँ कि आप निराश न होकर कार्य करेंगे और उन बातों पर जो आप इसके विषय में सुना करते हैं, ध्यान न देकर कार्य-साधन में तत्पर रहेंगे।

महाशयो! ध्यान रहे कि कांग्रेस केवल गत उन्नीस वर्षों से ही काम कर रही है। परन्तु यदि आप अपने कामों की गणना करेंगे, जो मेरे समझ में अपेक्षित दर्जे से कहीं कम है और साथ ही उनके फलों का विचार करेंगे तो मुझे आशा है कि आपको हताश होने का कोई कारण नहीं रह जायगा। प्रश्न यह है कि इन १९ वर्षों में क्या सफलता हुई? यदि आप अपने नेत्रों को अपनी सफलता की ओर फेरेंगे तो देखेंगे कि कुछ सफलता तो ऐसी हुई है, जिसको भूल जाना असम्भव है। हम

लोगों का पहला आन्दोलन सिविल-सर्विस की परीक्षा में उमर को बढाने के विषय में था और हम लोगों के प्रयत्नों से उमर १८ वर्ष के बजाय २३ वर्ष की गई। हम लोगों का दूसरा आन्दोलन लेजिसलेटिव कौंसिल के हकों को बढाने का था, और हम लोग इसमें भी सफलमनोरथ हुए। हम लोगों की कौन्सिलें अब १६, १७ वर्ष पूर्व की कौन्सिलें नहीं रहीं। अब इन के विचार परिपक्व और पूर्णरूप से होते हैं, हां इसमें सन्देह नहीं कि अभी बहुत कुछ उन्नति इसमें हो सकती है और हम लोगों को काम करने की जगह भी है परन्तु कुछ नहीं से कुछ होना ही अच्छा है।

महाशयो, यह काम बिलकुल ऐसे नहीं कि जो गिनती के योग्य न हों। दूसरी बात देखिये कि हम १५ या २० वर्षों के भीतर देश के प्रेसों की उन्नति के दृढ कारण होरहे हैं, ये बातें पहले कदापि नहीं थीं। आज एक समाचारपत्र दूसरे के साथ मिलकर देश की उन्नति में भारी सहायता पहुंचा रहा है। आपके प्रस्ताव जो कांग्रेस में पास होते हैं, जनता के हाथों में पहुंचकर निरन्तर शासकों पर दबाव डाला करते हैं और सर्वसाधारण भी उन्हें इन समाचारपत्रों के कालमों में पढ कर समझ लेते हैं। कांग्रेस के राजनैतिक आन्दोलन प्रतिदिन इन प्रेसों के द्वारा चारों ओर फैलाए जारहे हैं। प्रेसों को यह स्वत्व भी कांग्रेस के द्वारा ही मिला है। और भी देखिये कि देश के भिन्न भिन्न प्रान्तों के मनुष्य एक दूसरे से मिलेजुले मालूम होते हैं। अब हम लोग एकही राष्ट्रीय विचारों से भरे दीख पडते हैं। एकही निराशा और सफलता अब हम लोगों को एकही साथ रुलाती और हंसाती है। संक्षेप में इन लक्षणों का अर्थ यह है कि अब राष्ट्रीयता बढ रही है। इन कुल बातों

का श्रेय कांग्रेस को ही है। पन्द्रह सोलह वर्षों में इतने कम उद्योग पर भी इतना काम करना क्या कम है? भाइयो! मेरे विचार मे तो राजनैतिक विषय में निराश होने की कोई बात ही नहीं।

परन्तु मै इस बात को भी नहीं भूल सकता कि इधर कुछ दिनों से राजनैतिक आन्दोलनों में अड़चनें बढ़ गई हैं। कांग्रेस की नींव जमजाने के कारण प्रान्तिक राजनैतिक सम्मेलनों पर धक्का पहुंचा है। कांग्रेस होने के कारण अनेक सार्वजनिक गूढ़ समस्याएं भी प्रान्तिक हो चली हैं। राजनीतिज्ञ लोग पहले के समान प्रान्तिक विषयों में ध्यान नहीं देते। इन बातों को मै मुक्तकण्ठ से अवश्य स्वीकार करूंगा। और साथ ही साथ एक बात और देखने में आती है वह यह है कि हमारे प्रतिरोधियों में एकता और भी बढ़गई है और हमारी बातों का प्रतिवाद अब और जोरों से होने लगा है। कांग्रेस के पहले अंग्रेज लोग प्राय हमारी लालसाओं के साथ बाह्य सहानुभूति दिखला दिया करते थे परन्तु अब, जब उन लोगों ने देखा है कि हम लोग मिलजुल कर अपने अभीष्ट के लिये उद्योग कर रहे हैं, तब से कुछ इने गिने ही अंग्रेज हम लोगों का हाथ बटाया चाहते हैं। इसके अतिरिक्त शासकों की जाति में शासन का कुछ अभिमान सा पैदा हो गया है, जिससे हमारी कठिनाइयाँ और बढ़ रही हैं।

हम लोगों की कठिनता इधर संकीर्ण सामाजिक जोश के कारण और भी बढ़ गई है। यह वह सार्वलौकिक साम्राजिकता नहीं, जिसमें साम्राज्य के प्रत्येक व्यक्ति की उन्नति के लिये काम होना था बल्कि इससे केवल जाति विशेष के लिये ही हक मांगे जाते हैं। मैं खुल कर इसके विषय में कुछ कहना नहीं चाहता, महाशयगण स्वयं समझ लेंगे। इसी संकीर्णता के

कारण हमारे कामों में अनेक विघ्न पड़ते जाते हैं। परन्तु य अड़चनें कुछ ऐसी नहीं, जिनके लिये अधिक चिन्ता की कुछ बात हो। इन सबों का आशय केवल इतना ही है कि हम लोग अपने परिश्रम को द्विगुण कर देवें और अपने कामों में अधिक जीवन प्रदान करें और आक्रमणों का सामना करें।

बहुतेरे लोग ऐसे हैं जो कहा करते हैं कि राजनैतिक आन्दोलन से कुछ लाभ नहीं, और इतिहास में कोई घटना इस प्रकार की नहीं जिसमें यह दिखलाई पड़े कि किसी ने कभी ऐसे आन्दोलनों से कुछ भी लाभ उठाया है, तथा व्यवसायिक आन्दोलन ही सब कुछ है। मेरे मित्र मिस्टर चौधरी ने बगाल प्रान्तिक कान्फरेन्स के सभापति के आसन से जो व्याख्यान दिया है उसके कुछ अंश की तो मैं खुले दिल से प्रशंसा करता हूँ, परन्तु उसका कुछ अंश मेरी समझ में नहीं आता। उनका कथन है कि शासित प्रजा को राजनैतिक विषयों में कोई अधिकार नहीं। ये उन अर्ध-सत्य बातों में से हैं, जो झूठ से भी बढ़ कर भयानक हैं। यदि 'राजनीति' का संकुचित अर्थ देशों के परस्पर व्यवहार सम्बन्धी राजनीति से ही हो, तब तो मि० चौधरी की बात अवश्य ठीक है, नहीं तो यदि राजनीति का विस्तृत अर्थ देश-सम्बन्धी राजनीति से है, जिस अर्थ में मैं राजनीति शब्द को जानता हूँ—तब तो प्रजा राष्ट्रों को अपने राजनैतिक विषयों में शासक राष्ट्रों के समान ही, बल्कि अधिक अधिकार है। तुमको एक प्रधान जाति की उन्नति के विरुद्ध लड़ना है, तुम्हें उन अधिकारों में भाग लेना है, जिन्हें उन लोगों ने एकदम अपना रक्खा है, और जो तुम्हारे लिये बन्द हैं। ये सब कार्य राजनैतिक हैं। अतएव आप लोगों को इस प्रकार के पक्षाभास में पड़ कर भूल कर बैठना ठीक नहीं। अब रही

का श्रेय कांग्रेस को ही है। पन्द्रह सोलह वर्षों में इतने कम उद्योग पर भी इतना काम करना क्या कम है? भाइयो! मेरे विचार में तो राजनैतिक विषय में निराश होने की कोई बात ही नहीं।

परन्तु मैं इस बात को भी नहीं भूल सकता कि इधर कुछ दिनों से राजनैतिक आन्दोलनों में अड़चनें बढ़ गई हैं। कांग्रेस की नींव जमजाने के कारण प्रान्तिक राजनैतिक सम्मेलनों पर धक्का पहुंचा है। कांग्रेस होने के कारण अनेक सार्वजनिक गूढ़ समस्याएं भी प्रान्तिक हो चली हैं। राजनीतिज्ञ लोग पहले के समान प्रान्तिक विषयों में ध्यान नहीं देते। इन बातों को मैं मुक्तकण्ठ से अवश्य स्वीकार करूंगा। और साथ ही साथ एक बात और देखने में आती है वह यह है कि हमारे प्रतिरोधियों में एकता और भी बढ़गई है और हमारी बातों का प्रतिवाद अब और जोरों से होने लगा है। कांग्रेस के पहले अंग्रेज लोग प्राय हमारी लालसाओं के साथ बाह्य सहानुभूति दिखला दिया करते थे परन्तु अब, जब उन लोगों ने देखा है कि हम लोग मिलजुल कर अपने अभीष्ट के लिये उद्योग कर रहे हैं, तब से कुछ इने गिने ही अंग्रेज हम लोगों का हाथ बटाया चाहते हैं। इसके अतिरिक्त शासकों की जाति में शासन का कुछ अभिमान सा पैदा हो गया है, जिससे हमारी कठिनाइयाँ और बढ़ गई हैं।

हम लोगों की कठिनता इधर संकीर्ण सामाजिक जोश के कारण और भी बढ़ गई है। यह वह सार्वलौकिक साम्राज्यिकता नहीं, जिसमें साम्राज्य के प्रत्येक व्यक्ति की उन्नति के लिये काम होता था बल्कि इससे केवल जाति विशेष के लिये ही हक मांगे जाते हैं। मैं खुल कर इसके विषय में कुछ कहना नहीं चाहता, महाशयगण स्वयं समझ लेंगे। इसी संकीर्णता के

कारण हमारे कामों में अनेक विघ्न पडते जाते हैं। परन्तु य अडचनें कुछ ऐसी नहीं, जिनके लिये अधिक चिन्ता की कुछ बात हो। इन मवों का आशय केवल इतना ही है कि हम लोग अपने परिश्रम को द्विगुण कर देवें और अपने कामों में अधिक जीवन प्रदान करें और आक्रमणों का सामना करें।

बहुतेरे लोग ऐसे हैं जो कहा करते हैं कि राजनैतिक आन्दोलन से कुछ लाभ नहीं, और इतिहास में कोई घटना इस प्रकार की नहीं जिसमें यह दिखलाई पडे कि किसी ने कभी ऐसे आन्दोलनों से कुछ भी लाभ उठाया है, तथा व्यवसायिक आन्दोलन ही सब कुछ है। मेरे मित्र मिस्टर चौधरी ने बगाल प्रान्तिक कान्फरेन्स के सभापति के आसन से जो व्याख्यान दिया है उसके कुछ अश की तो मै खुले दिल से प्रशसा करता हूँ, परन्तु उसका कुछ अश मेरी समझ में नहीं आता। उनका कथन है कि शासित प्रजा को राजनैतिक विषयों में कोई अधिकार नहीं। ये उन अर्ध सत्य बातों में से हैं, जो झूठ से भी बढ कर भयानक हैं। यदि 'राजनीति' का सकुचित अर्थ देशों के परस्पर व्यवहार सम्बन्धी राजनीति से ही हो, तब तो मि० चौधरी की बात अवश्य ठीक है, नहीं तो यदि राजनीति का विस्तृत अर्थ देश सम्बन्धी राजनीति से है, जिस अर्थ में मैं राजनीति शब्द को जानता हूँ—तब तो प्रजा राष्ट्रों को अपने राजनैतिक विषयों में शासक राष्ट्रों के समान ही, बल्कि अधिक अधिकार है। तुमको एक प्रधान जाति की उन्नति के विरुद्ध लडना है, तुम्हें उन अधिकारों में भाग लेना है, जिन्हें उन लोगों ने एकदम अपना रक्खा है, और जो तुम्हारे लिये बंद हैं। ये सब कार्य राजनैतिक हैं। अतएव आप लोगों को इस प्रकार के पक्षाभास में पड कर भूल कर बैठना ठीक नहीं। अब रही

औद्योगिक उन्नति की बात, सो मुझे इसके साथ पूरी सहानुभूति है परन्तु मैं यह जानता हूँ और आप लोगों को स्मरण भी दिला देता हू कि इस प्रकार के आन्दोलन की एक सीमा है, जिसके आगे आप बढ़ नहीं सकते। आप विश्वास करें कि जब तक आपको अपने देश के शासन में अधिकार नहीं होगा, आप व्यय के विषय में बोल नहीं सकेंगे, तब तक आप उस ओर कोई उन्नति नहीं कर सकेंगे। मैं जानता हूँ कि जो महाशय आप को आज केवल औद्योगिक उन्नति के लिये बहका रहे हैं, और राजनैतिक आन्दोलन से एकदम हटाना चाहते हैं वेही दस वर्ष के बाद हाथ पर हाथ रख कर बैठ जायँगे और कहेंगे कि 'दुविधा में दोनों गये माया मिले न राम'। मैं यह नहीं कहता कि देश में इतने ही राजनैतिक कार्यों से काम चल जायगा, बल्कि मेरा कहना यह है कि परिश्रम प्रतिदिन बढ़ाते जाना चाहिये। पिछले कार्य घृणा करने के योग्य नहीं और न उनकी प्रणाली ही दोषयुक्त है। मैं यह नहीं कहता कि हमको राजनैतिक आन्दोलन की वर्तमान अवस्था पर ही संतोष करना चाहिये। मुझे स्वयम् वर्त्तमान दशा पर असंतोष है। परन्तु इसके लिये हमें उद्योग करना चाहिये। हम लोगों का कर्तव्य यह है कि वर्तमान मार्गों को सुनें, और अपने कार्य में नवजीवन और ओज की वृद्धि कर उसे पूरा करें। हम लोगों का सार्वजनिक जीवन शक्तिहीन और निर्जीव है क्योंकि यह ओजहीन है। बहुत ही कम लोगों को अपने कार्यों में विश्वास है, और जिसका परिणाम यह होता है कि मनोवांछित सफलता प्राप्त नहीं होती। हम लोग सभी कोई जापान की सफलता की प्रशंसा करते हैं, और बहुतेरे उसका इतिहास भी पढ़ते हैं। मैं खुद ही उसकी

कहानियों को आदर्श बनाना चाहता हूँ। मैं उस में क्या पाता हूँ ? अच्छा सुनिये, प्रथम तो उस देश में अति बलवान जातीयता पाई जाती है, यह जापान की अपनी वस्तु है, यह पाश्चात्य देशों से उधार नहीं लाई गई है। ऐसा राष्ट्रीय प्रेम शनै २ उन्नति का अकुर है, इसके अतिरिक्त एक बात और भी मेरे देखने में आती है और वह वहा के नेताओं का सम्मान है। वहा नेताओं की बातें जनता बडे दृढ भाव से धारण करती है। मेरे विचार से जापान की उन्नति के मूलमंत्र यही दोनों हैं। नेता लोग काम करने का मार्ग बतला देते हैं और सर्व साधारण धैर्य के साथ उस काम को करते चले जाते हैं। इसका परिणाम यह हुआ कि उद्योग की एकाग्रता का महत्व समझ कर सब जातियों ने मिल कर काम किया और यही कारण है कि वहा के लोगों ने अपने पुराने वस्त्रों को छोड कर शीघ्र ही नये परिधान को ग्रहण कर लिया।

यह एक भारी उपदेश हम लोग जापान से ग्रहण करते हैं। यदि आप चाहते हैं कि आप सफलमनोरथ हों तो आप एकत्र होकर कार्य करें। हिन्दुस्तान में जापानी नेताओं के जोड के एकही आदमी फीरोजशाह मेहता हैं, परन्तु ऐसे लोगों की आज्ञाए शिक्षित जनता को आख मूद कर माननी चाहिये बिना इसके नेता योग्य होते भी कुछ कर नहीं सकेंगे। विविध प्रश्नों पर स्वयम् विचार करना भी बुरा नहीं परन्तु जहा उद्योग की एकाग्रता आवश्यक है वहा अपने को उस मनुष्य के आधीन किये बिना जिसकी योग्यता सर्वमान्य हो, काम चलने का नहीं। सार्वजनिक जीवन में नियमों की पाबन्दी और भी आवश्यक है। अतएव नेताओं को भी अपने उत्तर दायित्व का विचार सदा ही करते रहना जरूरी है।

महाशयो, अब वे दिन गये, जब राजनीति एक मन पर लाने की चीज थी, अब इस देश का राजनैतिक प्रयत्न प्रति दिन बढ़ता जाता है अतएव इस मैदान में आनेवालों को केवल इसका ही व्यवसाय करना होगा, जैसे मनुष्य अपनी जीविका निर्दिष्ट करके उसी में अपनी सारी शक्ति लगा देता है वैसेही अब राजनैतिक विषय को भी अपनी जीविका समझ कर पूर्ण उद्योग करना होगा। इस काम के लिए हम लोगों को उस समाज की ओर देखना पड़ता है, जहां से लेजिसलेटिव कौंसिल के मेम्बर लोग चुने जाते हैं। मैं इन सदस्यों में से प्रत्येक से यह आशा नहीं रखता कि वे लोग अपना व्यवसाय एक दम छोड़कर इस काम को उठाएं, परन्तु प्रत्येक प्रान्त से एकाध ऐसे मनुष्यों का निकाल लेना जो अपना कुल समय नहीं तो कुछ समय तो अवश्य राजनैतिक विचारों के पुष्ट करने में बितावें, उचित है। इन्हीं मनुष्यों को राजनैतिक केन्द्र बना कर हमारे नवयुवकगण कार्य आरम्भ करेंगे और तभी सार्वजनिक जीवन का उच्चतम आदर्श तैयार होने की सम्भावना है। मैं अब तक दो तीन बातें ठीक कर सका हूं। हम लोगों की स्थिति में कोई भी बातें ऐसी नहीं, जिससे निराशा हो। जो मनुष्य जो दूसरों को हताश करने के उद्योग में लगे हैं या इस प्रकार के शब्द जैसा हमने ऊपर कहा है, प्रयोग करते हैं वे देश के शत्रु हैं, स्वयम् तो कुछ करते नहीं वरिक दूसरों के उत्साह को भी भंग करते हैं।

जैसा कहा जाता है कि इतिहास में शासित जातियों की उन्नति इस प्रकार होते नहीं सुनी गई है। परन्तु महाशयो! मैंने स्वयम् इतिहास का अध्ययन किया है और जो कुछ मैंने

देखा है, वह यह है कि तुम किसी भी घटना से ठीक ठीक मेल खानेवाली कोई दूसरी घटना इतिहास में नहीं पा सकने।

लोग कहते हैं कि इतिहास बारम्बार अपनी घटनाओं को दुहराता है परन्तु शायद कोई भो घटना ऐसी नहीं, जो वास्तव में फिर कभी उसी रूप में घटित हो। ऐसा सम्भव है कि कोई शासित जाति आन्दोलन से उन्नत न हुई हो परन्तु इससे क्या? हम लोगों का ही उदाहरण सब से प्रथम ससार के इतिहास में दर्ज होगा। ससार के इतिहास का तो अभी अन्त नहीं हुआ है, कितने ही परिच्छेद इसमें अभी जोड़े जायँगे। अतएव हम लोगों को हताश कदापि न होना चाहिये।

मैं आप लोगों को अधिक देर तक ठहराना नहीं चाहता। इस समय की सब से आवश्यक बात यह है कि आप लोग अपने कार्य में विश्वास रक्खें और अधिक आत्मत्याग करने को भी प्रस्तुत रहें। इसमें सदेह नहीं कि कुछ दिनों से प्रतिघातक शक्तियों का जोर कुछ बढ गया है। कई प्रतिघातक कानून जिनके पास न होने के लिये देश भर ने सम्मिलित होकर प्रयत्न किया था, पास हो गये। बहुत से भारी पदाधिकारियो के सम्भाषण कुछ ऐसे हुए है, जिनसे देश में अशान्ति सी फैल गई है। मैं विश्वास करता हू कि ये सब विघ्न बाधाएँ शीघ्र दूर हो जायगी और जितना काम करेंगे उसके अनुसार फल भी अवश्य ही पावेंगे। हम लोगों का आन्दोलन ऐसा है, जिसमें सभी कोई कुछ न कुछ काम अवश्य कर सकते हैं। जिनके पास धन है वह धन से, जिन्हें अवकाश है वे समय से और जिनमें योग्यता है वे अपने परिश्रम के द्वारा सार्वजनिक प्रश्नों को हल कर सकते हैं। नवयुवकगण परिश्रम

करके उपदेशकों का काम कर सकते हैं। मैं इन कामों के लिए युवकों को ही चाहता हू जो अपने वृद्धों से उपदेश ग्रहण कर सकें। और बिना किसी ठाटबाट के जनता के सम्मुख जाकर काम करें। अगर हम लोग सभी कोई अलग अलग अपना काम करें तो हम लोगों का यह उद्योग एक न एक दिन राजनैतिक स्वतन्त्रता पाकर ही बंद होगा। इस ओजपूर्ण आन्दोलन के सम्मुख हम लोगों की साधारण और तुच्छ विभिन्नता और मतभेद सब अवश्य ही लोप हो जायेंगे। सब झगडे मिट जायेंगे। हम लोगों का विश्वास सूर्य की तरह चमक उठेगा। आत्मत्याग के लिए हम कटिबद्ध हो जायेंगे। देश और जाति के कदम आगे को बढ़ेंगे और उस अभीष्ट फल को हम हस्तामलक कर लेंगे जो हम लोगों का दिवा मनन और रात्रि स्वप्न रहा है।

भारतवर्ष के प्रति-इंगलैण्ड का कर्त्तव्य।



१५वीं नवम्बर १६०५ को इगलैण्ड के 'नेशनल लिबरल क्लब' में मि० गोखले ने यों कहा था :—श्रीमन् महानुभावो तथा महिलाओ !

आज इस सभा ने मुझे भारतवर्ष के विषय में कुछ सुनाने के लिये निमंत्रित कर अनुगृहीत किया। भारतवर्ष के राजनैतिक सुधारक एक प्रकार आपके लिबरल दल के सहयोगी हैं क्योंकि हमलोग हिन्दुस्तान में जिन सत्त्वों की अभिलाषा करते हैं, वेही आप लोगों के दल को भी स्वीकृत है। शान्ति, सुधार और मितव्ययिता ही हम लोगों का मूल मन्त्र है, हम लोग भी आप लोगों के ही तरह उन हकों का द्वार जो आज कुछ इने गिने लोगों ने हथिया रक्खा है, सर्वसाधारण के लिये खोल देने तथा सर्वसाधारण के ऊपर एक समाज विशेष के प्राबल्य को उठा देने के उद्योग को ही अपना प्रधान कर्तव्य मानते हैं।

महाशयगण ! मैंने सहयोगी शब्द का व्यवहार संकुचित रूप से यहां किया है, उसका अर्थ यहां एक ही कार्यक्षेत्र में कार्य करनेवाले से है, एक ही साधना के लिये अनेक काम करनेवालों से नहीं। हम लोग वस्तुत आपके दल के सहयोगी कहे जाने के योग्य नहीं क्योंकि हम नि सहायों के पास छत

ज्ञता तथा प्रेम के अतिरिक्त और क्या है, जिसका भेंट आप लोगों की कृपा के बदले दिया जाय। और यह प्रतिफल बहुतों को आखों में अत्यन्त तुच्छ भी जँचेगा तथापि मुझे आशा है, नहीं, नहीं, विश्वास है कि और कुछ नहीं तो कम से कम हमलोग स्वराज्य का अपील सुनाते समय आपके दल से सहानुभूति की भिक्षा तो अवश्य पा सकेंगे।

सभ्य महिलाओ और महाशयो! प्रायः एक सौ वर्ष से इंगलैण्ड और भारतवर्ष का भाग्य एक सूत्र में गुथा हुआ है, आप लोगों ने क्योंकर भारतवर्ष को अपने शासन में सम्मिलित किया है, इसकी विवेचना करने का समय और आवश्यक्ता यहा नहीं, परन्तु मैं अपने देश की ओर से दो बातें निवेदन करूगा, जिसमें पहली तो यह है कि यद्यपि हम लोग विदेशियों के आधीन हैं तथापि केवल परतन्त्रता के कारण ही हम लोग उन अर्धशिक्षित वा अशिक्षित जातियों की नाईं जिन्हें आप लोगों ने जीता है, स्पर्धा किये जाने के योग्य नहीं। भारतीय राष्ट्र प्राचीनतम है जिसकी सभ्यता यूरोपियनों की सभ्यता शब्द के अर्थ समझने के बहुत पहले ही चर्मसीमा तक पहुच चुकी थी। मेरा भारतवर्ष ससार के बड़े २ धर्मों की जन्मभूमि है। साहित्य, साख्य, विज्ञान, शिल्प इत्यादि ने इसकी भूमि को बहुत दिनों तक अपना क्रीडा स्थल बना रक्खा था, परन्तु ईश्वर सारी निधि एक ही को नहीं देता, और भारतवर्ष भी पुरातन समय में स्वतन्त्रता देवी के प्रेम से, जिसके लिए पाश्चात्य देश विख्यात है, वञ्चित रक्खा गया। तथा इसने अवैतनिक सस्थाओं की भलाइयों को नहीं समझा। दूसरी बात यह है कि केवल इसी कारण से कि भारतवासी विदेशियों के आधीन हैं, सिद्ध नहीं होता कि इनमें सामरिक भाव की न्यूनता है। आप स्वय

ही देख लेवें कि आज दिन आपकी सैनिक शक्ति का मुख्यांश भारतवर्ष के वीरों से ही बलवान है। मैं इन दोनों बातों को इसलिए कह रहा हू, जिसमें आप लोग इस बात को स्वीकार करें कि यद्यपि भारतवासी परतन्त्र हैं तथापि सभ्य जातियों में सम्मान पाने के योग्य हैं। आपके भूतपूर्व राजनैतिक नेतागण इस बात को कभी अस्वीकार नहीं करते थे। वे सदा इस बात को, कि संसार के एक कोने में स्थित एक छोटा सा द्वीप दूसरे कोने पर के एक महाद्वेश को शासित करे, एक दैवयोग ही मानते थे। वे यह कहते थे कि भारतवर्ष हम लोगों को सौंपी हुई एक पवित्र धरोहर है और इसकी रक्षा और पालन करना हमारा परम कर्तव्य है, उनके अन्त करण की सचाई प्रशंसनीय थी। आप लोगों को शासन करते हुए करीब सौ वर्ष होते हैं और अब यदि हम लोग आप लोगों के शासन की आलोचना करें तो शायद ही कोई ऐसा कहेगा कि भारतवासियों को अभी इतनी जल्दी आलोचना करना ठीक नहीं। भारतवर्ष में सब से पहला काम जिसने आपके शासकों का ध्यान आकर्षित किया था वह अंग्रेजी बल का संस्थापन करना था और यह उन लोगों ने अपने नवीन आविष्कारों के द्वारा तथा पाश्चात्य शासन प्रथा को चलाकर पूरा भी कर डाला। यह काम हुआ भी बड़ी खूबी के साथ। सारे देश में रेल, तार और पोस्टआफिसों का जाल बिछ गया, शान्ति और शृङ्खला का राज्य हो गया, न्याय महँगा होते हुए भी देशियों के बीच पूरे तौर से होने लगा हां जब प्रश्न देशी और विलायतियों के बीच का होता तब तो बात कुछ अवश्य ही बदल जाती। इसमें सन्देह नहीं कि जो शासन पद्धति यहां फैलाई गई है वह किसी प्रकार परिपूर्ण नहीं कही

जा सकती तथापि मैं यह अवश्य कहूंगा कि यह ऐसी है, जिस पर आप सन्तोप प्रकाश कर सकते हैं। बल एकत्र करने के अतिरिक्त आप लोगों के राजनीतिज्ञों ने सामोपचार नीति का अवलम्बन किया और आपके कार्य का यह भाग भी सन्तोपजनक है क्योंकि हिन्दुस्तानी परदेशियों के शासन से सन्तुष्ट रहने लगे। यह परिणाम आप लोगों के पार्लामेन्ट और सम्राटों की उदार-नीति तथा अंग्रेजी शिक्षा के फैलने के कारण सुगम हो गया। इस पाश्चात्य विद्या के प्रादुर्भाव होने के कारण देश में स्वतन्त्र सस्थाओं का प्रेम जम गया। करीब पचहत्तर वर्ष के होता है जब आपके पार्लामेन्ट ने १८३३ का चार्टर एक्ट पास किया, जिसमें भारत के शासन के मूलतत्वों का समावेश था। और पचीस वर्ष के बाद महारानी ने उन्हीं तत्वों का अनुमोदन अपने चार्टर में किया। १८३३ और १८५८ की घोषणाए ही आपके पार्लामेन्ट और राजा की प्रतिज्ञाए हिन्दुस्तानियों के सम्मुख पेश करती हैं और यही दो प्रतिज्ञाएं आपके भारतीय शासन की नींव हैं।

ब्रिटिशराज्य का प्रधान लक्ष्य, हिन्दुस्तानियों की उन्नति करना, राज्य कार्य में दोनों जातियों के बीच तुल्यता प्रदान करना तथा जाति पांति और रग रूप के भेदों को दूर कर देना ही कहा जाता है। इन प्रतिज्ञाओं के सन्मुख सभी हिन्दुस्तानी शिर नवा कर परदेशियों की शासन-युक्ति में योग देने लगे। चार्टर के बाद ही हिन्दुस्तान में तीन पुराने विश्वविद्यालयों की नींव पड गई, स्कूल कालेज खुल चले और इङ्गलैण्ड के ढंग पर विद्याध्ययन का काम भी आरम्भ हो गया। स्मरण रहे कि पाश्चात्य विद्या का द्वार हम लोगों के लिए खोल कर

भविष्य फल का विचार भी आप लोगों ने कर लिया था क्योंकि मैकाले ने अपने एक प्रसिद्ध सभापण में कहा था कि पाश्चात्य विद्या के रंग में रंगे जाकर हिन्दुस्तानी एक न एक दिन अपनी राजनीति को यूरोप के ढंग में ढालना चाहेंगे। उनका कथन है "मैं यह नहीं कह सकता कि ऐसा दिन कभी आ-सकता है कि नहीं, परन्तु मैं ऐसे सुदिन को रोकने का उद्योग नहीं करूगा, बल्कि ऐसे समय को मे इङ्गलैण्ड के सौभाग्य का दिन कह कर अभिनन्दन ही करूगा"।

इस प्रकार आपलोगों की की हुई प्रतिज्ञाएँ तथा पाश्चात्य विद्या का आरम्भ उच्चतम शासन प्रणाली के साथ मिलकर आपके चिरभिलषित सामोपचार कार्य्य को सन्तोषजनक रूप में सफल करने लगा। बीस वर्ष पहले एक इङ्गलैण्ड लौटनेवाले अंगरेज को यह विश्वास होता था कि देशभर में अंग्रेजी शासन को सभी प्रसन्नतापूर्वक अङ्गीकार किये हुए हैं, और यह बात थी भी, क्योंकि लोगों का विश्वास था कि इस शासन में अपनी उन्नति करने का अवकाश मिलेगा और प्रजा होते हुए भी अन्य उपनिवेशों की तरह हम अपनी मर्यादा रख सकेंगे। महाशयो! आज यदि वह विश्वास अति क्षीण हो गया तो इसके एकमात्र कारण आपके राजनीतिज्ञ लोग हैं, जो दो सीढी चढ़ा कर अब तीसरे पर पैर नहीं देने देते। अर्थात् संस्थापन और सामोपचार के पश्चात् पुनर्सृष्टि करना नहीं चाहते। जिस समय आप लोगों ने भारतवर्ष में कार्य आरम्भ किया था और जिस समय आपको पाश्चात्य शासन नीति वहाँ फैलानी थी उस समय हिन्दुस्तानियों के नीतिनिपुण न होने के कारण कुछ नीतिविज्ञ अंग्रेजों के हाथ में कार्य सौंप देना अनुचित नहीं था परन्तु आज जब आपके

कालेज और स्कूलों को कृपा से बहुतेरे काम करने वाले तैयार हो गये हैं और शासन में हाथ बढ़ाने को भी प्रस्तुत हैं तब आप लोग क्यों अपनी नीति का जीर्णोद्धार नहीं करते ? क्यों मूलतत्वों को पुनरावलोकन कर अपनी की हुई प्रतिज्ञाओं की पूर्ति नहीं करते ? दुर्भाग्यवश आपके राजनीतिज्ञ लोग इसी समय आनाकानी करते हैं जिसका परिणाम प्राय भयानक होने की धमकी दे रहा है। पचीस वर्ष पूर्व एक बड़े न्यायी अग्रेज लार्ड रिपन ने भारी उद्योग इस शुभ काम को आरम्भ करने का किया था। भारतवासियों के उस शुभेच्छु ने पाच वर्ष तक ब्रिटिश राज्य के शासन के मूल तत्वों को विस्तृत करने में जो तोड परिश्रम किया था, और उन कुछ स्वत्वों को, जिनके लिए शिक्षित भारतवासियों का हृदय लालायित हो रहा था, दिया भी। उस महापुरुष ने स्वराज्य की वर्णमाला सिखलाने का उद्योग किया, शिक्षा के लिए उत्तेजना दी, और अग्रेजों और हिन्दुस्तानियों के बीच की भारी असमानता, जो आज दिन देश भर में व्याप्त है दूर करने की चेष्टा की। इसका परिणाम क्या हुआ ? बिचारा अपने देशवासियों के हाथ से पूरे रूप से फटकारा गया और उसके बाद से किसी वाय सराय की हिम्मत उस महापुरुष के चलाये मार्ग को अवल म्बन करने की नहीं हुई। इतना ही नहीं गत कुछ वर्षों से शिक्षित जनता के विरुद्ध प्रतिघातक उपायों का जोर बढ चला, फिर लार्ड कर्जन के शासन काल में इसका रूप और भयानक हो उठा। मैं केवल यही बतलाना चाहता हू कि ये उपाय कभी सफल होने के नहीं। अन्तिम गिन्ती से विदित होता है कि करीब दस लाख मनुष्य अग्रेजी पढ़े लिखे हैं। आप इस सख्या को एकदम आज दिन एक इच जगह में बद नहीं रख

सकते। और यदि यह सम्भव भी हो तो आप लोगों को ऐसा करना उचित नहीं। मैं तो कहता हूं कि यह असम्भव है और असम्भव को सम्भव करने का उद्योग सदा ही भयावह होता है। बहुत कुछ बुराइयां हो चुकीं। अब मेरे देशवासियों का विश्वास ब्रिटिश शासन से एकदम हिल उठा है, यहां तक कि कुछ युवकों को तो एक दम कुछ है ही नहीं। यह समस्या अब भयानक हो रही है। इस समय सभी बुद्धिमानों को भविष्य के विषय में भय हो रहा है। और यदि आप लोग इसे अब भी अनुभव नहीं करेंगे तो पीछे इसका इलाज कठिन हो जायगा।

महाशय और महिलाओ! मैंने इसे स्वीकार किया है कि पुराने देश में नई रोशनी फैलाने का श्रेय आप लोगों को ही है। अब इस देश का, आपके सौ वर्ष के शासन में जितना कल्याण हुआ है, विचारणीय है। यही असल जांच है। अगर इस जांच का फल सन्तोषप्रद हुआ तब तो सब किसी के आपत्ति करते रहने पर भी मैं इस शासन के तत्वों को अच्छा ही कहूंगा।

अच्छा अब हमें पहले मानसोन्नति के विषय को लेना चाहिये। यह दोष गुण मिश्रित है। हममें बहुत सी बातें तो ऐसी है, जिस पर आप पूरे तौर से सन्तोष प्रकट कर सकते हैं। आपके शासन के गुणों से हम लोगों में शान्ति, न्याय और शृङ्खला की उन्नति, पाश्चात्य शिक्षा का फैलाव, भाषण स्वतन्त्रता, सार्वलौकिक सत्य की श्रेष्ठता इत्यादि का आ जाना सर्वप्रधान और अभिमान करने योग्य है। इसके साथ ही साथ बुराइयां भी हैं जिनमें से हम लोगों के राष्ट्र की अवनति सबसे बढ़कर और प्रथम रखने योग्य है आप लोग हम लोगों

को विश्वासपात्र नहीं समझते यह दूसरी बात है। सबूत में देखिये, १८९२ के पार्लामेंट के एक सम्भाषण से ज्ञात होता है कि २४०० अफसर सिविल-सर्विस के हिन्दुस्तान में है जिनमें से सिर्फ ६० हिन्दुस्तानी है और वे भी कुछ ऊँचे दर्जे के नहीं। तीसरी बात यह है कि इङ्गलेंड के पार्लामेंट के एक व्यक्ति को शासन में जितना अधिकार है उतना हमारे ३३ करोड भारत वासियों को इकट्ठे होने पर भी नहीं। चौथी बात हम लोगों का नि शस्त्र होना है। इत्यादि। भारतवासियों की वास्तविक स्थिति तो यही है। बाहर यदि हम लोग आपके उपनिवेशों में जाते हैं, जैसे नेशल इत्यादि देशों में, तब तो हमारा अपमान और भी बढ जाता है, हम लोग असभ्य समझे जाकर फुट-पाथ पर भी चलने नहीं पाते। अब यदि सौ वर्ष तक आपकी प्रजा रहकर हम लोगों के हक यों ही रहे तो फिर कौन कहेगा कि आपके शासन का फल हम लोगों पर बहुत अच्छा हुआ?

अब यदि हमलोग आर्थिक विषय की ओर झुकें तो मुझे और भी शोक के साथ कहना पड़ेगा कि भारतवर्ष की आर्थिक अवस्था आपके शासन से अत्यन्त भयानक होगई है। यह बात मैं बीस वर्ष में पूर्ण विज्ञता प्राप्त करने पर कहने को समर्थ हुआ हू। भारतवासी आज दिन दीनता के घोर गड्ढे में गिरे पडे हैं, यह बात मैं दो एक उदाहरणों से सिद्ध कर दूगा। आपकी वार्षिक आय ४२ पौन्ड अर्थात् ६३०) रुपया फी आदमी है परन्तु हमलोगों की सिर्फ ३०)। आप लोगों की रक्षनी की आमदनी १३ पौंड अर्थात् १९५) है और मेरे यहां केवल ३॥) है। आपके सेविंगबैंकों में २ अरब २२ करोड रुपये हैं और हम लोगों के यहा आप से सतगुनी जनता के रहते भी सिर्फ एस ही करोड हैं, जिसमें से भी अधिक रुपया युरो

पियनों का ही है। आपके यहां की सम्मिलित मूलधन वाली कम्पनियों का प्रस्तुत मूलधन १,६००००००० पौण्ड है और हम लोगों का केवल २ ही करोड है उसमें से भी अधिकतर अगरेजों का ही है।

हमारे देश का ⅘ हिस्सा कृषिव्यवसायी है परन्तु दुर्भाग्य तो यह है कि कुछ दिनों से इनकी दशा भी शोचनीय हो रही है। भारतवर्ष के कृषक एकदम दरिद्र और ऋण से चूर २ हैं अतएव उन लोगों के पास इतना काफी धन नहीं कि अपने व्यवसाय में कुछ रुपये लगा सकें, जिसका परिणाम यह है कि अधिकतर कृषकों का परिश्रम एकदम निष्फल जाता है। भारतवर्ष के एक एकड जमीन में ५ मन के करीब गल्ला पैदा होता है और आपलोगों के यहा १५ मन। और भी सुनिए गत आठ वर्षों के अकाल से भारतवर्ष में कृषकों को करीब ३० करोड रुपयों की घटी हुई है। एक विज्ञ, (मिस्टरहटर) के कथनानुसार ४ करोड मनुष्य केवल एक वक्त भोजन कर जीवन यापन करते हैं, और ७ करोड मनुष्य ऐसे हैं जो एक शामको खा कर भी यह नहीं जानते कि क्षुधा की तृप्ति कौन सी चिडिया का नाम है। सज्जनो! एक महादेश की यह दुरावस्था किस हृदय को नहीं पिघलाएगी। यदि आपके सौ वर्ष के शासन के बाद भी हमलोगों की यही दशा रही तो आप किस मुख से कह सकते हैं कि आप लोगों का शासन सतोषजनक हुआ? इतना ही क्यों, यह भली भाति दिखलाया जा सकता है कि यह दुरावस्था भी प्रतिदिन घोरतर होती जाती है। अकाल पर अकाल पडते जाते हैं, कष्ट प्रति समय बढता जाता है, इस पर भी गत सात वर्षों से प्लेग प्रजा को निगले जाता है। हाय!!

अब जनता की ओर चलिये तो देखा जायगा कि भारतवर्ष के अनेक प्रान्तों में जनता बढ़ने के बदले गत बीस वर्षों से घटती जाती है या ज्योंकी त्यों बनी है। इसका मुख्य कारण अकाल मृत्यु ही है। इंगलैण्ड और भारतवर्ष की मृत्युसंख्या मिला कर देखने से ज्ञात होगा कि इन वर्षों की पहले चौथाई भाग में भारतवर्ष में मृत्युसंख्या २४ या २५ फी हजार थी और इंगलैण्ड में २० थी। दूसरे चौथाई में हम लोगों की मृत्युसंख्या २४ से २८ होगई और आप लोगों की २० से १८ रह गई। तीसरे चौथाई में हम लोगों की ३० और आप लोगों की १७ रही। और चौथे चौथाई अर्थात् गत पांच वर्षों में हमारी मृत्युसंख्या बढ़ कर ३२ पहुंच गई और आप लोगों की १६ से भी नीचे खसक गई। क्यों ? महाशय ! इसका कारण यह है कि आप लोग अपने मजदूरों के स्वास्थ्य पर पूरा ध्यान देते हैं और उनके खाने पीने का इन्तजाम स्वयं सरकार से करते हैं। और हम लोगों के साथ वे बातें नहीं। अब आप विचार सकते हैं कि जनता के इस घोर कष्ट के लिए कौन उत्तरदायी है ?

चालीस वर्षों से हम लोगों के यहां आय से व्यय की संख्या बढ़ती जाती है, वह आज १५ अरब रुपया अधिक हो गई है। कोई भी देश इतना ह्रास सह कर जीता रह सकता है ? इसका कोई प्रतिकार नहीं ! सिवा इसके कि भारतवर्ष को अपना काम करने का अधिकार देकर उपनिवेशों के दर्जे तक पहुंचा दिया जाय, दूसरा कोई उपाय हम लोगों की दशा उन्नत नहीं कर सकता। मैं स्पष्ट रूप से कहे देता हूं कि वर्तमान शासन-पद्धति में आप लोग हम लोगों की भलाई का नम्बर अपने स्लेट पर पहले और दूसरे दर्जे में तो

[illegible]

परन्तु इन [illegible] [illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible] कुछ शिक्षा [illegible] की शिक्षा दी जा सके।

महाशयो! अब तक यह [illegible]
कर सकता है कि भारतवर्ष की नारियों को [illegible]
सोचते हैं? वस्तुतः [illegible]
[illegible]
सेवा, [illegible] इत्यादि।

महिलाओ और सज्जनो! मैं [illegible] हूँ कि मैंने [illegible]
लोगों को शासन-पद्धति के कुछ सुधार करने [illegible]
[illegible] को दिखलाने के लिए [illegible]
इस समय भारत की राजनैतिक हालत पर [illegible]
[illegible] वास्तविक विरोध नहीं। हम लोग [illegible]
कोई अधिकार ही नहीं परन्तु हमारे भारतीय

अब जनता की ओर चलिये तो देखा जायगा कि भारतवर्ष के अनेक प्रान्तों में जनता बढ़ने के बदले गत बीस वर्षों से घटती जाती है या ज्योंकी त्यों रही है। इसका मुख्य कारण अकाल मृत्यु ही है। इंगलैण्ड और भारतवर्ष की मृत्युसंख्या मिला कर देखने से ज्ञात होगा कि इन वर्षों की पहले चौथाई भाग में भारतवर्ष में मृत्युसंख्या २४ या २५ फी हजार थी और इंगलैण्ड में २० थी। दूसरे चौथाई में हम लोगों की मृत्युसंख्या २४ से २८ होगई और आप लोगों की २० से १८ रह गई। तीसरे चौथाई में हम लोगों की ३० और आप लोगों की १७ रही। और चौथे चौथाई अर्थात् गत पाच वर्षों में हमारी मृत्युसंख्या बढ कर ३२ पहुच गई और आप लोगों की १६ से भी नीचे खसक गई। क्यों ? महाशय! इसका कारण यह है कि आप लोग अपने मजदूरों के स्वास्थ्य पर पूरा ध्यान देते हैं और उनके खाने पीने का इन्तजाम स्वयं सरकार से करते हैं। और हम लोगों के साथ वे बातें नहीं। अब आप विचार सकते हैं कि जनता के इस घोर कष्ट के लिए कौन उत्तर दायी है?

चालीस वर्षों से हम लोगों के यहा आय से व्यय की संख्या बढती जाती है, वह आज १५ अरब रुपया अधिक हो गई है। कोई भी देश इतना ह्रास सह कर जीता रह सकता है? इसका कोई प्रतिकार नही! सिवा इसके कि भारतवर्ष को अपना काम करने का अधिकार देकर उपनिवेशों के दर्जे तक पहुंचा दिया जाय, दूसरा कोई उपाय हम लोगों की दशा उन्नत नहीं कर सकता। मैं स्पष्ट रूप से कहे देता हू कि वर्तमान शासन पद्धति में आप लोग हम लोगों की भलाई का नम्बर अपने स्लेट पर पहले और दूसरे दर्जे में तो

षया तीसरे दर्जे में भी नहीं रखते और न उस पर विचार ही करते हैं। अंग्रेजों को पूरी तनख्वाह मिलती है। उनका बोझ हम लोगों पर प्रतिदिन बढता ही जाता है। भारतवर्ष की आमदनी का तीसरा हिस्सा गवर्नमेण्ट के खर्चे के लिए प्रति वर्ष बहा चला आता है। नहरों का इन्तजाम करने के पहले आप लोग रेल की लाईनों का विचार करते हैं क्योंकि रेल कम्पनियों में मूल धन अंग्रेजों का है। प्रजाओं की उन्नति प्राथमिक शिक्षा पर कितनी निर्भर है किसी से छिपा नहीं, परन्तु इस ओर सर्कार ने कितना ध्यान दिया है, इसका पता इतने ही से लग जायगा कि प्रत्येक पांच गावों में से चार गांव बिना स्कूल के हैं और प्रत्येक आठ लडकों में से सात निरे मूर्ख हैं। वर्त्तमान समय में भारतवर्ष में शिल्प की शिक्षा की कितनी आवश्यकता है सभी जानते हैं परन्तु समूचे देश भर में एक नाम के लिए भी कोई ऐसी संस्था नहीं, जहां कुछ शिल्प वाणिज्यादि की शिक्षा दी जा सके।

महाशयो! जब तक यह दशा रहेगी, कोई विश्वास कर सकता है कि भारतवर्ष की भलाई की बातें आप कभी सोचते हैं? बहुतसी बातें ऐसी हैं जिसमें आप की सहायता तत्काल आवश्यक है जैसे प्राथमिक शिक्षा, शिल्प की शिक्षा, कृषकों की दीनता इत्यादि।

महिलाओं और सज्जनो! मैं आशा करता हूँ कि मैंने आप लोगों की शासन-पद्धति के पुन संस्कार करने की आवश्यकता को दिखलाने के लिए यथेष्ट बातें कह डालीं। इस समय आपकी अनियन्त्रित शासन प्रणाली से किसी का भी वास्तविक विरोध नहीं। हम लोग भारतवासियों को तो कोई अधिकार ही नहीं परन्तु हमारे भारतीय मन्त्री महाशय

जिनका काम निरीक्षण करने का कहा जाता है, इस काम को कर ही नहीं सकते क्योंकि वे विचारे मेरे देश में कभी गये नहीं, अतएव उन्हें इस विषय का कोई सच्चा ज्ञान हो नहीं सकता। पार्लामेंट ने इस अनर्थ को समझ कर मंत्री को एक सदस्यों की सभा सहायता करने के लिये दी ! परन्तु शोक है कि इन सदस्यों में से एक भी हिन्दुस्तानी नहीं सब के सब पेन्शनयाफ्ता एंग्लो इन्डियन ही हैं। इन एंग्लो इंडियनों के विचार एकदम पक्षपातपूर्ण हैं और सभा में शासकों के ही मतलब की बातें होती हैं। यद्यपि पार्लामेंट कहने को तो अवश्य निरीक्षण करने वाली संस्था है परन्तु स्टेट सेक्रेटरी के सम्राट की सभा के सदस्य होने के कारण, और अधिकांश जनता के द्वारा अनुमोदित होने के कारण पार्लामेंट का निरीक्षण भी केवल नाममात्र का रह जाता है। अतएव यदि सच्ची बात पूछी जाय तो वह यह है कि कहीं भी किसी का अधिकार नहीं, कोई निरीक्षक नहीं। मैं आशा करता हूं कि लिबरल पार्टी इस अनर्थ को खूब समझती है। इस समय हम लोगों की केवल इतनीही मांग है कि राजकार्य में हम लोगों को भी कुछ निरीक्षण का अधिकार दिया जाय। मैं गवर्नमेंट की कठिनाइयों को खूब समझता हूं, अतएव मैं तत्काल प्रजातन्त्र नहीं मांगता। हम लोगों की मांग एक दम साधारण है। उसकी साधारणता ऐसी है कि जिसे सुन कर आप लोग आश्चर्य में पड जायगें।

पहले वाइसराय की लेजिसलेटिव कौंसिल की ओर चलिये इसमें केवल ४ सभासद हिन्दुस्तानी हैं बाकी २१ सरकारी। वर्ष भर में केवल एक दिन आय व्यय के विषय पर कुछ बातें होती हैं। इस एक दिन में भी कुछ किया नहीं जाता

और न किसी को उस विषय पर वादविवाद करने का पूरा अधिकार दिया गया है, न किसी बात में अलग अलग राय ही ली जाती है। हम लोग चाहते हैं कि दोनों दल की संख्या कौंसिल में बराबर रहती, वाइसराय को श्रेष्ठ अधिकार रहें, इस में कुछ आपत्ति नहीं। आयव्यय के लेखे में टिप्पणी करने का अधिकार हम लोगों को मिलना चाहिये। प्रान्तिक शासन में देशियों को आय व्यय विषयक प्रश्नों में हस्तक्षेप करने का अधिकार मिलना चाहिये और गवर्नमेंट को अन्य अन्तर्विषयों का इन्तज़ाम सौंपना चाहिये। इन सबों के बाद स्टेट सैक्रेटरी की कौंसिल में भी हम लोग तीन देशी मेम्बर चाहते हैं। जिसमें किसी प्रश्न की मीमांसा होने के पहले भारतीय अपनी राय दे सकें और किसी विषय पर देशी मत प्रकाशित कर सकें। और अन्त में पार्लामेंट के कामन्स में कम से कम बारह प्रतिनिधियों का चुनाव हिन्दुस्तान से होना चाहिये। ६७० मेम्बरों के बीच में केवल बारह कुछ गड़ बड़ नहीं मचा सकेंगे और न मन्त्रियों के भाग्य ही बदल सकेंगे। मैं इतना कुछ जो चाहता हूं वह प्रथम तो राज्यकार्य में योग देकर अपनी स्थिति को उच्च रखने के लिये ही है, दूसरे इसके द्वारा पार्लामेंट को भारतीय विचारों को भारतीयों के मुख से सुनने का सुअवसर देने के लिये है। इससे जब हम लोग पार्लामेंट में एकमत हो कर किसी बात का विरोध करेंगे उस समय कम होते हुए भी हम आप लोगों से विस्मरण किये जाने के योग्य नहीं रहेंगे।

आप लोग कह सकते हैं कि हिन्दुस्तान को यह अधिकार देने पर उपनिवेशों को भी यह अधिकार देना होगा, परन्तु यह तो कोई दलील ही नहीं क्योंकि उन उपनिवेशों का

कल उस देश से आ रहे हैं उनको ठीक मानने और मतलब समझने में बडी सावधानी से काम लेना चाहिये। भारत एक बडा देश है और यह बहुत संभव है कि हजारों कोस दूर दूसरे देश में भेजी हुई लडीवद खबरें कभी २ जन साधारण पर गलत प्रभाव डालें। इसके सिवाय ऐंग्लोइडियन समाज का एक दल, विशेष कर उत्तर में, भारत के सुधारों के ढंग और विस्तार से भयभीत हो रहा है, और उन तारों में, जो यहाँ रोज २ आते हैं, इस भय के चिह्नों का पता लगाना कुछ बहुत कठिन नहीं है।

अन्त में मुझे भय है कि अशान्ति की वकालत करने वाले तथा उनके सहायक, महत्वपूर्ण सुधार होने की आशा से कुछ बहुत प्रसन्न नहीं हैं अर्थात् अप्रसन्न हैं। और आज कल उनकी नई तेजी का प्राय यही कारण है। परन्तु यह सब कुछ होने पर भी, और इन सब बातों के सम्मिलित प्रभाव को छोड करके भी यह निश्चित है कि आज भारत में बहुत ही कठिन स्थिति है, उस देश की दशा बडी सकटमय है, और यथार्थ मे अगले दो या तीन साल में यह निश्चित हो जावेगा कि इगलैंड और भारत के बीच भावी सम्बन्ध क्या और कैसा रहेगा। मुझे आशा है कि वे सब लोग जो ऐसी अवस्था में हैं, कि भारत के मामलों पर उनका असर पड सकता है, इन बातों को भली भांति समझ लेंगे। केवल यही नहीं है कि कुछ उग्र स्वभाव के मनुष्य आपे से बाहर हो सब उचित बंधनों को तोड जान बूझकर अशांति फैला रहे हैं, परन्तु बात यह है कि जिन्हों ने अंग्रेजी शिक्षा पाई है, या जो अंग्रेजी शिक्षा पा रहे हैं, उनके विचार अंग्रेजी राज्य की

श्रोर से यडी शीघ्रता से वदल रहे हैं, और भारत के अच्छेसे अच्छे दिमाग वाले मनुष्य इन लोगों के साथ हैं।

नये भावो का इतिहास।

इन परिवर्तनों का परिणाम क्या होगा और सरकार उनके सबन्ध में किस तरह की काररवाइ करेगी, ये इतने कठिन मामले हैं, कि जिनके निश्चय करने के लिए भारत वर्ष या इस देश के सब शासकों और आन्दोलन करनेवालों को कुछ समय तक अपना पूरा ध्यान देना पडेगा। इस परिवर्तन, इस अशांति—अथवा और जिस किसी नाम से आप इसे पुकारें—के मूल तथा विस्तार को ठीक रीति से समझने के लिये आपको ब्रिटिश भारत के इतिहास के ७५ साल पीछे, अर्थात् स १८३३ में जाना पडेगा। इसी साल इस्ट इन्डिया कंपनी का व्यापारी रूप बदल गया और उसने शासकों, अथात् केवल शासकों, का ही रूप धारण किया। उसी साल पार्लमेंट ने यह प्रसिद्ध आज्ञापत्र पास किया, कि भारत के शासन में जाति अथवा धर्म का भेदभाव न रक्खा जायगा, और सभी सरकारी नौकरियों के द्वार सभी के लिये एक से खुले रहेंगे। उस समय लार्ड विलियम बेंटिंग भारत के बडे लाट थे, और स्वर्गीय सर विलियम हंटर ने ठीक ही कहा है कि वह पहिले ही बडे लाट थे जिन्होंने भारतवासियों का हित ही अपने कार्यों का मुख्य उद्देश्य रक्खा था। (जय ध्वनि।)

यह समय प्रथम रिफार्म बिल* (सुधार करने वाले कानून)

---

* सन् १८३२ में इगलैंड का पहिला सुधारक कानून पास हुआ था। यही अग्रेज जनता की स्वाधीनता का श्रीगणेश था। इसके पहिले सब अधिकार बडे जमीदारों के ही हाथो में थे। अनु०।

और गुलामों को स्वतन्त्रता दिये जाने का था। और इस देश (इंगलैण्ड) के नीतिज्ञों तथा मन्त्रियों ने भारत के साथ भी उसी उदार नीति का व्यवहार करना निश्चित किया था जो इंगलैण्ड के इतिहास का सर्वोत्तम भूषण है। (जय ध्वनि।) उन्होंने उन विचित्र घटनाओं को, जिनके कारण मुट्ठी भर अंग्रेज एक बहुत बड़ी और सभ्य जाति पर अपना राज्य स्थापित कर सके, ईश्वर की ही महिमा का प्रकाश समझा। उनके हृदय पसीज गए और उन्होंने सच्चे दिल से प्रकाशित किया कि वे भारत पर इस प्रकार से राज्य करेंगे, मानों वह उनको एक धरोहर की भांति सौंपा गया हो। और राज्य की नींव अंग्रेज तथा भारतीय दोनों जातियों की बराबरी के आधार पर रक्खी जायगी।

उपर्युक्त-वादों को पूरा करने के लिए २५ वर्ष तक बहुत कम उद्योग हुआ, क्योंकि इस काल में सरकार की सारी शक्ति राज्य को बढ़ाने और दृढ़ करने में खर्च होती रही थी। सरकार इस समय शासन की एक ऐसी मशीन तैयार करने में लगी हुई थी, जो पश्चिमी ढंग की हो और जो पश्चिम के आदर्शों को व्यक्त कर सके। इस समय तक भारतवर्ष में शिक्षित लोगों के समुदाय की उत्पत्ति नहीं हुई थी। जो अंग्रेजी नीतिज्ञों के वादों के लाभों का आदर करता और सार्वजनिक सम्मतियों के दबाव से उन वादों को पूरा कराने का उद्योग करता।

२५ वर्ष पूरे होने के बाद एक मारके की उन्नति हुई, यद्यपि सिपाही विद्रोह की काली घटा अभी भारत के आकाश से लोप नहीं हुई थी। इस उन्नति, अर्थात् भारत के

भिन्न भिन्न प्रान्तों में विश्वविद्यालयों की स्थापना, से उन पुराने वादों का पूरा होना संभव हुआ। उसी समय राजराजेश्वरी की ओर से एक घोषणा भी प्रकाशित हुई, जिसमें १८३३ के वादों को फिर से दुहराया गया। फिर २५ वर्ष और बीते। इस काल में शिक्षित लोगों का एक ऐसा समुदाय उत्पन्न हुआ, जिसके मन में स्वाधीनता की ध्वनि भरी हुई थी। और इसी समय, सन् १८५८ से २५ साल बाद सन् १८८३ के लगभग, एक और मार्के की उन्नति हुई, अर्थात् स्थानिक स्वराज्य प्रदान किया गया।

पैर पीछे हटाने का फल।

दैवयोग से लार्ड रिपन् के स्थानिक स्वराज्य वाले कानून पास होने के २५ वर्ष बाद अब फिर नए सुधार होंगे। मैं आशा करता हू कि जो सुधार अब प्रकाशित किए जायँगे वे हमारी उन्नति की तीसरी सीढ़ी होंगे, और उनके द्वारा वर्त्तमान प्रबंध में ऐसा परिवर्त्तन होगा, जिस प्रकार १८८३ में स्थानिक स्वराज्य का आरम्भ हुआ था, अब प्रान्तिक स्वराज्य का श्री गणेश होगा। पिछले २५ साल का समय भारतवासियों के लिए बड़ी कठिनाई का समय था। यह समय हमारे लिए भी वैसा ही पीछे हटने (अवनति करने) का था जैसा अभी हाल ही में समाप्त होने वाला युग आप के लिए था। ग्लैड्स्टन* के प्रथम होम रूल बिल के अस्वीकार होने की तिथि से आरंभ

*सन् १८८६ में उदार दल का नेता ग्लैड्स्टन तीसरी बार इंगलैंड का प्रधान मंत्री हुआ। इसने आयरलैंड को होमरूल प्रदान करने

होकर आप के देश में अनुदार शासन चोअरों से युद्ध समाप्त होने तक रहा। हमारे बुरे दिन भी उसी समय से आप और लार्ड कर्ज़न के शासन काल के अंत तक रहे। इसी अनुदार युग के साथ २ एक महान् जातीय चेष्टा भी अपना प्रभाव दिखाने लगी। इस चेष्टा का उद्देश्य यह था कि भारत की राजनैतिक स्थिति को उच्च कोटि का बनाये। इंगलैंड के उदार दल के सिद्धान्तों तथा ब्रिटिश राज्य के उच्च आदर्शों में विश्वास ही इस चेष्टा की आरंभिक अवस्था में हमारा आधार था। कुछ नवयुवकों ने जिन्होंने १८६० से प्राय: १८७५ तक विश्वविद्यालयों में शिक्षा पाई थी, और उन लोगों ने, जो इसके पूर्व ही अपना शिक्षा-काल समाप्त कर चुके थे, पुराने उदार दल की सर्वोत्तम युवा अवस्था देखी थी। यही सज्जन कांग्रेस के आरंभ होने के समय उसके नेता बने। मेरे देशवासियों ने उदार दल के प्रसिद्ध पुरुषों को जैसे ब्राइट, ब्रेडला और फासेट को, अत्याचार के विरुद्ध और केवल न्याय की दृष्टि से ही भारत वर्ष का पक्ष लेते देखा था। इसके अतिरिक्त लार्ड रिपन के शासन ने हमारी कृतज्ञता और उत्साह को बढ़ा दिया था। इस लिए यह आश्चर्य की बात नहीं है कि कांग्रेस ने अपना कार्य आरंभ करते समय उदार दल पर बहुत कुछ विश्वास और भरोसा रक्खा था। परंतु धीरे धीरे यह विश्वास और भरोसा कम होने लगा और उदार दल के भारत मंत्री सर

के लिए एक मसौदा बिल पार्लमेन्ट में पेश किया पर उदार दल में फूट पड़ जाने से बिल पास न हुआ। उदार दल के मंत्रिमंडल ने पद त्याग दिया। प्राय: २० वर्ष तक अनुदार दल का प्रभुत्व रहा। अनु०

हेनरी फाउलर* तथा उदार दल के वायसराय लार्ड यलगिन ने अधिकांश कांग्रेस वालों के हृदय से उसे बिलकुल नष्ट कर दिया। उदार दल का विश्वास हटते ही ब्रिटिश राज्य के उच्च उद्देश्य में भी लोगों की श्रद्धा कम होने लगी। और लार्ड कर्ज़न के अंतिम ६ साल के शासन ने इस श्रद्धा की भी इतिश्री करदी। आप सब लोगों को मालूम है कि लार्ड कर्ज़न बहुत ही योग्य पुरुष हैं और उन्होंने भारत के शासन की मेशीन को बढ़िया बनाने के लिये बड़ा परिश्रम किया और अपना समय लगाया, परन्तु उन्हें शिक्षित भारतवासियों की इच्छाओं और अभिलाषाओं के साथ कुछ भी सहानुभूति न थी। यहां तक कि उन्होंने अपने शासन के अन्तिम ३ वर्षों में शिक्षित समुदाय के बढ़ते हुए प्रभाव और गौरव के नष्ट करने तथा भारत वासियों के पैरों में गुलामी की बेड़ियों को अधिक कड़ा और पुष्ट बनाने में अपनी शक्ति भर कोई कसर नहीं की। इसी अभिप्राय से उन्होंने विश्वविद्यालय, छापेख़ाने और समाचार-पत्र तथा सरकारी नौकरियों के सम्बन्ध में बहुत कड़ी आज्ञाएं प्रकाशित कीं। यहां तक कि महारानी विक्टोरिया की सन् १८५८ वाली प्रसिद्ध घोषणा को भी एक प्रकार से रद्द करने का उद्योग किया। फिर उन्होंने कलकत्ता विश्वविद्यालय के कानवोकेशन (उपाधि वितरण के लिये उच्च कोटि के सफल विद्यार्थियों आदि के जमाव) में एक व्याख्यान दिया, जिसमें बड़ी बुद्धिहीनता से भारतवासियों और उनके पूर्वजों तथा उनके जातीय उच्च आदर्शों की निन्दा की। इस व्याख्यान को

* सर हेनरी फाउलर और लार्ड यलगिन ने उदार हो कर भी भारत के साथ अनुदारों का सा ही बर्ताव किया। इस लिए उदार दल में भारत का विश्वास लोप हो गया। अनु०

कोई भारतवासी कभी भी सरलता से भूल न सकेगा और न कदाचित् कभी व्याख्यान को क्षमा ही प्रदान कर सकेगा। इन सब के ऊपर तुर्रा यह हुआ कि चलते चलते उन्होंने बगभग कर के बडी भारी भूल की। ३ वर्षो तक भारत सताप और क्रोध की ज्वाला को सहता रहा, यहा तक कि सतोष और सहन शीलता की सीमा टूट गई। लोग बैठे बैठे अपनी निपट शक्तिहीनता का चिन्तन करने लगे। नए नए विचार और भाव उनके हृदय में लहर मारने लगे। कुछ ने तो बायकाट और सरकार के विरुद्ध निष्क्रिय प्रतिरोध का प्रबन्ध किया, कुछ इससे भी आगे बढ गए और शारीरिक बल प्रयोग का अवलम्बन करने लगे।

अन्य बातो का प्रभाव।

सन् १६०५ के अत में जब लार्ड कर्जन भारत से सिधारे तब देश की उपर्युक्त दशा थी। उनके स्थान में लार्ड मिन्टो वायसराय हुए। यह दयालु और नम्र सभाव के पुरुष और सहानुभूति रखने वाले शासक हैं, पर एक असाधारण कठिनाई का काम इनके हिस्से में आया था, कुछ तो स्थानिक शासको (भारतीय सिविलियनों) के दबाव के कारण और कुछ तत्कालीन दशा से विवश होकर, इन्हें गत तीन वर्षो में बडी कडी नीति बरतनी पडी। और विधि की विडबना देखिए, कि लार्ड मार्ले को, जिन्हें भारतीय शिक्षित समुदाय चिरकाल से अपना गुरू करके मानता था भारत मन्त्री होने के कारण, इस कडी और दबाने वाली नीति का पार्लामेंट में पक्ष लेकर समर्थन करना पडा इन सब बातों से भारत और भी क्षुभित और दु खित होगया।

और भी कुछ कारण ऐसे उपस्थित हुए जिन से पिछले कई साल में ब्रिटिश राज्य की ओर से हमारे प्राचीन विचार बहुत कुछ बदल गए। एशिया महाद्वीप में एक नवीन भाव की वायु बह रही है। यह नवीन भाव जातीयता और वैध्र सगठनात्मक शासन के हैं। यह उसी प्रकार के भाव हैं जैसे कि उन्नीसवी शताब्दी के मध्य में यूरोप के अधिकाश भाग में फैले थे। साराश यह है कि हम पूरब के वासी इस मामले में यूरोप वालों से ५० वर्ष पीछे हैं। यदि आप उन घटनाओं और परिवर्तनों पर विचार करें जो टर्की, मिश्र, ईरान, और चीन में हो रहे हैं—जापान की तो बात ही क्या है—तो आप इस नई भारतीय चेष्टा को समझ सकेंगे। फिर रूस पर जापान के विजय पाने से पूरब को एक नया गौरव प्राप्त हुआ है। अन्त में उस व्यवहार का जिक्र करना भी आवश्यक है जो अगरेजी उपनिवेशों में भारतवासियों के साथ किया जाता है। इस व्यवहार ने हमारी आखें खोल दी हैं और अब हम यह समझने लगे हैं कि हम को भी कभी २ ब्रिटिश राज्य की अन्य अगरेज प्रजा के समान कहना दिल्लगी या मुंह चिढाना मात्र है। हमें यह भी मालूम और निश्चय होने लगा है कि जब तक हमारी स्थिति अपने ही देश में अच्छी न होगी, तब तक कहीं भी हमारे साथ उचित और बराबरी का बर्ताव नहीं हो सकता। लार्ड कर्जन का यह उद्योग, कि शिक्षित भारतवासियों का प्रभाव नष्ट हो जाय, पिछले २५ वर्षो में हर समय ही दु खदायी होता, पर इस समय, जब उपर्युक्त सब प्रभाव अपना काम कर रहे हैं, और भी अधिक हानिकारक हुआ है।

भी पहुँचाए जायें क्योंकि इनका सिद्धान्त है कि सब तर
की गड़बड़ और कष्ट यहां तक कि अराजकता भी, देश
विदेशियों के अधिकार से अच्छी है।

अंग्रेजी राज्य का उच्च उद्देश्य।

यदि वे सुधार, जो अभी हाल ही में प्रकाशित होने वा
हैं, कुछ वास्तविक महत्व के हुए, तो सुधार चाहने वा
शिक्षित समुदाय का प्रसन्न होना असंभव नहीं है। और यदि
ये लोग संतुष्ट हो गए तो अंग्रेजों के विरुद्ध जो भाव आज
कल फैले हुए हैं, और जो वर्त्तमान स्थिति के सब से अधि
भयकारक अंग हैं, वे बहुत कुछ लोप हो जायँगे। फिर अशांति
फैलाने वालों और उनके सहायकों के साथ देश में बहुत क
सहानुभूति रह जायगी, और अशांति को मिटाने का का
आजकल की अपेक्षा बहुत सरल हो जायगा।

मैं पहिले ही कह चुका हूं कि आरम्भिक अवस्था
कांग्रेस को ब्रिटिश सरकार के उच्च उद्देश्य में बड़ी श्रद्धा थी
वह उच्च उद्देश्य क्या है? अर्थात् शिक्षित भारतवासियों
पीढ़ी दरपीढ़ी उस उच्च उद्देश्य का क्या अर्थ समझा है
इनका यह अभिप्राय नहीं है कि कुछ अंग्रेजों को भारतवर्ष
सदा ऊंची नौकरियां मिलती रहें। या अंग्रेजी धन सद
भारतवर्ष के बड़े बड़े लाभदायक व्यापारों में लगा रहे। य
लार्ड कर्जन और रुडयार्डकिपलिंग के से मनुष्य अंग्रेज
अफसरों के निःस्वार्थ कर्तव्यपालन और सफेद चमड़े
पुरुषों के दायित्व के राग अलापा करें। नहीं, महिलाओ और
महाशयो! मेरा अभिप्राय इन सब ऊपर लिखी बातों से नह
है। हम ब्रिटिश शासन का उच्च उद्देश्य यह समझते हैं कि

पहिले तो पश्चिम, और विशेष कर इगलैंड, की शासन प्रणाली के जो उच्च आदर्श हैं वे भारत में स्थापित किए जायँ, और फिर जनता को स्वराज्य की ओर धीरे धीरे उन्नति करने में उस समय तक सहायता दी जाय जब तक यह काम पूरा न हो जाय।

इसके विरुद्ध, यदि ब्रिटिश सरकार भारत में पश्चिमी आदर्शों को स्थापित करके भी अनियन्त्रित और अधिकारी तन्त्र के ढग पर शासन करती रही, तो हमारे विचार में वह अपने उच्च उद्देश्य के सिद्ध करने में बिलकुल असफल रही। और यदि पश्चिमी आदर्श भारत से लोप हो गए और फिर वही पुराने देशी ढग व्यवहार किए जाने लगे, तो भी हम यही कहेंगे कि अंग्रेजी सरकार अपने उच्च उद्देश्य को पूरा न कर सकी। जहा तक पश्चिमी आदर्शों का सबध है, ब्रिटिश सरकार अपना काम लगभग पूरा कर चुकी है अर्थात् वे आदर्श स्थापित हो गए है, परन्तु दूसरे अभिप्राय के सबध में कहना पडता है, कि लार्ड रिपन के दिए हुए स्थानिक स्वराज्य के आरंभिक अश को छोड कर, इस ओर बहुत ही कम उन्नति हुई है। और यद्यपि यह दूसरा अश पहिले पश्चिमी आदर्श को स्थापित करने की अपेक्षा अधिक आवश्यक और महत्व का है, तथापि अधिकारी इस के खूब ही विरुद्ध रहे हैं। यह नहीं कहा जा सकता, कि जब अंग्रेजी शिक्षा का देश में प्रचार किया गया था, उस समय यह अनुमान नहीं था कि जनता स्वराज्य मांगेगी, क्योंकि आप सब को मालूम है कि सन् १८३३ में भी, जब ईस्ट इंडिया कम्पनी को प्रसिद्ध आज्ञापत्र मिला था, लार्ड मैकाले ने बड़े ललित और मधुर शब्दों में इस शुभ भविष्य का दृश्य वर्णन किया था।

अन्य नीतिज्ञों ने भी समय समय पर ऐसे ही विचार और भाव प्रगट किये हैं, और कुछ दिन पहिले तो भारतवर्ष में किसी को यह सन्देह भी न था कि ब्रिटिश शासन का उद्देश्य सिवाय भारत वासियों को स्वराज्य देने के कुछ और भी हो सकता है। इसके अतिरिक्त आप का साहित्य, जो हम ५० वर्ष से बराबर पढ रहे हैं, स्वाधीनता और वैध शासन के विचारों से भरा पडा है, इतनाही नहीं वरन् उन लोगों के लिए, जो दूसरों के द्वारा शासित बने रहते हैं, आपके साहित्य में एक प्रकार की घृणा प्रकट की गई है। ऐसी अवस्था में यह आशा कोई कैसे कर सकता है कि भारतवासी, ५० वर्ष तक आपका साहित्य और इतिहास पढ़ कर भी, लार्ड कर्जन के मुख से अपने प्राय सदैव के दासत्व की घोषणा सुनने पर, चुपचाप बैठे रहेंगे।

बिलकुल नए प्रबध की आवश्यकता है। भारतवर्ष को स्वराज्य मिलना केवल ब्रिटिश राज्य के उच्च उद्देश्य की सिद्धि के लिए ही आवश्यक नहीं है, वरन् हमारे आत्म सम्मान की रक्षा के लिए भी उसकी बडी आवश्यकता है। हमारे देश के सच्चे हित के लिए भी उसकी जरूरत है। (जय ध्वनि।) सभव है कि वर्त्तमान शासन प्रणाली उस परिवर्तन काल के लिए, जब एक देश के विचार और शासन पद्धति दूसरे देश म प्रचलित की जा रही हो, उचित कही जा सके, परन्तु वह शासित जाति के स्थायी लाभ और भावी भलाई के लिए तो बिलकुल ही अनुचित है। जब तक सरकार अपना पूरा उद्योग और अपनी सारी शक्ति शान्ति स्थापन करने तथा तार, रेल आदि बनाने म खर्च करती थी, उस समय तक वर्तमान शासन के दोषों पर ध्यान नहीं गया।

परन्तु यह अवस्था अब व्यतीत हो गई। और नये सिरे से शासन के प्रबन्ध करने की अब बहुत आवश्यकता है।

आज कल शासन ऐसे चलायमान विदेशी अफसरों के हाथ में है जो केवल उतने समय तक देश में है, जितना उनकी नौकरी का काल समाप्त करने और पेनशन लेने के लिए काफी हो। उन्हें देश से स्थायी सहानुभूति नहीं है, क्योंकि यह भाव तो केवल देश के निवासियों में ही हो सकते हैं। जब वे भारतवर्ष से बाहर जाते हैं, सारी योग्यता और विद्या, ज्ञान और अनुभव जो उन्होंने उस देश में रहकर और उस देश के मत्थे उपार्जित किया है, अपने साथ बाहर ले जाते हैं, और फिर हमको उनसे कुछ लाभ नहीं पहुंचता। इस लिये शासन का कार्य्य ऐसे लोगों के हाथ में रहता है, जो या तो जा रहे हैं, या जाने की तैयारी कर रहे हैं। ऐसे महत्वपूर्ण मामले, जैसे सर्वसाधारण की शिक्षा, किसानों की ऋण से मुक्ति इत्यादि, जिनपर बराबर और निरन्तर बहस, विचार तथा उद्योग होना चाहिये, स्वाभाविक रीति से ही उन विदेशी अफसरों का ध्यान आकर्षित नहीं करते। शासन का वर्त्तमान कौशल केवल एक मेशीन के पुर्जों की सी निपुणता हो सकती है क्योंकि वह अफसरों की योग्यता और अपने पद के कर्त्तव्यपालन आदि के भाव का फल होती है। परन्तु उसमें उच्चकोटि की वह पटुता कदापि उत्पन्न नहीं हो सकती। जो केवल स्वराज्य से ही प्राप्त होती है।

सुधारों का ढंग।

मैं अभी कह चुका हूं यदि सुधारों में, जो हाल ही में प्रकाशित होने वाले हैं, कुछ सार हुआ तो शिक्षित भारत

वासियों के बहुत बड़े भाग का सन्तुष्ट होना असम्भव नहीं है। अब से ९५ दिन के भीतर ही हमको मालूम हो जायगा कि यह सुधार क्या हैं, और तब हम कह सकेंगे कि उनसे जनता को कहाँ तक सन्तोष होगा। यदि उनसे समझदार लोगों को संतोष न हो सका तो फल बड़ा आपत्ति जनक होगा।

मेरी हार्दिक आशा है कि ब्रिटिश शासन की उन्नति में यह सुधार तीसरी महत्वपूर्ण सीढ़ी होंगे में यह भी आशा करता हूं कि वे स्थानिक स्वराज्य के मन्दिर निर्माण को पूर्ण कर देंगे। उनसे प्रान्तिक कौंसिलों का पुनःसंगठन होगा, और उन कौंसिलों में गैर सरकारी मेम्बरों का बहुपक्ष होगा, जिन्हें शासन और अर्थ संबंधी मामलों पर उचित अधिकार प्राप्त रहेंगे, यद्यपि रद्द करने की शक्ति सरकार के हाथ में रहेगी। फिर अब भारतवासियों की नियुक्ति कार्यकारिणी कौंसिलों में भी होनी चाहिये और जाति के भेद मिटाने के जो वादे अभी हाल ही में महाराज की ओर से किये गये हैं उन्हें ऊंची नौकरियों पर भारतवासियों को नियुक्त करके पूरा किया जाना चाहिये। सम्राट् के इन नये वादों की पूर्ति वैसी नहीं होनी चाहिये जैसी सन् १८५८ की घोषणा की हुई है। अन्त में, जिला शासन के भी अधिकार विभाजित होना चाहिये, और जनता के प्रतिनिधियों की जिला शासन के काम में सहायता ली जानी चाहिये।

मेरा विचार है कि यदि यह सुधार कर दिये जायेंगे तो जनता को प्रान्तिक, जिला और, स्थानिक शासन में वास्तविक दिलचस्पी पैदा हो जायगी। और इन्हीं के साथ २ यदि दो और महत्वपूर्ण मामलों का उचित और सन्तोष-जनक निपटारा हो जाय तो मेरा विश्वास है कि वर्त्त

मान स्थिति सभल जायगी। वे दो मामले बगभग को रद्द करके बगाल प्रान्तों को सम्मिलित करना और राजनैतिक अपराधियों को क्षमा प्रदान करना है। मुझे इस बात का पूरा विश्वास है कि जब तक बगभग में किसी प्रकार परिवर्त्तन न होगा, बगाल में शान्ति न हो सकेगी और सारे भारतवर्ष में उस समय तक अशान्ति फैली रहेगी जब तक बगाल में शान्ति न हो जाय। हाल में विद्रोह के मुकद्दमों से लोगों के दिलों में बहुत कुछ मनमुटाव, उत्तेजना और सक्षोभ उत्पन्न हो गया है। और जब तक यह मनमुटाव उन अभियुक्तों और दडित मनुष्यों को जिनको केवल मतभेद रखने के कारण ही दड मिला है, क्षमा प्रदान करके मेट न दिया जायगा, तब तक नए सुधारों में बहुत कुछ सार होने पर भी उनका काफी प्रभाव न पड सकेगा। मेरी तुच्छ बुद्धि के अनुसार सच्चे और स्थायी सतोष उत्पन्न करने का केवल यही एक ढग है और यदि लार्ड मार्ले और लार्ड मिटो ने उसे स्वीकार किया और बिना विलम्ब किए ही स्वीकार किया, तो अवश्य ही इसका बडा अच्छा परिणाम होगा, तथा उन दोनों लार्डों के नाम लार्ड कैनिंग और लार्ड रिपन के नामों के साथ भावी पीढ़ियां बडे आदर से याद करेंगी।

परन्तु यदि यह अवसर हाथ से खो दिया गया, यदि सुधारों में उतना सार न हुआ जितना होना चाहिए, या उनके साथ साथ उन दो मामलों का जिनका अभी मैंने जिक्र किया है, सतोषजनक निपटारा न हुआ, तो फिर मुझे भय है कि सरकार को भारतवर्ष के कुछ भागों में फौजी कानून जारी करने की आवश्यकता पडेगी। और यदि एक दफा फौजी कानून जारी हो गया तो ब्रिटिश सरकार का जो

वासियों के बहुत बडे भाग का सतुष्ट होना असभव नहीं है। अब से १५ दिन के भीतर ही हमको मालूम हो जायगा कि यह सुधार क्या है, और तब हम कह सकेंगे कि उनसे जनता को कहाँ तक सतोष होगा। यदि उनसे समझदार लोगों को सतोष न हो सका तो फल बडा आपत्ति जनक होगा।

मेरी हार्दिक आशा है कि ब्रिटिश शासन की उन्नति में यह सुधार तीसरी महत्वपूर्ण सीढी होगे, मैं यह भी आशा करता हूँ कि वे स्थानिक स्वराज्य के मन्दिर निर्माण को पूर्ण कर देंगे। उनमें प्रान्तिक कौंसिलों का पुन सगठन होगा, और उन कौंसिलों में गैर सरकारी मेम्बरों का बहुपक्ष होगा, जिन्हें शासन और अर्थ-सबधी मामलों पर उचित अधिकार प्राप्त रहेंगे, यद्यपि रद्द करने की शक्ति सरकार के हाथ में रहेगी। फिर अब भारतवासियों की नियुक्ति कार्यकारिणी कौंसिलों में भी होनी चाहिये और जाति के भेद मिटाने के जो वादे अभी हाल ही में महाराज की ओर से किये गये हैं उन्हें उच्ची नौकरियों पर भारतवासियों को नियुक्त करके पूरा किया जाना चाहिये। सम्राट् के इन नये वादों की पूर्ति वैसी नहीं होनी चाहिये जैसी सन १८५८ की घोषणा की हुई है। अत मे, जिला शासन के भी अधिकार विभाजित होना चाहिये, और जनता के प्रतिनिधियों की जिला शासन के काम मे सहायता ली जानी चाहिये।

मेरा विचार है कि यदि यह सुधार कर दिये जायँगे तो जनता का प्रान्तिक, जिला और स्थानिक शासन में वास्तविक दिलचस्पी पैदा हो जायगी। और इन्ही के साथ २ यदि दो और महत्वपूर्ण मामलों का उचित और सतोष जनक निपटारा हो जाय तो मेरा विश्वास है कि वर्त-

मान स्थिति सभल जायगी। वे दो मामले बगभग को रद्द करके बगाल प्रान्तों को सम्मिलित करना और राजनैतिक अपराधियों को क्षमा प्रदान करना है। मुझे इस बात का पूरा विश्वास है कि जब तक बगभग में किसी प्रकार परिवर्त्तन न होगा, बगाल में शान्ति न हो सकेगी और सारे भारतवर्ष में उस समय तक अशान्ति फैली रहेगी जब तक बगाल में शान्ति न हो जाय। हाल में विद्रोह के मुकद्दमों से लोगों के दिलो में बहुत कुछ मनमुटाव, उत्तेजना और सक्षोभ उत्पन्न हो गया है। और जब तक यह मनमुटाव उन अभियुक्तों और दडित मनुष्यों को जिनको केवल मतभेद रखने के कारण ही दड मिला है, क्षमा प्रदान करके मेट न दिया जायगा, तब तक नए सुधारों में बहुत कुछ सार होने पर भी उनका काफी प्रभाव न पड सकेगा। मेरी तुच्छ बुद्धि के अनुसार सच्चे और स्थायी सतोष उत्पन्न करने का केवल यही एक ढग है और यदि लार्ड मार्ले और लार्ड मिटो ने उसे स्वीकार किया और बिना विलम्ब किए ही स्वीकार किया, तो अवश्य ही इसका बडा अच्छा परिणाम होगा, तथा उन दोनों लार्डों के नाम लार्ड केनिग और लार्ड रिपन के नामो के साथ भावी पीढिया बडे आदर से याद करेंगी।

परन्तु यदि यह अवसर हाथ से खो दिया गया, यदि सुधारों में उतना सार न हुआ जितना होना चाहिए, या उनके साथ साथ उन दो मामलों का जिनका अभी मैंने जिक्र किया है, सतोषजनक निपटारा न हुआ, तो फिर मुझे भय है कि सरकार को भारतवर्ष के कुछ भागो में फौजी कानून जारी करने की आवश्यकता पडेगी। और यदि एक दफा फौजी कानून जारी हो गया तो ब्रिटिश सरकार का जो

नैतिक प्रभाव है, और जिसके बल पर राज्य स्थित है, उसका सारे देश में अन्त हो जायगा। और फिर इसका फल क्या होगा? यह विचार करते हुए सिर चक्कर खाने लगता है।

तीसरा भाग



शिक्षा-सम्बन्धी

फरगुसन कालेज से विदाई



१६ सितम्बर सन् १६०२ ई० को शुक्रवार के दिन फरगुसन कालेज से अपना सम्बन्ध छोडते हुए मिस्टर गोखले को कालेज के विद्यार्थियो ने एक अभिनन्दनपत्र दिया था। उसके उत्तर में मिस्टर गोखले ने निम्न लिखित वक्तृता दी।

प्रिन्सिपल महोदय, अध्यापको तथा विद्यार्थियो, जो अभिनन्दनपत्र आप लोगों ने इस समय दिया है उसके उत्तर में मेरा हृदय बिना करुणार्द्र हुए नही रह सकता और न मैं उस बडी कृपा के लिये, जो आपने आज मेरे ऊपर की है, धन्यवाद ही देने में समर्थ हूँ। ससार की सब वस्तुओं से अलग होने में दु ख होता है, परन्तु जिससे घनिष्ट सम्बन्ध है उससे पुराना रिश्ता तोडने और विदाई लेने में उस दु ख से कहीं बढ़ कर क्लेश होता है जो किसी दूसरी वस्तु से नाता तोडने में हुआ करता है। अठारह वर्ष पर्यन्त अपनी शक्यानुसार जो कुछ मुझसे हो सका मैंने इस सस्था की वृद्धि के लिये प्रयत्न किया। भलाइयों में, बुराइयों मे, धूप में और आँधी में, मैंने इस पाठशाले के लिये कोशिश की और मेरा एक मात्र उद्देश्य यही रहा कि इसकी बेहतरी किस प्रकार से हो। अन्त में, इस कालेज से अपने को अलग समझना मेरे लिये असम्भव हो गया। इस समय जब इस पाठशाले के सम्पूर्ण कार्यों से हाथ खीचने का समय आया है तो मेरा हृदय सम्भवत धन्यवाद और अतीव शोक से पूरित हो गया है।

मैं परमात्मा को कोटिश धन्यवाद देता हूँ जिनकी कृपा से मैं उस सकल्प को भलीभांति पूरा कर सका, जिसको इतने वर्ष पूर्व युवावस्था के जोश में आकर मैंने किया था। मुझे इस बातकी परवाह नहीं कि भविष्य में क्या हो; परन्तु अपने जीवन के इस अंश को मै बड़ी प्रसन्नता और घमड के साथ अवलोकन करूगा। और अपने दिल में कहूँगा कि परमात्मा का धन्यवाद है, जिसने मुझे अपने प्रण के पालन करने में सहायता दी। परन्तु सज्जनो! धन्यवाद देने के साथ ही साथ मुझे इस बात का बडा शोक भी है कि इस पाठशाले के लिये जी तोड कर काम करने की इतिश्री हो रही है। आप लोग भली प्रकार समझ सकते हैं कि इस पाठशाले से सम्बन्ध छोडने में मुझे कितना शोक है जिसके लिये मैंने कोई बात उठा नहीं रक्खी। चाहे जिस क्षेत्र में मुझे काम करना पडा हो, परन्तु यह सदैव मेरी आँखों के सामने नाचता रहा। आप लोगों में से कुछ पूछेंगे, जैसा मेरे दूसरे मित्रों ने पूछा है, कि इस समय अलग होते हुए जब तुम्हें इतना शोक है तो तुम अपना सम्बन्ध कालेज से क्यों छोड रहे हो। इस प्रश्नका मेरा उत्तर यह है कि मैंने चिरकाल पर्यन्त और सावधानतया सब बातों की समालोचना किये बिना इस पाठशाले को छोडने का निश्चय नहीं किया है। पहिली बात तो यह है कि मेरा स्वास्थ्य इस समय अब वैसा नहीं रहा जैसा पहिले था। गत वर्ष दिन प्रतिदिन, सप्ताह प्रतिसप्ताह, मुझे इस बात की चिन्ता लगी रही कि बीच में बिना विश्राम लिये मैं अपने कार्य को किस प्रकार समाप्त कर सकूँगा। उस समय भी जैसा आप लोगों में से बहुतों को मालूम है, मैं कालेज में अपने कर्तव्यों को उतनी उत्तमता के साथ नहीं पालन कर सका

जितनी उम्दगी के साथ मेरे सहकारियों ने किया था। यह एक बडे अंसमजस का स्थान है कि मेरे सहकारियों ने मेरे विरुद्ध एक बात भी नहीं कही और मुझे उनकी इस कृपा का इस प्रकार बेजा लाभ उठाने का कोई अधिकार भी नहीं है। आप लोगों को यह सर्वश्रेष्ठ नियम भली भाँति मालूम है कि जब कोई भोजन करने के लिये बैठे तो कुछ भूखा ही उसे उठ आना चाहिए अथवा जब मित्र के मकान जाय तो दिन भर अतिथ्य सत्कार कराने के बजाय कुछ समय पूर्व ही उनसे बिदाई ले ले। मैं मानता हूँ कि मेरे सहकारियों की राय में यह उदाहरण उपयुक्त नहीं है तथापि बलात् अठारह वर्ष पर्यन्त काम कर के मैंने सोचा कि मेरे लिये इस काम को दूसरे लोगों के लिये छोड कर इस पाठशाले से सम्बन्ध छोडना ही अच्छा है। परन्तु इस पाठशाले से सम्बन्ध तोडने का कारण केवल यही नहीं है। आप लोग सोचेंगे कि यह प्रधान कारण नहीं है। मैं आप लोगों से साफ साफ कहता हूँ कि इसी तरह के दूसरे कारणों ने भी ऐसा करने के लिये मुझे विवश किया है। बहुत दिन हुये, मैंने एक मनुष्य की कहानी पढी थी, जो समुद्र के किनारे रहता था। उसके साथ उसके प्रिय घरवाले भी थे। वह एक अच्छे झोपडे और खेतों का मालिक था, जिनसे उसको धन धान्य मिला करता था। लोगों ने समझा कि वह बहुत ही खुश है। परन्तु समुद्र उसके हृदय में एक विचित्र भावना उत्पन्न करता था। जब कि वह शान्त होता और एक सोते हुये लडके की तरह मन्दे२ सास लेता था, तो वह उसके हृदय पर नये भाव उत्पन्न करता था, और जब वह एक क्रोधित सिंह की तरह दहाडने लगता तो उनके हृदय में वह और ही भाव उत्पन्न करता

था। अन्ततोगत्वा, इस प्राणघातक आनन्द को बहुत दिन तक वह न लूट सका। उसने अपनी सब चीजें बाँध कर एक नाँव में रक्खीं, और उसी में बैठ कर उसने समुद्र का आश्रय लिया। लहरों ने दो मर्तबा टक्कर मारी, परन्तु उसने इस सूचना की कुछ भी परवाह न की। उसने तीसरी मर्तबा प्रयत्न किया, और निर्दयी समुद्र ने उसे डुबो दिया। किसी न किसी रूप में आज मेरी भी अवस्था ठीक उसी प्रकार है। यहाँ पर, इस कालेज में, मैं पूर्णरूप से कर रहा हूँ और अपने सहकारियों के साथ बडी प्रसन्नता से अपना कर्तव्य पालन करता हूँ। वे मेरे दोषों पर कुछ भी ध्यान नहीं देते और मेरे छोटे से छोटे कामों की भी बडी प्रशंसा करते हैं। उनकी इस उदारता ने मेरे हृदयतलपर बडा असर डाला है। इन बातों के होते हुये भी मैं इस काम को छोड कर सार्व जनिक के तूफानी, अनिश्चित और भयानक समुद्र पर जा रहा हूँ। और मेरे हृदय के अन्दर एक आवाज मुझे ऐसा करने के लिये बाधित भी करती है। मैं आप से सच सच कहता हूँ, और आप मुझ पर पूर्ण विश्वास भी रखिये, कि देश के विस्तीर्ण और उतने ही उत्तरदायित्व के काम करने के लिये मैं उस स्वच्छन्दकार्य में हाथ लगाता हूँ जो उससे कहीं अधिक कठिन है। इस देशके सार्वजनिक जीवन में इनाम तो बहुत थोडे हैं, परन्तु कठि नाइयाँ और निराशायें बहुत हैं। करने के लिये काम बहुत है, और कोई नहीं कह सकता कि इसका परिणाम क्या होगा। परन्तु एक बात स्पष्ट है। वे लोग, जिन्हें इस काम करने की आन्तरिक इच्छा है, अपने जीवन को ऐसे काम में आशा और श्रद्धा के साथ समर्पण कर देते हैं, और

सिर्फ उसी आनन्द के इच्छुक होते हैं, जो निःस्वार्थ काम करने से प्राप्त होती है। यह ऐसा स्थान नहीं है जहाँ मैं अपनी भविष्य आशाओं अथवा कामों को बताऊँ। परन्तु एक बात मैं जानता हूँ, और वह यह है, कि चाहे मैं आगे आगे काम करता चला जाऊँ, और किसी रूप में सर्वसाधारण को लाभ पहुँचाऊँ, अथवा तूफान से पीडित और नौकाविहीन मल्लाह की भांति मुझे लौटना पडे, परन्तु, जैसा आप लोगों ने अपने अभिनन्दनपत्र में कहा है, मेरा ध्यान सर्वदा इस पाठशाले की ओर रहेगा और जब कभी मैं यहाँ आऊँगा तो मेरा इस पाठशाला में सच्चा स्वागत किया जायगा। इसके पूर्व कि मैं अपने वक्तव्य को समाप्त करूँ, मैं एक बात कालेज के विद्यार्थियों से कहना चाहता हूँ। मुझे आशा और विश्वास है कि उनको इस पाठशाले का घमंड सदैव रहेगा। मैं आप लोगों से विदा होने वाला हूँ, और इसलिये इस विषय पर विस्तार पूर्वक नहीं कह सकता। मैंने भारतवर्षभर का भ्रमण किया है, और भिन्न भिन्न स्थानों के शिक्षा सम्बन्धी पाठशालाओं को देखने की स्वभावतः मेरी रुचि भी रही है। परन्तु देश भर में कोई ऐसा विद्यालय हमारे विद्यालय के सदृश नहीं है। बहुत से ऐसे विद्यालय हैं जिन में बहुत सामान है, और जो अपने इतिहास के लिये विख्यात हैं। परन्तु हमारी पाठशाला मेरे मित्र, मिस्टर परांजपे और मिस्टर राजवाडे इत्यादि सज्जनों के सदृश मनुष्यों के आत्म त्याग से बढा हुआ है। इस विद्यालय का एक मुख्य उद्देश और एक मुख्य लक्ष्य है। उद्देश यह है कि आजकल के भारतवासी सांसारिक भावनाओं को छोड कर धार्मिक जोश और उत्साह से देश के एक ही काम के लिये एक सूत्र में बँध जायँ। लक्ष्य

इसका यह है कि हम लोग मदद करना स्वयं सीखें, दूसरों पर भरोसा न करें और अपना बोझा अपने ही कन्धों पर ले लें। इस काळेज के विद्यार्थियो, मुझे विश्वास है कि आप लोग इस शिक्षा को सदैव अपने सामने रक्खोगे और उस समय जब तुम उसकी बुराइयाँ करने में प्रवृत्त हो तब भी अपने पिता के दोषों की तरह उसको क्षमा कर श्रद्धा, उत्साह और उदारता के साथ उसके लिये काम करोगे और यथाशक्ति उसको अधिक प्रसिद्ध करने और लाभकारी बनाने का प्रयत्न करोगे। अब सिवाय विदाई लेने के और कुछ कहना मेरे लिये शेष नहीं है। मैं जानता हूँ कि जो कुछ इस समय मेरे दिमाग में नाच रहा है उसका बहुत थोडा भाग मैंने इस समय कहा। परन्तु चाहे मैं जितना कहूँ मेरे विचार भलीभाति प्रकाशित नहीं हो सकते। मेरी इच्छा है कि आप लोग सकुशल रहें। आप लोगों से इस समय विलग होने में मैं समझता हूँ कि मैं अपने जीवन का अच्छा काम अपने पीछे छोड रहा हूँ। मुझे आशा है कि आप लोगों में से कुछ दुसरे क्षेत्रों में काम करने के लिये मेरे सहकारी बनें ताकि हम लोग कभी कभी काळेज की दीवालों के अन्दर मिल जुल सकें। परमात्मा आपका और इस काळेज का कल्याण करे।

अवनत जातियों की उन्नति



(१९०३ ई० की २७ वीं अप्रेल को मिस्टर गोखले ने धारवाड की प्रान्तीय सोशल कान्फ्रेन्स में अवनत जातियों की उन्नति के विषय का प्रस्ताव पेश करते हुए यह वक्तृता दी थी —)

सभापति और सभ्य महोदय !

आज जो प्रस्ताव मुझे सौंपा गया है वह यह है — यह कान्फ्रेन्स समझती है कि नीच जातियों की वर्तमान शोचनीय और गिरी दशा स्वयमेव और राष्ट्रीय दृष्टि से भी अत्यन्त असन्तोषजनक है, और आशा करती है कि देश के सभी शुभचिन्तक अछूत जातियों की उन्नति में दत्तचित्त होना, उनमें आत्माभिमान भर देना तथा विद्या दान देने का उत्तम विधान करना अपना परम धर्म्म समझेंगे।

महाशयो ! मैं आशा करता हूँ कि मैं बहुधा बिना कारण कठोर शब्दों का प्रयोग नहीं करता, परन्तु इस प्रस्ताव के शब्द इतने जोरदार नहीं जितने उनको होना उचित और अत्युचित है। इन नीच जातियों की दशा (इन्हें नीच जाति कहना दु:खद है) केवल असन्तोषजनक ही नहीं, जैसा इस प्रस्ताव में दर्ज है, बल्कि सहृदयों के हृदय पर घोर धक्का पहुँचाने वाली, समाज की बेढङ्गी रचना और सब से अधिक हमारी विद्वान बुद्धिमान जनता के अन्यायपूर्ण व्यवहार को सूचित करने वाली है।

मैं आज के विषय को पौराणिक दृष्टि से देखने नहीं आया हूँ बल्कि न्याय, मनुष्यत्व तथा राष्ट्रीय स्वार्थ के नाते से अपने विचार प्रकट करने को। महाशयो! मैं आश्चर्य करता हूँ कि कैसे कोई न्यायशील व्यक्ति यह देख सकता है कि एक ऐसे जीव पर जिनकी बुद्धि, अवयव, समझने की शक्ति, इत्यादि प्राय. मेरे और आपके से हैं, और जिसमें अनुभव करने की शक्ति की भी कमी नहीं, ऐसा पैशाचिक व्यवहार, फटकार, मानसिक और दैहिक अत्याचार, किया जाय; और सदा के लिए उनकी उन्नति के पथ के बाधक उपायों का प्रयोग कैसे होता है? हम लोगों की न्याय बुद्धि के लिए यह असह्य है। यदि आप इस घोर अन्याय का अनुभव करना चाहते हैं तो अपने को उनके स्थान में रक्खें और विचारें कि आप एक कुत्ते को, बिल्ली को और, तो क्या, अपने पालतू सुअर के बच्चे को छू सकते हैं, परन्तु इन मनुष्यों का, परमात्मा के इन तेज पूर्ण अंशों का, स्पर्श तक घृणास्पद! सदा से लाछित, इन मनुष्यों की यहाँ तक मानसिक अवनति हो गई है कि अब तो वे तुम्हारे व्यव हारों से असन्तोष भी प्रकट नहीं करते और समझते हैं कि इनसे अधिक और कुछ उनके भाग्य में बदा ही नहीं।

मुझे आज से सात, आठ वर्ष हुए महात्मा रानाडे का एक व्याख्यान का स्मरण है। यह वह समय था जब मेरे भारतीय भाई अपने अफ्रीका प्रवासित भाइयों पर किये गए अत्याचारों की बात सुन सुन कर आठ, आठ आँसू रो और उन व्यवहारों का घोर विरोध कर रहे थे। हम लोगों के परम हितैषी महात्मा गान्धी अफ्रीका से कुछ दिनों के लिए यहा आकर अपने भाइयों की दुर्दशा की बातें,—जैसे, वे नेटाल तथा अफ्रीका के अन्य प्रान्तों में 'फुट पाथ' पर तथा रेल

की प्रथम श्रेणी की गाड़ियों में नहीं चलने पाते हैं, पद पद पर धक्के खाते और होटलों में झांकने नहीं पाते हैं, इत्यादि—सुना रहे थे। हम लोगों के जातीय सम्मान में बड़े वेग से ज्वार आया था और वृटिश प्रजा कहला कर वृटिश उपनिवेशों में इस तरह फटकारा जाना सहा नहीं जाता था। ऐसे सुसमय में महात्मा रानाडे ने हिन्दु क्लब में कुछ कहा था। महात्मा रानाडे में एक यह अपूर्व गुण था कि जब कभी उन्हें मालूम होता कि जनता इस समय जोश में है, वे तुरन्त उस सुअवसर को हाथ में ले, जातीय विचारों को ऐसा मरोड़ते कि जाति अपने जोश को ठीक मार्ग में लगा देती और इधर उधर भटकने से बच जाती। जब सभी लोग अपने प्रवासी भाइयों पर किये गए अत्याचारों पर असन्तोष प्रकट कर रहे थे तब रानाडे ने उनके सम्मुख जाकर पूछा, "भाइयो, जरा विचार कर देखो तो सही कि तुम्हारे अपने ही पाप तो कोई ऐसे नही, जिनका यह प्रायश्चित्त हो रहा है।" मुझे उनके ठीक शब्द स्मरण नहीं। वे शब्द ये थे—"अपनी अन्तर्ज्योति का मानस मन्दिर में प्रकाश डालो, जो प्रकाश चाहते हो उसे दिल में खोजो।" रानाडे ने अपने साधारण ढङ्ग में अफ्रीका वासी भाइयों के कठिन उद्योग पर सहानुभूति प्रकाशित करते हुए कहना प्रारम्भ किया। उन्हें इस बात की बड़ी प्रसन्नता थी कि भारतवासी अपने प्रवासी भाइयों की स्थिति पर शोक प्रकट कर रहे हैं, उनका विश्वास था कि यह जागृति इस जाति की सूखी हड्डियों में एक बार पुनर्जीवन सञ्चार का निश्चयात्मक चिन्ह है। रानाडे ने पूछा, "भाइयो! क्या पददलित और पीड़ित प्रवासी भाइयों के साथ ही आपकी सहानुभूति का अन्त हो जाता है? अथवा यह सर्वसाधारण

से और प्रत्येक अन्याय और अत्याचार की ओर दिखलाई जाती है। विदेशियों पर आक्षेप करना बहुत सहज है परन्तु छिद्रान्वेषकों को न्याय से अपनी ओर भी देखना चाहिए और विचारना चाहिए कि वे लोग स्वयम् कहाँ तक निर्दोष हैं।"
रानाडे ने इतना कह कर अपने देश की नीच जातियों के साथ भिन्न भिन्न प्रान्तों में किये जाने वाले व्यवहारों का दिग्दर्शन कराया। इसका वर्णन ऐसे करुण शब्दों में किया गया कि सुनने वाले लज्जा, दु ख और ग्लानि से पानी पानी हो गए। महात्मा ने ठीक ही पूछा कि उन लोगों के लिये जो स्वदेश में ऐसे घृणित अन्याय और अत्याचार को बिना जिह्वा हिलाए सह लेते हैं, विदेशियों पर सब प्रकार का दोषा रोपण करना कहाँ तक न्याय-सङ्गत है? अतएव यह प्रश्न पहले तो सब प्रकार से न्याय की दृष्टि से देखने योग्य है, फिर मनुष्यत्व की दृष्टि से।

प्राय प्रतिवादियों का कहना है कि यदि हमारे देश में जातिपाति के भेद हैं तो पाश्चात्य देशों में भी अनेक दल-बन्दियाँ हैं। इस विषय में दोनो देशों में बहुधा बहुत कम विभिन्नता है। परन्तु थोडे विचार ही से मालूम हो जायगा कि यह सादृश्य बिलकुल भूल है। पाश्चात्य दलों में कोई विशेष अन्तर नहीं है, हमारी जातियों की तरह उनके बीच में लोहे की मजबूत दीवारें नहीं गडी की गई हैं। मिस्टर चेम्बरलेन जो आज दिन ब्रटिश सम्राज्य के गण्यमान्य व्यक्ति है एक दिन चमार का और फाटा बनाने वाले का काम करते थे। मेरे कहने का यह मतलब नहीं कि चेम्बरलेन स्वय चमार का काम करते थे, परन्तु वह चमडे के व्यवसाय से रुपया पैदा करते थे। आज चेम्बरलेन सम्राट के साथ भोजन करते

हैं, और देश के सर्वप्रधान व्यक्तियों के संग पूर्णरूप से बराबरी का दर्जा रखकर व्यवहार करते हैं। मैं पूछता हूँ कि क्या कभी कोई भी मद्रासी चमार भारतवर्ष में इसी प्रकार सामाजिक समानता पा सकता है ? एक बड़े लेखक का कथन है कि जातिभेद समाज की रक्षा के लिये अत्यावश्यक है, परन्तु उसी भांति अभ्युदय के पथ का बाधक भी है। और मैं भी इस बातका अनुमोदन करता हूं। आप यदि हजार वर्ष पहले वाले स्थान पर ही जमे रहना चाहते हैं तब तो अवश्य ही जाति भेद के उठाने की आवश्यकता नहीं, परन्तु यदि आप उस कीचड़ से जिस में फंसे आपको इतने दिन हुए अब निकलने के इच्छुक हों तब तो आपका पुराने लकीर के फकीर बनने में निस्तार नहीं। वर्तमान सभ्यता ने समानता को अपना मूल मंत्र समझा है और ऊँचाई निचाई के पुराने जमाने के व्यापक विचारों का बहिष्कार होने लगा है। आजकल मनुष्यत्व का उद्देश्य यही माना जाता है कि हम लोग पददलित स्वदेशवासियों की अवस्था को उन्नत करके उनके स्वत्वों का सम्मान करें।

अन्त में, सज्जनो ! यह राष्ट्रीय स्वार्थ का प्रश्न है। यदि स्वदेशवासियों के अधिकाश को अविद्या, मूर्खता और अन्धकार के गड्ढे में पड़ा हुआ छोड़ दें तो किस प्रकार हम लोग अपने राष्ट्रीय लालसाओं को पूरा कर सकेंगे ? कैसे विश्व के उन्नत राष्ट्रों के बीच हम लोगों का नाम गिना जायगा ? जब तक हमारे ये देशवासी नैतिक तथा मानसिक उन्नति के द्वारा शनैः २ उच्च स्थान पर नहीं उठाये जायगे तब तक यह कब सम्भव है कि वे लोग हम लोगों के विचारों और आशाओं में योग देकर हम लोगों के उद्योग में हाथ उठावें। आप विचार

नही करते हैं कि राष्ट्रीय उन्नति के कामों में इन अधिकांश भाइयों का जोश हम लोगों को बिना उनकी सहायता किये कैसे प्राप्त हो सकता है। मैं समझता हूँ कि विचारशील और विवेचक महात्मा विवेकानन्द ने इस मत को पूरे तौर से ग्रहण किया था। मेरा विचार है कि जब तक नीच जातियाँ हम लोगों का काम में हाथ नही बंटाती तब तक हम लोग एक राष्ट्र के नाम से कहे जाने के योग्य हो ही नहीं सकते।

मैं पूछता हूँ कि क्या यह आत्म गौरव की बात है कि ये नीच जातियाँ, अब तक अभागी हिन्दू जाति के विशाल पक्षों के नीचे पड़ी हैं, हमारे द्वार से दुतकारी जायँ, धक्के खायँ और ईसाइयत के शुभ नाम के स्पर्शमात्र ही से, कोट, पैन्ट और हैट के धारण करते ही, हम से हाथ मिलाने के योग्य हो जायँ और सभी प्रकार सभ्य कहे जाने लगें? कोई भी बुद्धिमान मनुष्य इस अवस्था को सन्तोषजनक न कहेगा। मैं यह नहीं कहता कि ये जातियाँ एकबारगी उन्नत हो कर देश की उच्च जातियों के तुल्य हो जायँ; और ऐसी किसी की आशा भी नहीं। यह काम अवश्य शनै २ होगा और यह हो भी तभी सकता है जब इनको पूरा विद्यादान दिया जाय और इनकी स्थिति अच्छी बनाई जाय। मेरा विश्वास है कि भारत वर्ष की वर्तमान अवस्था में इस काम से बढ़ कर पवित्र और उच्च कार्य नहीं हो सकता। यदि शिक्षित युवकों के लिए इस समय कोई सामाजिक सुधार का सर्वोच्च कार्य ऐसा है जिस में उन लोगों को अपनी सारी शक्ति लगा देनी चाहिए तो वह यही है, यही है। उन सौ, सौ ग्रेज्युएटों के बीच जिन्हें प्रति वर्ष युनिवर्सिटी उत्पन्न है क्या कुछ मनुष्य, पांच सैकड़े, चार सैकड़े, तीन सैकड़े, अजी, एक सैकड़े भी ऐसे नहीं जो

इस पवित्र कार्य में अपने को सर्वथा समर्पण करने के लिये तैयार हों? मेरी यह प्रार्थना प्रौढ़ों और वृद्धों से नहीं है जिनका जीवन एक न एक प्रकार से किसी काम के साथ लग गया है बल्कि मैं उन नवयुवकों से अपील करता हूँ जिन्हों ने अभी तक यह निश्चय नहीं कर लिया है कि उनका भविष्य क्या होगा और जिनको अपनी प्राप्त विद्या को योग्यकार्य में लगाने की वास्तविक अभिलाषा है। वर्तमान समय में देश की सब से बड़ी आवश्यकता शिक्षित युवकों में आत्मत्याग का उत्पन्न होना है, और वे लोग मेरी बातों का विश्वास करें कि इन नीच जातियों की मानसिक और चरित्र सम्बन्धी उन्नति और उनके हितसाधन से बढ़ कर और कोई ऐसा शुभकार्य नहीं जिस में ये लोग अपने बहुमूल्य जीवन को समर्पित करें।

प्राथमिक शिक्षा सम्बन्धी क़ानून का मसौदा

(१६ मार्च सन् १६११ ई० को माननीय मि० गोखले ने बड़ी व्यवस्थापक सभा में प्रारम्भिक शिक्षा सम्बन्धी कानून का मसौदा पेश करते हुए निम्न लिखित वक्तृता दी थी —)

श्रीमन् महोदय ! मैं आप की आज्ञा चाहता हूँ कि एक कानून का मसौदा कौंसिल के समक्ष पेश करूं, जिस का उद्देश्य यह है कि सारे भारतवर्ष में प्राथमिक शिक्षा के प्रचार का परमोत्तम प्रबन्ध किया जाय।

कौंसिल के सदस्य महानुभावों को विदित होगा कि पिछले साल इन्हीं दिनो मैंने एक प्रस्ताव पेश करने का सहास किया था, जिसका उद्देश्य यह था कि प्राथमिक शिक्षा सारे भारतवर्ष में मुफ्त और अनिवार्य्य कर दी जाय, और शासकों का एक कमीशन नियुक्त किया जाय जो इसके सम्बन्ध में उचित मन्तव्य सोचे। उस अवसर पर जो विवाद हुआ था उसमें होम सदस्य, होम मंत्री और शिक्षा विभाग के डाइरेक्टर जनरल को सम्मिलित करके कौंसिल के १५ सदस्यों ने बहस की थी। उस समय तक शिक्षा के लिए कोई मुख्य विभाग इस कौंसिल में न था और शिक्षा विभाग पुलीस और जेल विभागों के साथ साथ होम डिपार्टमेन्ट ही में शामिल था। विवाद के अनतर जब होम सदस्य ने इस बात का विश्वास दिलाया कि इस प्रश्न पर गवर्नमेन्ट भली भाति विचार करेगी तो प्रस्ताव उस समय वापस ले लिया गया।

महाशय ! अब इस बात को १२ महीने से अधिक समय बीत चुका और इतने अर्से में इस मामले में पूरी उन्नति हुई

है। और एक तरह से तो इस मामले ने आशा से अधिक तरक्की की है, अर्थात् मेरे अनुमान से भी अधिक। इस विषय में मेरा एक प्रस्ताव यह था कि इस कौंसिल में शिक्षा विभाग का एक मन्त्री रहना चाहिये और *क्रमश* फिर एक सदस्य भी रक्खा जाय, जिसके सिपुर्द केवल शिक्षा सम्बन्धी काम हो। सन्तोष की बात है कि गवर्नमेन्ट ने एक साथ ही शिक्षा विभाग को पृथक् कर दिया और माननीय मिस्टर बटलर साहब उस शिक्षा विभाग के उच्च अधिकारी नियुक्त किये गये। इनकी नियुक्ति पर सब ने सन्तोष प्रकट किया है और सब लोग इनसे सहमत हैं कि बटलर साहब वास्तव में बड़े निपुण और कार्यशील हैं। परन्तु कार्य शीलता से भी अधिक जिस बात की आवश्यकता थी और जिसका मैं सम्मान करता हूँ वह यह है कि भारतवर्ष की उष्णता से उनकी उदारता और सहानुभूति के जोश की धारा अभी तक तनिक भी खुश्क नहीं हुई है। यह जोश वह चीज है जो आरम्भ में थोड़ा बहुत सभी में होती है और जिसके बिना मनुष्य का उन्नति सम्बन्धी कोई भी कार्य्य पूरा नहीं हो सकता।

महोदय! मेरा अनुमान है कि शिक्षा विभाग के स्थापित होने से हमको यह आशा रखना चाहिए कि वह समय जब समस्त भारतवर्ष में प्राथमिक शिक्षा का प्रचार हो जायगा, अब निकट आता जाता है। और देश में शिक्षा को व्यापक बनाने के विषय में लोगों की राय शक्तिशाली होती जा रही है। इससे स्पष्ट है कि गत वर्ष के विवाद के अनन्तर इस मामले पर समाचार पत्रों में अधिक जोर दिया गया है और गत दिसम्बर में केवल भारतवर्ष की जातीय कांग्रेस ही ने प्रयाग में इसके अनुकूल प्रस्ताव नहीं पास किया, बल्कि

मुसलिम लीग ने भी, जिसका वार्षिकोत्सव नागपुर में हुआ था इसके पक्ष में राय दी। इसी तरह गवर्नमेन्ट की ओर से भी उस घोषणा-पत्र से, जो गत जौलाई में हौस आफ कामन्स में नये शिक्षा विभाग के स्थापित होने पर प्रकाशित किया गया था, यही प्रकट होता है। अण्डर सेक्रेटरी महोदय ने कहा था कि शिक्षा-विभाग के स्थापित करने का एक उद्देश्य यह भी है कि भारतवर्ष में प्राथमिक शिक्षा का प्रचार अच्छी तरह हो। और उन महत्व पूर्ण शब्दों से, जो श्रीमान् ने जातीय कांग्रेस के अभिनन्दन पत्र के उत्तर में शिक्षा के सम्बन्ध में कहे थे, यही प्रकट होता है। बटलर साहब की शिक्षा सम्बन्धी कान्फरेन्स से भी यही ज्ञात होता है कि गवर्नमेन्ट अब इस बात की आवश्यकता को भली प्रकार अनुभव करने लगी है कि शिक्षा सम्बन्धी मामलों में उसको अपनी चाल अच्छी तरह तेज करनी चाहिये।

इन सब बातों पर लक्ष्य रखते हुए, मेरी राय में यह अवसर इस काम के लिए बहुत उपयुक्त जान पड़ता है कि हम कौंसिल और देश के सामने शिक्षा के मार्ग में आगे बढ़ने का प्रस्ताव पेश करें, जो इस मसौदे का मुख्य उद्देश्य है। और मैं आशा करता हूँ कि कौंसिल इस मसौदे को पेश करने की बात स्वीकार करेगी।

श्रीमन्महोदय! मैं विश्वास करता हूँ कि गवर्नमेन्ट ने मेरे उन प्रस्तावों पर, जो मैंने गतवर्ष इस विषय में पेश किये थे अच्छी तरह विचार कर लिया होगा। और मैं आशा करता हूँ कि माननीय मेम्बर महोदय मुझे सूचित करेंगे कि उन्होंने उससे क्या, क्या परिणाम निकाले हैं।

जिस बात पर मैंने अधिक ध्यान दिलाया है वह यह है कि सारे भारतवर्ष में, जहा तक प्राथमिक शिक्षा का जिक्र है, गवर्नमेन्ट उसको धीरे धीरे अनिवार्य और मुफ्त कर देने की चेष्टा आरम्भ करे। और यही प्रस्ताव इस मसौदे में भी है जिसे मैं पेश कर रहा हूँ। श्रीमन्, अर्द्ध शताब्दी से अधिक समय व्यतीत हुआ, एक विद्वान अमेरिकन ने अपनी वक्तृता में अपने देशवासियों से कहा था कि यदि उसमें कोई ऐसी अद्भुत शक्ति होती कि वह अपनी वक्तृता से संसार की सारी जातियों को होशियार कर सकता तो उसे केवल यही कहना था कि तुम "अपने बालकों को शिक्षा दो, अपने सब बालकों को शिक्षा दो, अपने बालकों में से प्रत्येक को शिक्षा दो।" वक्ता की इस सिद्धान्त से प्रकट होने वाली असाधारण बुद्धिमता और मनुष्योचित सहानुभूति के प्रभाव को सारा देश अनुभव कर चुका है। और अब लगभग प्रत्येक सभ्य देश में वहा की गवर्नमेन्ट इस कर्त्तव्य को अपना मुख्य कर्तव्य मानने लगी है। यदि प्राथमिक शिक्षा का लाभ सिर्फ इतना ही समझा जाय कि इस से हम लिखना पढ़ना सीख जायगे, तो भी इसका प्रचार सारे देश में करना कोई छोटी बात नहीं है। नितान्त निरक्षरता की अपेक्षा थोड़े बहुत लिखने पढ़ने का भी यदि देश में प्रचार हो जाय तो बहुत बड़ी बात होगी। परन्तु सर्वसाधारण की प्राथमिक शिक्षा का केवल यही अर्थ नहीं कि लिखने पढ़ने की थोड़ी सी योग्यता जिन लोगों को हो जाती है बल्कि इसका यह अर्थ है कि वे मनुष्य जीवन का महत्व समझने लगते हैं, उनका जीवन सुधर जाता है और वे अच्छे रास्ते पर आजाते हैं। इसका यह परिणाम होता है कि हर मनुष्य की सभ्यता और शिक्षा का मूल्य बढ़

मुसलिम लीग ने भी, जिसका वार्षिकोत्सव नागपुर में हुआ था इसके पक्ष में राय दी। इसी तरह गवर्नमेन्ट की ओर से भी उस घोषणा-पत्र से, जो गत जौलाई में हौस आफ कामन्स में नये शिक्षा विभाग के स्थापित होने पर प्रकाशित किया गया था, यही प्रकट होता है। अंडर-सैक्रेटरी महोदय ने कहा था कि शिक्षा-विभाग के स्थापित करने का एक उद्देश्य यह भी है कि भारतवर्ष में प्राथमिक शिक्षा का प्रचार अच्छी तरह हो। और उन महत्व पूर्ण शब्दों से, जो श्रीमान् ने जातीय काग्रेस के अभिनंदन पत्र के उत्तर में शिक्षा के सम्बन्ध में कहे थे, यही प्रकट होता है। बटलर साहब की शिक्षा सम्बन्धी कान्फरेन्स से भी यही ज्ञात होता है कि गवर्नमेन्ट अब इस बात की आवश्यकता को भली प्रकार अनुभव करने लगी है कि शिक्षा सम्बन्धी मामलों में उसको अपनी चाल अच्छी तरह तेज करनी चाहिये।,

इन सब बातों पर लक्ष्य रखते हुए, मेरी राय में यह अवसर इस काम के लिए बहुत उपयुक्त जान पड़ता है कि हम कौंसिल और देश के सामने शिक्षा के मार्ग में आगे बढ़ने का प्रस्ताव पेश करें, जो इस मसौदे का मुख्य उद्देश्य है। और मैं आशा करता हूँ कि कौंसिल इस मसौदे को पेश करने की बात स्वीकार करेगी।

श्रीमन्महोदय! मैं विश्वास करता हूँ कि गवर्नमेन्ट ने मेरे उन प्रस्तावों पर, जो मैंने गतवर्ष इस विषय में पेश किये थे अच्छी तरह विचार कर लिया होगा। और मैं आशा करता हूँ कि माननीय मेम्बर महोदय मुझे सूचित करेंगे कि उन्होंने उससे क्या, क्या परिणाम निकाले हैं।

जिस बात पर मैंने अधिक ध्यान दिलाया है वह यह है कि सारे भारतवर्ष में, जहां तक प्राथमिक शिक्षा का ज़िक्र है, गवर्नमेन्ट उसको धीरे धीरे अनिवार्य और मुफ़्त कर देने की चेष्टा आरम्भ करे। और यही प्रस्ताव इस मसौदे में भी है जिसे मैं पेश कर रहा हूँ। श्रीमन्, अर्द्ध शताब्दी से अधिक समय व्यतीत हुआ, एक विद्वान अमेरिकन ने अपनी वक्तृता में अपने देशवासियों से कहा था कि यदि उसमें कोई ऐसी अद्भुत शक्ति होती कि वह अपनी वक्तृता से संसार की सारी जातियों को होशियार कर सकता तो उसे केवल यही कहना था कि तुम "अपने बालकों को शिक्षा दो, अपने सब बालकों को शिक्षा दो, अपने बालकों में से प्रत्येक को शिक्षा दो।" वक्ता की इस सिद्धान्त से प्रकट होने वाली असाधारण बुद्धिमता और मनुष्योचित सहानुभूति के प्रभाव को सारा देश अनुभव कर चुका है। और अब लगभग प्रत्येक सभ्य देश में वहां की गवर्नमेन्ट इस कर्तव्य को अपना मुख्य कर्तव्य मानने लगी है। यदि प्राथमिक शिक्षा का लाभ सिर्फ इतना ही समझा जाय कि इस से हम लिखना पढ़ना सीख जायगे, तो भी इसका प्रचार सारे देश में करना कोई छोटी बात नहीं है। नितान्त निरक्षरता की अपेक्षा थोड़े बहुत लिखने पढ़ने का भी यदि देश में प्रचार हो जाय तो बहुत बड़ी बात होगी। परन्तु सर्वसाधारण की प्राथमिक शिक्षा का केवल यही अर्थ नहीं कि लिखने पढ़ने की थोड़ी सी योग्यता उन लोगों को हो जाती है वलिक इसका यह अर्थ है कि वे मनुष्य जीवन का महत्व समझने लगते हैं, उनका जीवन सुधर जाता है और वे अच्छे रास्ते पर आजाते हैं। इसका यह परिणाम होता है कि हर मनुष्य की सभ्यता और शिष्टता का मूल्य बढ़

जाता है, और जाति में ज्ञान और बुद्धि की पूंजी में वृद्धि होती है। जो आदमी इन बातों के महत्त्व को नहीं समझता उसके लिए यह भी कोई बड़ी बात नहीं कि वह आरोग्यता पर उत्तम जल वायु से पड़ने वाले प्रभाव को भी मिथ्या समझे। मैं अनुमान करता हूँ कि किसी गवर्नमेन्टके प्रजावात्सल्य का अंदाजा इस बात से भलीभांति लगाया जा सकता है कि वह अपनी प्रजा में सर्व साधारण की शिक्षा के सम्बन्ध में अपना कर्त्तव्य कहां तक पालन करती है। अतएव यदि हम इसी ख्याल से इस देश की गवर्नमेन्ट के गुणों का अन्दाजा करें तो हमको अवश्य यह कहना पड़ेगा कि यहां की गवर्नमेन्ट को अब जागना चाहिये और पहले की अपेक्षा अपने कर्त्तव्य-पालन की ओर अधिक ध्यान देना और उसे पूरा करने के लिए कटिबद्ध होना चाहिये। इसके पहले कि इसकी गणना उचित रीति से संसार के अन्य सभ्य राज्यों के साथ की जाय, यह देखना जरूरी है कि यहां पर शिक्षा का प्रचार कितना है। कितने लोग लिख पढ़ सकते हैं या इस समय कुल जन संख्या में से पाठशालाओं में शिक्षा पाने वाले विद्यार्थियों की संख्या क्या है? प्राथमिक शिक्षा के लिए कितना धन व्यय किया जाता है। और किन सिद्धान्तों पर शिक्षा दी जा रही है। इन में से किसी बात पर लक्ष्य रख कर देखा जाय तो विदित होगा कि संसार के अन्य सभ्य देशों की अपेक्षा अभी भारत वर्ष बहुत पीछे घसिट रहा है। यदि केवल पढ़े लिखों की संख्या के हिसाब से देखिये तो १९०१ ई० की जन संख्या से प्रकट होता है कि भारतवर्ष में केवल ६ फी सैकड़ा आदमी लिख पढ़ सकते थे। इसके विरुद्ध योरूप के सब से पिछड़े हुए देश, रूस, में ३० फी सैकड़ा मनुष्य ऐसे हैं जो लिखे

पढ़े कहे जा सकते हैं। और उन्नत जातियों में तो योरुप, अमेरिका, आस्ट्रिया इत्यादि में ऐसे अनेक देश हैं जिनमें लगभग समस्त जन सख्या लिखना पढ़ना जानती है। उन यक्षों की सख्याओं को जो इस समय पाठशालाओं में प्राथमिक शिक्षा पा रहे हैं, मैं अपनी गत वर्ष की वक्तृता में से एकबार फिर उद्धृत करूंगा --

सयुक्त प्रदेश अमेरिका में कुल जन सख्या में से २१ फी सैकडा इस समय पाठशालाओं में प्राथमिक शिक्षा पा रहे हैं। केनाडा, आस्ट्रेलिया, इंगलैण्ड, स्विट्जरलैंड में यह सख्या १० से २० प्रति सैकडा तक पाई जाती है। आस्ट्रिया, नार्वे, नीदरलैण्ड में १५ और १७ के मध्य में, फ्रान्स में १४ प्रति सैकडा से कुछ अधिक, डेन्मार्क में १३ फी सैकडा, स्वीडन में १४ फी सदी, बेलजियम में १२, जापान में ११ प्रति सैकडा पाठशालाओं में प्राथमिक शिक्षा पा रहे हैं। इटली, यूनान और स्पेन में यह संख्या ८ और १ के बीच में है और पुर्तगाल और रूस में ४-५ के दर्मियान। इसके विरुद्ध भारतवर्ष में केवल १.९ ।

शिक्षा पद्धति पर ध्यान दीजिये तो विदित होगा कि अधिकांश देशों में प्राथमिक शिक्षा मुफ्त और अनिवार्य है और किसी किसी में अनिवार्य है, पर इस विषय में अधिक सख्ती वहा नहीं की जाती है। परन्तु यदि भारतवर्ष की ओर दृष्टिपात कीजिये तो यहा न मुफ्त है, न अनिवार्य ! इंगलैंड, आयरलैण्ड, फ्रान्स, जर्मनी, स्विट्जरलैंड, आस्ट्रिया, हंगरी इटली, बेलजियम, डेन्मार्क, नार्वे, स्वीडन, अमेरिका आस्ट्रेलिया, केनाडा और जापान में मुफ्त और अनिवार्य दोनो ही हैं, और सामान्यत ६ वर्ष के लिए, बल्कि कई दशाओं में नौवर्ष

तक के लिए, अनिवार्य करदी गई हे। हालैंड मे अनिवार्य है, परन्तु मुफ्त नहीं हे। स्पेन, पुर्तगाल, यूनान, बलकान, सर्विया और रूमानिया में मुफ्त है और यद्यपि कानूनन् अनिवार्य भी है, परन्तु इनके लिए कोई सख्ती नहीं की जाती। टर्की में भी मुफ्त है और नाममात्र के लिए अनिवार्य है। रूस में अनिवार्य नहीं है तथापि एक नियत सीमा तक मुफ्त है।

अब यदि समस्त देशों के फी आदमी के व्यय का हिसाब लगा कर देखा जाय तो भी यही प्रकट होता है कि भारतवर्ष ही सबसे पीछे है। संयुक्त प्रदेश, अमेरिका, में सब से अधिक, अर्थात् फी आदमी की शिक्षा के लिये १६ शिलिङ्ग व्यय किये जाते हैं। स्वीटजरलैण्ड १३ शि० ८ पेंस, आस्ट्रेलिया ११ शि० ३ पेन्स, इंगलैंड और वेल्स १० शिलिङ्ग, कैनाडा ६ शि० ८ पेन्स, स्काटलैंड ६ शिलिङ्ग ७ पेन्स, जर्मनी ६ शिलिङ्ग १० पे० आयर्लैंड ६ शि० ५ पेन्स, नीदरलैंड ६ शिलिङ्ग ४½ पेन्स, स्वीडन ५ शि० ७ पे०, बेलजियम ५ शि० ४ पे०, नार्वे ५ शि० १ पे०, फ्रांस ४ शिलिङ्ग १ पेन्स, आस्ट्रिया ३ शिलिङ्ग १½ पेन्स, स्पेन १ शिलिङ्ग १½ पेन्स, इटाली १ शिलिङ्ग ७½ पेन्स, सर्विया और जापान में एक शिलिङ्ग २ पेन्स, रूस में ७½ पेन्स और दौर्भाग्य भारत वर्ष में केवल १ पेन्स। श्री मन्महोदय! उत्तर में शायद यह कहा जा सकता है कि साधारण शिक्षा का प्रचार पाश्चात्य देशो का मुख्य उद्देश्य है और पाश्चात्य सभ्यता को भारत में आये अभी केवल एक शताब्दी हुई है। अतएव पाश्चात्य देशों से उसका मुकाबिला करना थोड़ासा अन्याय है परन्तु मेरी राय में यह विवाद मानने के योग्य नहीं, क्योंकि पाश्चात्य देशों में भी तो शिक्षा का प्रचार थोडे ही दिन से हुआ है। इसके अतिरिक्त जापान में भी, जहां पाश्चात्य सभ्यता

का विकास हुए ४० साल से अधिक समय नहीं हुआ, साधारण शिक्षा अनिवार्य रीति से प्रचलित की गई है। और यदि कहा जाय कि पाश्चात्य देशों से इसका मुकाबिला करना उचित नहीं तो भी इसका क्या जवाब है कि सीलोन, फिलपाइन और बरौदे की अपेक्षा भी भारतवर्ष क्यो बहुत पीछे पड़ा हुआ है? फिलपाइन को अमेरिका के हाथ में गये हुए अभी केवल १३ वर्ष व्यतीत हुए हैं। यह तो कहा नहीं जा सकता कि फिलपाइन के निवासी स्वाभाविक बुद्धिमत्ता अथवा शिक्षा के उत्साह में हिन्दुओं से बढे चढे हैं। तो भी इन द्वीपों में सर्व साधारण शिक्षा विभाग में ऐसी आश्चर्य-जनक उन्नति हुई है कि अमेरिका के सिद्धान्तों और उसके साहस पर हम मुक्तकंठ से उसकी प्रशंसा करते हैं। जब तक इन द्वीपों पर स्पेन का अधिकार था, वहा कोई शिक्षा पद्धति प्रचलित थी ही नहीं, जबसे अमेरिका ने उन पर अधिकार जमाया, साधारण शिक्षा का पूरा पूरा प्रबन्ध किया गया है। शिक्षा वहा मुफ्त दी जाती है पर कानून अभी अनिवार्य नहीं है, तथापि इसके प्रस्ताव वहा पेश हो रहे हैं। यहा तक उत्साह बढ़ा हुआ है कि बहुत सी म्युनिसिपैलिटियो ने अपनी आज्ञा से शिक्षा अनिवार्य कर दी है और यद्यपि वह उचित नहीं तथापि कोई उसमें कुछ विवाद नहीं करता और प्रसन्न होकर उसे स्वीकार करते हैं। वहा शिक्षा वहा कितनी जल्दी उन्नति कर रही है, इसका अनुमान इससे किया जा सकता है कि पाच बरस में १९०३ से १९०८ तक में वहा विद्यार्थियो की संख्या दूनी होगई अर्थात् २५००००से ३६०००० पर पहुँची। यदि इस संख्या का अनुमान जनसंख्या के हिसाब से किया जाय तो भी प्रति सैकडा ६ लडके वहा

शिक्षा पाते हैं। परन्तु भारतवर्ष में केवल २ प्रति सैकड़ा। सीलोन की अवस्था दक्षिण-भारत से बहुत कुछ मिलती हुई है, तथापि शिक्षा के विषय में सीलोन भारतवर्ष से कहीं अच्छा है। वहां प्राथमिक-शिक्षा का प्रबन्ध दो प्रकार से है। एक तो सरकारी स्कूलों के द्वारा और दूसरे इम्दादी पाठशालाओं के द्वारा। ¼ के लगभग तो सरकारी स्कूलों में पढ़ते हैं और ¾ इम्दादी पाठशालाओं में। सरकारी स्कूलों में बहुत अर्से से शिक्षा अनिवार्य है, और यदि इसमें माता पिता कुछ विवाद करें तो स्थानीय अदालत के समक्ष वे उत्तरदाता होते हैं और उन पर जुर्माना भी हो सकता है। सं० १९०१ में एक कमेटी नियुक्त की गई थी जो गवर्नमेन्ट की ओर से शिक्षा प्रचार के उपाय सोचे। उसने राय दी कि गवर्नमेन्ट मा बाप को बाध्य करे कि वह अपने लड़को को प्राथमिक शिक्षा अवश्य दिलावें। १९०५ ई० में एक कमीशन नियुक्त किया गया था, जिसने निम्न लिखित प्रस्ताव पेश किये थे जिन्हें उपनिवेशमंत्री ने स्वीकार कर लिया। (१) यह कि उन भागों में जहां गवर्नर जनरल का शासन है, ९ बरस तक के लड़के पाठशालाओं में उपस्थित होने पर बाध्य किये जायँ। (२) फीस न ली जाय। (३) बालको की शिक्षा का प्रबन्ध अधिक ध्यान देकर किया जाय। (४) हर जिले में पृथक् पृथक कमेटियां नियुक्त की जायँ जो शिक्षा का निरीक्षण करे। (५) सड़को के महसूल जो आमदनी होती है वह इन कमेटियों को सौंप दी जाय जिससे वह एक शिक्षा फंड स्थापित करें। पहली बार १९०८ ई० में इन नियमो के अनुसार १६ जिलों में कारवाई की गई। और १९०९ ई० की सरकारी रिपोर्ट में निम्नलिखित वाक्यो का उल्लेख है —"अब तक कुछ कठिनाइयां उपस्थित

नहीं हुई और इम्दादी पाठशालाओं के प्रबन्धकों को जिन कठिनाइयों का भय था वे सब निर्मूल होंगी। और आशा की जाती है कि वर्ष के अन्त तक सब जिलों में भली भांति उक्त कारवाई प्रचलित होजायगी"। १६०१ में उन विद्यार्थियों की कुल संख्या जो प्राथमिक शिक्षा पा रहे थे, २३७००० थी, जिससे यह निष्कर्ष निकलता है कि कुल जन संख्या में से ६.१/८ प्रति सैकड़ा शिक्षा पा रहे हैं।

- भारतवर्ष की सीमा के भीतर महाराज गायकवाड़ ने शिक्षा-प्रचार के लिये जिस तल्लीनता के साथ उद्योग किया है उसके लिये वे हम सब से कोटिश धन्यवाद के भाजन हैं। १८ वर्ष हुए जब महाराजा साहब ने अपने राज्य के अमरैली तालुके के देहातों में मुफ्त और अनिवार्य शिक्षा का मूल स्थापित किया और क्रमश आठ वर्ष के भीतर पूरे तालुके में शिक्षा मुफ्त और अनिवार्य कर दी गई। अन्त में सन् १६०७ ई० में प्राथमिक शिक्षा १२ बरस के लड़कों और ६ से १० साल तक की लड़कियों के लिए सारे राज्य में मुफ्त और अनिवार्य हो गई। अब लड़कियों की अवस्था १० से ११ साल कर दी गई है। गत दो बरस की बड़ौदा राज्य की शिक्षा सम्बन्धी रिपोर्ट बड़ी चित्ताकर्षक है, जिससे प्रकट होता है कि १६०६ में विद्यार्थियों की संख्या १६५,०००थी जिससे ज्ञात होता है कि आठ प्रति सैकड़ा पाठशालाओं में शिक्षा पा रहे थे। यदि पाठशालाओं में जाने वाले लड़कों का हिसाब लगाया जाय तो ७६.१/८ प्रति सैकड़ा पाठशालाओं में पढ़ते थे। इसके विरुद्ध बृटिश भारत में केवल २१.१/८ प्रति सैकड़ा पाठशालाओं में हैं। पाठशालाओं में जाने वाली लड़कियों की संख्या उक्त राज्य में ४७ और ब्रिटिशभारत में ४

शिक्षा पाते हैं। परन्तु भारतवर्ष में केवल २ प्रति सैकड़ा! सीलोन की अवस्था दक्षिण-भारत से बहुत कुछ मिलती हुई है, तथापि शिक्षा के विषय में सीलोन भारतवर्ष से कहीं अच्छा है। यहां प्राथमिक-शिक्षा का प्रबन्ध दो प्रकार से है। एक तो सरकारी स्कूलों के द्वारा और दूसरे इम्दादी पाठशालाओं के द्वारा। $\frac{1}{2}$ के लगभग तो सरकारी स्कूलों में पढ़ते हैं और $\frac{1}{2}$ इम्दादी पाठशालाओं में। सरकारी स्कूलों में बहुत अर्से से शिक्षा अनिवार्य है, और यदि इसमें माता-पिता कुछ विवाद करें तो स्थानीय अदालत के समक्ष वे उत्तरदाता होते हैं और उन पर जुर्माना भी हो सकता है। सं० १९०१ में एक कमेटी नियुक्त की गई थी जो गवर्नमेन्ट की ओर से शिक्षा प्रचार के उपाय सोचे। उसने राय दी कि गवर्नमेन्ट मा बाप को बाध्य करे कि वह अपने लड़को को प्राथमिक शिक्षा अवश्य दिलावें। १९०५ ई० में एक कमीशन नियुक्त किया गया था, जिसने निम्न लिखित प्रस्ताव पेश किये थे जिन्हें उपनिवेशमंत्री ने स्वीकार कर लिया। (१) यह कि उन भागों में जहां गवर्नर जनरल का शासन है, ६ बरस तक के लड़के पाठशालाओं में उपस्थित होने पर बाध्य किये जायँ। (२) फीस न ली जाय। (३) बालको की शिक्षा का प्रबन्ध अधिक ध्यान देकर किया जाय। (४) हर जिले में पृथक् पृथक कमेटिया नियुक्त की जायँ जो शिक्षा का निरीक्षण करे। (५) सड़को के महसूल जो आमदनी होती है वह इन कमेटियों को सौंप दी जाय जिससे वह एक शिक्षा फंड स्थापित करें। पहली बार १९०८ ई० में इन नियमो के अनुसार १६ जिलों में कारर्वाई की गई। और १९०६ ई० की सरकारी रिपोर्ट में निम्नलिखित वाक्यो का उल्लेख है —"अब तक कुछ कठिनाइयां उपस्थित

नहीं हुई और इन्दादी पाठशालाओं के प्रबन्धको को जिन कठिनाइयो का भय था वे सब निर्मूल होंगी। और आशा की जाती है कि वर्ष के अन्त तक सब जिलों में भली भांति उक्त कारखाई प्रचलित होजायगी"। १६०१ में उन विद्यार्थियो की कुल सख्या जो प्राथमिक शिक्षा पा रहे थे, २३७००० थी, जिससे यह निष्कर्ष निकलता है कि कुल जन संख्या में से ६,१/४ प्रति सैकड़ा शिक्षा पा रहे हैं।

- भारतवर्ष की सीमा के भीतर महाराज गायकवाड ने शिक्षा-प्रचार के लिये जिस तल्लीनता के साथ उद्योग किया है उसके लिये वे हम सब से कोटिश धन्यवाद के भाजन हैं। १८ वर्ष हुए जब महाराजा साहब ने अपने राज्य के अमरैली तालुके के देहातों में मुफ्त और अनिवार्य शिक्षा का मूल स्थापित किया और क्रमश आठ वर्ष के भीतर पूरे तालुके में शिक्षा मुफ्त और अनिवार्य कर दी गई। अन्त में सन् १६०७ ई० में प्राथमिक शिक्षा १२ बरस के लडकों और ६ से १० साल तक की लड़कियों के लिए सारे राज्य में मुफ्त और अनिवार्य हो गई। अब लड़कियों की अवस्था १० से ११ साल कर दी गई है। गत दो बरस की बडौदा राज्य की शिक्षा सम्बन्धी रिपोर्ट बडो चित्ताकर्षक है, जिससे प्रकट होता है कि १६०६ में विद्यार्थियों की सख्या १६५,०००थी जिससे ज्ञात होता है कि आठ प्रति सैकडा पाठशालाओं में शिक्षा पा रहे थे। यदि पाठशालाओं में जाने वाले लड़कों का हिसाब लगाया जाय तो ७६,१/४ प्रति सैकडा पाठशालाओं में पढ़ते थे। इसके विरुद्ध बृटिश भारत में केवल २१,१/४ प्रति सैकडा पाठशालाओं में हैं। पाठशालाओं में जाने वाली लड़कियों की सख्या उक्त राज्य में ४७ और ब्रिटिशभारत में ४

शिक्षा पाते हैं। परन्तु भारतवर्ष में केवल २ प्रति सैकड़ा! सीलोन की अवस्था दक्षिण-भारत से बहुत कुछ मिलती हुई है, तथापि शिक्षा के विषय में सीलोन भारतवर्ष से कहीं अच्छा है। वहा प्राथमिक-शिक्षा का प्रबन्ध दो प्रकार से है। एक तो सरकारी स्कूलों के द्वारा और दूसरे इम्दादी पाठशालाओं के द्वारा। ⅓ के लगभग तो सरकारी स्कूलों में पढ़ते हैं और ⅔ इम्दादी पाठशालाओं में। सरकारी स्कूलों में बहुत अर्से से शिक्षा अनिवार्य है, और यदि इसमें माता पिता कुछ विवाद करें तो स्थानीय अदालत के समक्ष वे उत्तरदाता होते हैं और उन पर जुर्माना भी हो सकता है। सं० १६०१ में एक कमेटी नियुक्त की गई थी जो गवर्नमेन्ट की ओर से शिक्षा प्रचार के उपाय सोचे। उसने राय दी कि गवर्नमेन्ट मा बाप को बाध्य करे कि वह अपने लड़को को प्राथमिक शिक्षा अवश्य दिलावें। १६०५ ई० में एक कमीशन नियुक्त किया गया था, जिसने निम्न लिखित प्रस्ताव पेश किये थे जिन्हें उपनिवेशमंत्री ने स्वीकार कर लिया। (१) यह कि उन भागों में जहा गवर्नर जनरल का शासन है, ६ बरस तक के लड़के पाठशालाओं में उपस्थित होने पर बाध्य किये जायँ। (२) फीस न ली जाय। (३) बालको की शिक्षा का प्रबन्ध अधिक ध्यान देकर किया जाय। (४) हर जिले में पृथक् पृथक कमेटिया नियुक्त की जायँ जो शिक्षा का निरीक्षण करे। (५) सड़को के महसूल जो आमदनी होती है वह इन कमेटियों को सौंप दी जाय जिससे वह एक शिक्षा फंड स्थापित करें। पहली बार १६०८ ई० में इन नियमो के अनुसार १६ जिलों में कारवाई की गई। और १६०६ ई० की सरकारी रिपोर्ट में निम्नलिखित वाक्यो का उल्लेख है —"अब तक कुछ कठिनाइया उपस्थित

नहीं हुई और इम्दादी पाठशालाओं के प्रबन्धको को जिन कठिनाइयो का भय था वे सब निमूल होंगी। और आशा की जाती है कि वर्ष के अन्त तक सब जिलों में भली भांति उक्त काररवाई प्रचलित होजायगी"। १६०१ में उन विद्यार्थियो की कुल सख्या जो प्राथमिक शिक्षा पा रहे थे, २३७००० थी, जिससे यह निष्कर्ष निकलता है कि कुल जन संख्या में से ६,१/६ प्रति सैकड़ा शिक्षा पा रहे हैं।

- भारतवर्ष की सीमा के भीतर महाराज गायकवाड़ ने शिक्षा-प्रचार के लिये जिस तल्लीनता के साथ उद्योग किया है उसके लिये वे हम सब से कोटिश धन्यवाद के भाजन हैं। १८ वर्ष हुए जब महाराजा साहब ने अपने राज्य के अमरैली तालुके के देहातों में मुफ्त और अनिवार्य शिक्षा का मूल स्थापित किया और क्रमश आठ वर्ष के भीतर पूरे तालुके में शिक्षा मुफ्त और अनिवार्य कर दी गई। अन्त में सन् १६०७ ई० में प्राथमिक शिक्षा १२ बरस के लड़कों और ६ से १० साल तक की लड़कियों के लिए सारे राज्य में मुफ्त और अनिवार्य हो गई। अब लड़कियों की अवस्था १० से ११ साल कर दी गई है। गत दो बरस की बड़ौदा राज्य की शिक्षा सम्बन्धी रिपोर्ट बड़ी चित्ताकर्षक है, जिससे प्रकट होता है कि १६०८ में विद्यार्थियों की सख्या १६५,०००थी जिससे ज्ञात होता है कि आठ प्रति सैकड़ा पाठशालाओं में शिक्षा पा रहे थे। यदि पाठशालाओं में जाने वाले लड़कों का हिसाब लगाया जाय तो ७६१/६ प्रति सैकड़ा पाठशालाओं में पढ़ते थे। इसके विरुद्ध वृटिश भारत में केवल २१,१/६ प्रति सैकड़ा पाठशालाओं में हैं। पाठशालाओं में जाने वाली लड़कियों की सख्या उक्त राज्य में ४७ और ब्रिटिशभारत में ४

प्रति सैकडा है। १९०६ में प्राथमिक शिक्षा के लिए बड़ौदा राज्य में कुल ७½ लाख रुपया खर्च किया गया जो ६½ पेन्स प्रति मनुष्य पड़ता है। परन्तु वृटिश भारत में प्रति मनुष्य केवल १ पेन्स खर्च होता है, यद्यपि रकबे की दृष्टि से बड़ौदा की जन संख्या का भी सामान्यत वही औसत है, जो ब्रिटिश भारत का।

शिक्षा को अनिवार्य करने की आवश्यकता और मसौदे की कुछ शर्तों के विषय में कथन करते हुए मि० गोखले ने कहा—कि यह उस जीने की पहली सीढ़ी की ओर एक छोटासा प्रयत्न है जो बहुत बड़ा और जिसके पार करने में कठिनाइयां उपस्थित होंगी। परन्तु यदि सर्वसाधारण की दशा को उन्नत करने की आवश्यकता है तो इस जीने को अवश्य पार करना पड़ेगा। यह आवश्यक नहीं है कि इस मसौदे की सभी शर्तें एकसी अनिवार्य हों। यदि मेरे मित्र इसमें कुछ संशोधन और काट छांट करेंगे तो उस पर भी अवश्य ध्यान दिया जायगा।

श्रीमन्, यदि यह मसौदा विशेष वाद विवाद के लिए स्वीकार किया गया तो शायद एक साल के बाद यह कौंसिल के समक्ष फिर उपस्थित होगा। इस बीच में देशवासियों, सभासमितियों को इस पर राय देने और नुक्ताचीनी करने का अवसर मिलेगा। श्रीमन्, यह सर्वसाधारण शिक्षा के पूर्ण प्रचार का प्रश्न एक ऐसा प्रश्न है जो प्रजा के नेताओं और गवर्नमेन्ट के सहानुभूति पूर्ण सम्मिलन के बिना हल नहीं हो सकता है। प्रथम तो गवर्नमेन्ट को इस प्रस्ताव को अपना समझकर प्रयत्न करना चाहिये। इसके अतिरिक्त जितना रुपया इसे पूर्ण करने के लिए आवश्यक हो वह बिना किसी

सोच विचार के एकत्रित करना उचित है, जैसा अन्य देश की सभ्य गवर्नमेन्टों ने किया है। हमारी यह प्रार्थना परमावश्यक है और इसके साथ गवर्नमेन्ट की कीर्ति और प्रशंसा तथा प्रजा की भलाई पूर्ण रूप से लगी हुई है। साथ ही साथ प्रजा के नेताओं को भी बड़े उत्साह से इस काम में भरपूर भाग लेना उचित है, यदि धन या समय देने की आवश्यकता हो तो इसके लिए वे प्रस्तुत रहें। यदि थोड़ी सी अप्रसन्नता या असंतुष्टता का मौका आ जाय तो वे न झिझकें और ऐसे धैर्य और साहस से काम करें कि अनेक कठिनाइयों के होते हुए भी पैर पीछे न हटावें। श्रीमन्, मेरा अनुमान है कि यह मसौदा सौभाग्य से यदि कानून के रूप में परिणत होगया तो प्रजा के नेताओं के लिए परीक्षा का अवसर आयेगा। और मेरी अभिलाषा है कि गवर्नमेन्ट और वह दोनों इस परीक्षा में उत्तीर्ण होकर निकलें। एक और बड़ी जरूरत जिस पर मैं कईबार कौंसिल का ध्यान आकर्षित करा चुका हूँ इस समय यह है कि गवर्नमेन्ट हमको यह अनुभव करा दे कि यद्यपि किसी सीमा तक यह एक विजातीय गवर्नमेन्ट है तथापि इच्छा, उद्देश्य और सहानुभूति की दृष्टि से यह जातीय गवर्नमेन्ट से कुछ भी कम नहीं। और यह उसी दशा में सम्भव है, जब गवर्नमेन्ट अपने उन सारे उत्तरदायित्वों और कर्त्तव्यों को जान ले जो अन्य देशों में उनकी गवर्नमेन्ट अपनी प्रजा के साथ पालन करती हैं। हम भी इसी के साथ इस गवर्नमेन्ट को जातीय गवर्नमेन्ट समझने के लिये तैयार हैं। मेरी राय में कोई जातीय आवश्यकता इस समय इतने महत्व की नहीं जितनी प्रारम्भिक शिक्षा के प्रचार की है, जिसके द्वारा इस निर्जीव

ढांचे में सजीवता का सञ्चार हो, निराशा की काली निश में आशा का प्रकाश हो और जो उदास बैठे हैं उन्हें सन्तोष हो। इसमें गवर्नमेन्ट और प्रजा अपने सम्मिलित प्रयत्न से देश को पर्याप्त लाभ पहुँचा सकते हैं। यदि बिना किसी आना कानी के इसका आरम्भ कर दिया जाय और सरकार और प्रजा दोनों ही अपने प्रयत्नों से सच्चाई का प्रमाण दें तो मुझे पूर्ण आशा है कि यह कठिन मार्ग आगामी पीढ़ी के आने तक अवश्य तै हो जायगा और वे लोग अपने उद्देश्यों और कामों को नवीन उत्साह के साथ पूरा करने में लग जायँगे। हमारे लिये केवल यही सन्तोष काफी होगा कि हमने उस मार्ग को पार करने में जिसमें अभी अभीष्ट स्थान कहीं नजर नहीं आता, कुछ आगे कदम बढ़ाने की चेष्टा की।

प्रारम्भिक शिक्षा-१९१०

(१८ मार्च, १९१०, को वाइसराय की कौंसिल में माननीय मि० गोखले ने प्रारम्भिक शिक्षा के विषय में एक बडे ही महत्त्व की वक्तृता दी थी। उस वक्तृता का अनुवाद नीचे दिया जाता है —)

माई लार्ड,—मैं प्रार्थना करता हूँ कि यह कौंसिल इस प्रस्ताव को स्वीकार कर ले कि –'यह कौंसिल सम्मति देती है कि सारे देश में प्रारम्भिक शिक्षा मुफ्त और अनिवार्य कर देना प्रारम्भ कर दिया जाय और इस विषय पर विचार करने और पूर्णरूप से सम्मति देने के लिए सरकारी और गैर सरकारी मेम्बरों का एक कमीशन नियत किया जाय।'

मैं विश्वास करता हूँ कि कौंसिल इस बात का अच्छी तरह विचार करेगी कि इस प्रस्ताव का वास्तविक उद्देश्य क्या है। इस प्रस्ताव में यह नहीं कहा गया कि सारे भारतवर्ष में प्रारम्भिक शिक्षा एकदम अनिवार्य कर दी जाय। यह भी नहीं कहा गया कि सारे देश में प्रारम्भिक शिक्षा एक दम मुफ्त कर दी जाय, यद्यपि तीन वर्ष हुए कि गवर्नमेन्ट आफ इंडिया ने निश्चित रूप से इस मत का समर्थन किया था। इस प्रस्ताव का केवल यही आशय है कि देश में प्रारम्भिक शिक्षा मुफ्त और अनिवार्य कर देना प्रारम्भ कर दिया जाय और इस विषय पर विचार करने और मसौदा बनाने के लिये सरकारी और गैर सरकारी मेम्बरों का एक कमीशन नियत किया जाय। अन्य शब्दों में अब गवर्नमेंट आफ इंडिया को जनसमूह को शिक्षा देने के सम्बन्ध में पूरी तरह अपनी वही जिम्मेदारी स्वीकार करनी चाहिए जिसका अधिकांश सभ्य

गवर्नमेन्टें पालन कर रही हैं और इस नीति को सफल बनाने के लिए अच्छी तरह सोच विचार कर एक कार्य्यविवरणी तैयार होनी चाहिए जिसमें इस बात का प्रबंध रहे कि यह शिक्षा का काम उचित समय में पूरा किया जायगा। माई लार्ड, आज कल के समय में जनसमूह में शिक्षा प्रचार करने की नीति की आवश्यकता, बुद्धिमत्ता, मनुष्यता और देशभक्ति दिखाना सर्वथा अनावश्यक है। एक फ्रेंच लेखक ने उन्नीसवीं शताब्दी को उचित ही शिक्षा की शताब्दी बताया है। इसी शताब्दी में पश्चिमीय देशों में लोगों में बहुत अधिक शिक्षा का प्रचार हुआ और साथ ही और तीन बातों में बडी उन्नति हुई (१) शिल्प के कार्य्यों में विज्ञान का उपयोग (२) दूरी को मिटाने के लिए रेल और तार का प्रचार (३) और प्रजातंत्र राज्यों की उत्पत्ति। तीन बातों ने मिल कर जनसमूह की शिक्षा को राजा के कर्तव्यों में वर्तमान स्थान दिलाया है, (१) मनुष्यदया का कार्य्य जिसने जेलखानों की दशा सुधारी और दासों को मुक्त कराया, (२) प्रजातंत्र शासनप्रणाली जिसने शासनप्रबंध में लोगों को अधिक अधिकार दिया, और (३) व्यवसाय जिसने सब देशों को अच्छी तरह बता दिया कि देश में प्रारम्भिक शिक्षा देने से भी उस देश के व्यवसायी बड़े कुशल होंगे। माई लार्ड, अब वह समय बहुत दूर गया जब कि कोई सोच समझ कर यह कहे कि अधिकांश पुरुष शारीरिक परिश्रम करने ही के लिए बनाए गए हैं और उन्हें प्रारम्भिक शिक्षा देना भी उचित नहीं है। इसके विपरीत अब सब लोग यह स्वीकार करते हैं कि समाज का यह कर्तव्य है कि वह भविष्य में सब लोगों को थोड़ी बहुत साधारण शिक्षा अवश्य दे। और सारे संसार में

इस कर्तव्य को अच्छी तरह पालन करना केवल एक ही तरह यानी प्रारम्भिक शिक्षा को मुफ्त और अनिवार्य बनाकर उचित समझा गया है। सब से पहले जर्मनी ने यह कार्य आरम्भ किया और गत शताब्दी में योरोपीय देशों, अमरीका और जापान ने अपने यहाँ प्रारम्भिक शिक्षा को मुफ्त और अनिवार्य बनाने का नियम प्रचार किया और आज हम देखते हैं कि एशिया और टर्की को छोड कर यह नियम सब योरोपीय देशों मे प्रचलित हैं यद्यपि कुछ छोटे छोटे राज्यों में अनिवार्य शिक्षा पूरी तरह प्रचलित नहीं है। युनाइटेड स्टेट्स, केनाडा, आस्ट्रेलिया, जापान और दक्षिण अफ्रीका के कुछ प्रजातन्त्र राज्यों में भी अनिवार्य और मुफ्त प्रारम्भिक शिक्षा पूरी तरह प्रचलित है। यह प्रसन्नता की बात है कि भारतवर्ष में भी बडोदा के सुशिक्षित और दूरदर्शी महाराज ने अमरेली तालुका में इस नियम की १५ वर्ष परीक्षा करने के बाद उसे सारे राज्य मे प्रचलित कर दिया। जब दो वर्ष पूर्व टर्की में राष्ट्र-विप्लव हुआ और जब वहा का अधिकार 'कमिटी आफ् यूनियन और प्रोग्रेस' नामक समाज के हाथ में आया तो उसने पहिले ही पहिले घोषणा की कि यह समाज शिक्षा को मुफ्त और अनिवार्य करने का बहुत शीघ्र प्रबन्ध करेगा। रशिया में यद्यपि शिक्षा अनिवार्य नहीं है किन्तु अधिकाश शिक्षा मुफ्त दी जाती है। सब देशों में जहा का हिसाब किताब मिलता है केवल ब्रिटिश इंडिया ही ऐसा है जहा प्रारम्भिक शिक्षा मुफ्त और अनिवाय नहीं है।

भिन्न भिन्न देशों के प्राइमरी स्कूलों में पढने वाले विद्यार्थियों की सख्या पर दृष्टि डालने से बडी शिक्षा मिल सकती है। विद्यार्थियों की सख्याओं को ठीक ठीक समझने के लिये

स्मरण रखना आवश्यक है कि भिन्न भिन्न देशों में अनिवार्य शिक्षा का समय समान नहीं है। जैसे कि इंगलैण्ड में अनिवार्य शिक्षा देने का समय ६ से ७ वर्ष तक है, यूरप के अन्य देशों में और अमरीका में ८ वर्ष है, जापान में ४ वर्ष है और इटली में केवल ३ ही वर्ष है। अंग्रेजों के हिसाब से सब लोगों में से १५ फी सैकडे ऐसे हैं जिन्हें प्रारम्भिक शिक्षा देना उचित है। अतएव यह प्रत्यक्ष है कि जहाँ इंगलैण्ड की अपेक्षा अधिक समय तक शिक्षा दी जाती है वहाँ के लड़कों की संख्या उसी हिसाब से बढ़ेगी और जहा शिक्षा देने का समय कम है, वहाँ का औसत कम पडेगा। युनाइटेड स्टेट्स में सब से अधिक विद्यार्थी शिक्षा पाते हैं। वहाँ उनकी संख्या सब जनसंख्या में २१ फी सदी है। केनाडा, आस्ट्रेलिया, स्विटजरलैण्ड, ग्रेट ब्रिटन और आयर्लैंड की संख्या १७ से लेकर २० फी सदी तक है। जर्मनी, आस्ट्रिया, हंगेरी, नार्वे, और नेदरलैंडस् की संख्या १५ और १७ फी सदी के बीच में हैं। फ्रांस में १४ से कुछ अधिक है, स्वीडन में १४ और डेन्मार्क में १३ है। बेलजियम में १२ और जापान में ११ है। इटली, ग्रीस और स्पेन में ८ और ६ के बीच में है। पोर्चुगाल और रशिया में ४ और पांच के बीच में है। फिलीपाइन्स द्वीप में ५ है। बड़ौदा में ५ है और ब्रिटिश इंडिया में केवल १ ६ है।

अब मैं कौंसिल का ध्यान संक्षेप से इस देश में जो प्रारम्भिक शिक्षा की उन्नति हुई है उस ओर आकर्षित करता हूँ। हमारी प्रारम्भिक शिक्षा की वर्तमान प्रणाली १८५४ से आरम्भ हुई है जब कि कोर्ट आफ् डिरेक्टर्स ने गवर्नर जनरल के नाम प्रसिद्ध डिस्पैच (राजपत्र) भेजा था। उस समय के पहले प्रारम्भिक शिक्षा देशीय पाठशालाओं में दी जाती थी। ये

पाठशालाएँ अत्यन्त प्राचीन प्रथा के अनुसार लोगों द्वारा चलाई जाती थीं और इनमें न गवर्नमेंट कुछ सहायता देती थी और न गवर्नमेंट का कुछ अधिकार था। सन् १८८२ के शिक्षा कमीशन के कथनानुसार उन दिनों (१८५४) कोई ५०००० पाठशालाएं थीं और उनमें ६ लाख लड़के पढ़ते थे। जन संख्या और उस समय की देश की दशा देखने से यह संख्या कुछ विलक्षण है। १८५४ के डिस्पैच के आरम्भ में लिखा था कि 'यह हमारा एक अत्यन्त पवित्र कर्तव्य है कि हम यथा शक्ति भारतवासियों को वे नैतिक और सांसारिक लाभ पहुँचावें जो उत्तम विद्या के प्रचार से प्राप्त होते हैं और ईश्वर की कृपा से भारतवर्ष इङ्गलैंड के सम्बन्ध से वह उत्तम विद्या प्राप्त करे।' अन्य शब्दों में जैसे कि १८८२ का शिक्षा कमीशन कहता है कि, '१८५४ में भारतवर्ष के सब निवासियों को शिक्षा देना पूरी तरह गवर्नमेन्ट का एक कर्तव्य स्वीकार किया गया था।' उस डिस्पैच में साफ साफ लिखा था कि 'ऐसी शिक्षा पर भूतकाल में बहुत कम ध्यान दिया गया था।' इसमें गवर्नमेन्ट आफ इन्डिया को विचार करने के लिए परामर्श दिया गया था कि 'किस तरह सब श्रेणी के लोगों के उपयुक्त लाभकारी और व्यावहारिक विद्या का बहुत से ऐसे लोगों में जो स्वयं अच्छी शिक्षा प्राप्त करने में असमर्थ हैं पूरी तरह प्रचार किया जाय' और इसमें गवर्नर जनरल से यह भी कहा गया था कि 'डिरेक्टर्स चाहते हैं कि भविष्य में गवर्नमेन्ट विशेष रूप से शिक्षा प्रचार के उद्देश्य से दृढ़ता से कार्य करे।'

प्रारम्भिक शिक्षा के इतिहास में दूसरा महत्व का समय सन् १८८२ है। उस वर्ष गवर्नमेन्ट आफ इंडिया ने इस देश

में शिक्षा की साधारण अवस्था की जांच करने के लिये एक कमीशन नियत किया और जाच करने का एक मुख्य विषय यह भी था कि प्रारम्भिक शिक्षा के विषय में १८५४ के डिस्पैच की नीति कहा तक काम में लाई गई है। कमीशन को मालूम हुआ कि उस समय देश में प्रारम्भिक शिक्षा के ८५००० स्कूल हैं जिन्हें गवर्नमेन्ट ने स्वीकार किया है जिनमें २१॥ लाख लडके पढते हैं और ३॥ लाख लडके देशी स्कूलों में पढते हैं जिन पर शिक्षाविभाग का कोई अधिकार नहीं है। अतएव १८८२ में कोई २५ लाख यानी ब्रिटिश इंडिया की सारी जनसंख्या के १ २ फी सदी लडके प्रारम्भिक शिक्षा प्राप्त कर रहे थे। उस कमीशन ने यह दिखाया था कि अभी बहुत से स्थानो में बहुत सी शिक्षा देने की आवश्यकता है और उसने अन्य बातो के अतिरिक्त दो बातो की सम्मति दी थी। एक तो यह कि 'यद्यपि हर तरह की शिक्षा का प्रचार करना गवर्नमेन्ट का कर्तव्य है, किन्तु देश की वर्तमान अवस्था में गवर्नमेन्ट को प्रारम्भिक शिक्षा के प्रचार और उसकी उन्नति में पहले अब से बहुत अधिक उद्योग करना चाहिए।' और दूसरे यह कि, 'हर प्रान्त के अनुकूल कानून बना कर प्रारम्भिक शिक्षा को यथा सम्भव सब से अधिक प्रचार बढाने का उद्योग होना चाहिए।'

चौथाई शताब्दी बीत गई है कि प्रारम्भिक शिक्षा का अधिक प्रचार करने के लिए निश्चय किया गया था। तब से अब तक वास्तव में बहुत ही कम और निराशाजनक उन्नति हुई है। हम देखते हैं कि १९०६ ०७ में गवर्नमेन्ट द्वारा स्वीकार किए हुए ११३००० प्राइमरी स्कूल थे और उनमें ३६ लाख विद्यार्थी पढते थे। इसके अतिरिक्त लोगों के निज के स्कूलों में ५॥ लाख विद्यार्थी पढते थे यानी उस समय कुल ४५ लाख

विद्यार्थी या ब्रिटिश इण्डिया की कुल जनसंख्या के १ ६ फी सदी आदमी प्रारम्भिक शिक्षा पा रहे थे। इन अङ्कों में ब्रह्मदेश भी सम्मिलित है किन्तु १८८२ के अङ्कों में ब्रह्मदेश नहीं लिया गया था। गत २५ वर्षों में कुल उन्नति सारी जन संख्या की १ २ फी सदी से केवल १ ६ फी सदी हुई है। यह जो बहुत ही थोड़ी सी उन्नति हुई है, उसमें अधिकांश उन्नति केवल गत ६ या ७ वर्षों ही में हुई है। भारतीय शिक्षा के डिरेक्टर जनरल माननीय मि० आरेंज सब बातें बहुत अच्छी तरह कह सकते हैं जैसा कि उन्होंने गत पञ्चवार्षिक रिपोर्ट में कहा है कि —'गत २५ वर्षों या गत ५ वर्षों में प्रारम्भिक शिक्षा की बहुत ही कम उन्नति हुई है जब हम इस बात पर विचार करते हैं कि सर्वसाधारण में प्रारम्भिक शिक्षा का पूरी तरह प्रचार करने के लिए हमें कितना अधिक रास्ता तै करना है। गत ५ वर्षों में विद्यार्थियों की जो संख्या बढ़ी है यदि उसी हिसाब से विद्यार्थियों की संख्या बढ़ती जाय और देश की जनसंख्या बिलकुल न बढ़े तो भी स्कूल में पढ़ने योग्य उम्र के लड़कों को स्कूल में भेजने में कितनी ही पीढ़ियां लग जायँगी।' प्रान्तीय, म्युनिसिपल और लोकल फण्डों से प्रारम्भिक शिक्षा का वार्षिक व्यय केवल ७ लाख बढ़ा है याना १९०६-०७ में ६३ ३ लाख व्यय था और १८८२ में ३६ २ लाख व्यय। इसी अर्से में देश में भूमि कर ८ करोड़ अधिक बढ़ गया है। १८८२ में भूमि कर २१ ८ करोड़ था, १९०६-०७ में २९ ७ करोड़ हो गया। सेना का खर्च १३ करोड़ बढ़ गया है १८८२ में १९ ३ करोड़ का १९०६-०७ में ३२ ४ करोड़ हो गया और सिवल विभागों का खर्च ११ करोड़ से १९ करोड़ यानी ८ करोड़ बढ़ गया। रेलों के बनाने में पहले ४ करोड़ वार्षिक

व्यय होता था, अब १५ करोड़ रुपि का होने लगा। इन अङ्कों को आपस में मिलान कर आलोचना करना व्यर्थ है।

गत चौथाई शताब्दी में भारतवर्ष में जो उन्नति हुई है उसका उसी समय की अन्य देशों की उन्नति से मिलान करने से बड़ा लाभ होगा। मैं आशा करता हूँ कि कौंसिल मुझे भारतवर्ष के साथ अन्य देशों की बातें मिलान करने की आज्ञा देगी। इस कार्य्य के लिए मैं दो पश्चिमीय और दो पूर्वीय देशों को लेता हूँ—पश्चिमीय देशों में इङ्गलैंड और रशिया को, और पूर्वीय देशों में जापान और फिलिपाइन्स को। इङ्गलैंड पहिले सर्वसाधारण में शिक्षा प्रचार करने का विरोधी था। उसने पहिले ही पहिले १८७० में प्रारम्भिक शिक्षा को अनिवार्य्य करने का प्रयत्न आरम्भ किया। १८७० के कानून के अनुसार गवर्नमेन्ट ने जनसमूह में शिक्षा प्रचार करने की जिम्मेदारी पूरी तरह अपने ऊपर ली। इस कानून का मुख्य उद्देश्य यही था कि उचित रूप से शिक्षा अनिवार्य्य कर दी जाय। इस कानून द्वारा स्कूल बोर्डों को अधिकार दिया गया था कि वे लड़कों को स्कूल में उपस्थित होने के लिए बाध्य करें। इसके बाद १८७६ और १८८० में दो कानून और बने। १८७६ के कानून ने माता पिताओं को अपने लड़कों को स्कूल में भेजने में बाध्य किया और जहां पर स्कूल बोर्ड नहीं थे, वहां स्कूलों में लड़कों को भेजने के लिए कमेटियां बनाई गईं। १८८० के कानून ने स्कूल बोर्डों और उक्त कमेटियों को बाध्य किया कि वे अपने अलग नियम बनावें और उन्हें अमल में लावें। और १८८२ में सारे देश में शिक्षा अनिवार्य हो गई। सन् १८७१ से लेकर १८८२ तक विद्यार्थियों की संख्या में जो वृद्धि हुई है उस विषय में

सर हेनरी क्रेक ने अपनी 'The State in its relation to Education' नामक पुस्तक में बड़ी चित्ताकर्षक बातें लिखी हैं। १८७१ में इंगलैंड और वेल्स की सारी जनसंख्या २ करोड़ २७ लाख थी और यह हिसाब लगाया गया था कि साधारण रीति पर कम से कम ३२ लाख लड़कों का स्कूलों में जाना चाहिए। किन्तु उस समय केवल १३ लाख लड़के यानी स्कूलों में जाने योग्य लड़कों में केवल ४३.३ फी सदी स्कूलों में जाते थे। १८७६ में २० लाख लड़के यानी स्कूलों में जाने योग्य लड़कों में ६६ फी सदी से भी अधिक स्कूलों में जाने लगे। अंतमें १८८२ में स्कूल में जाने वाले लड़कों की संख्या ३० लाख से भी बढ़ गई और एक एक लड़का जिसे स्कूल में जाना चाहिए था स्कूल में जाने लगा। इङ्गलैंड में प्रारम्भिक शिक्षा १८६० में मुफ्त-बिना फीस लिए-दी जाने लगी।

जापान में जहां परिचमीय उपाय पूर्वीय व्यवस्था के अनुकूल बड़ी सफलता के साथ काम में लाए गए हैं शिक्षा का सुधार अन्य महत्व की बातों के साथ १८७२ में आरम्भ हुआ। उस वर्ष एक राजपत्र निकाला गया जिसमें शिक्षा प्रचार के सम्बन्ध में नई नीति अवलम्बन करने की सूचना दी गई। उस राजपत्र में यह घोषित किया गया कि 'अब से यह विचार किया गया है कि शिक्षा का इस तरह प्रचार किया जायगा कि किसी गाव में कोई कुटुम्ब मूर्ख न रहे और किसी कुटुम्ब में कोई मनुष्य मूर्ख न रहे'। बम्बई के मि० शार्प ने इन शब्दों को ठीक ही 'बड़ी ऊंची आकांक्षा' वाले शब्द कहा है, किन्तु जापान ने ३० वर्ष में अपनी प्रतिज्ञा पूरी की है। जिस समय उक्त राजपत्र जारी किया गया उस

समय हिसाब लगाया गया कि स्कूल में जाने योग्य लड़क
में २८ फी सदी लड़के स्कूल जाते थे। इस समय ६० फ
सदी से भी अधिक औसत है। जापान एक दरिद्र देश
और फिर भी उसने इतना अधिक काम कर के दिखा दिय
है। इसके साथ ही जापान ने अपनी सेना और सामुद्रि
बल बढ़ाने में भी बड़ा स्वार्थत्याग किया है जिसकी संसार
चारो ओर दुन्दुभि बज रही है। जापान में पहले यद्यपि अनि
वार्य शिक्षा का नाम को प्रचार हो गया था किन्तु यह पूर
तरह काम में नहीं लाई गई। १८६० में लड़को को स्कूलो
भेजने का पूरा प्रयत्न किया गया और अलग अलग अवस्थ
के अनुसार अनिवार्य शिक्षा देने का समय ३ से ४ वर्ष तक
कर दिया गया। १६०० में अनिवार्य शिक्षा का समय ह
जगह ४ वर्ष कर दिया गया और यथा समय प्रारम्भिक शिक्ष
मुफ्त दी जाने लगी।

रशिया में जहां की शिक्षा सबंधी बातें कुछ अंशो
भारतवर्ष से मिलती जुलती हैं वहां प्रारम्भिक शिक्षा पश्चि
मीय दृष्टि से देखने पर बहुत ही बुरी दशा में है। गवर्नमेन्ट
१८६४ और १८९१में कानून बना कर शिक्षा की उन्नति करन
चाही, किन्तु अधिक सफलता नहीं हुई। फिर भी वहां गत
२५ वर्षो में जनसमूह की शिक्षा की भारतवर्ष की अपेक्ष
अधिक उन्नति हुई है। १८८० में रशिया में कोई २३००० प्राइ
मरी स्कूल थे। १६०६ में उनकी संख्या ६० हजार से भी
अधिक हो गई। १८८० में स्कूल में जाने वाले लड़कों की
संख्या ११.४ लाख यानी सारी जनसंख्या की १२ फी
सदी थी। ठीक इतने ही फी सदी लोगों को १८८२ में भारत
वर्ष में शिक्षा दी जाती थी। गत २५ वर्षों में रशिया में

विद्यार्थियो की संख्या ११ ४ लाख से ५७ लाख-होगई है। अर्थात् इस समय सारी जनसंख्या के ४'५ फी सदी लोग प्रारम्भिक शिक्षा पा रहे हैं। इस तरह रशिया में १.२ फी सदी से ४ ५ फी सदी उन्नति हुई है, किन्तु उतने ही समय में भारतवर्ष में १ २ फी सदी से केवल १ ६ फी सदी उन्नति हुई है। रशिया में प्रारम्भिक शिक्षा यद्यपि अनिवार्य नहीं किन्तु प्राय मुफ्त दी जाती है।

अब मैं फिलिपाइन्स देश की बात कहता हूँ। यह देश बहुत से टापुओं का बना है और विदेशियों के अधीन है। उन्नीसवीं शताब्दी के अन्तमें यह देश स्पेन के अधिकार में से निकल कर युनाइटेड स्टेट्स के हाथ में आया। इतने ही थोडे दिनों में यहा प्रारम्भिक शिक्षा की बहुत अधिक उन्नति हुई है। स्पेन के अधिकार में भी फिलीपाइन वालों में शिक्षा का अच्छा प्रचार था। १६०३ में वहा २००० प्राइमरी स्कूल थे और १॥ लाख विद्यार्थी पढते थे। पाच वर्ष में स्कूलों की संख्या दुगनी हो गई है और विद्यार्थियों की संख्या ३ लाख ६० हजार है। उस देश की जनसंख्या लगभग ७० लाख है। इस जनसंख्या के हिसाब से १६०३ में २ फी सदी लोगों को शिक्षा दी जाती थी, ५ वर्ष बाद वही २ फी सदी से ५ फी सदी से भी अधिक हो गई, किन्तु भारतवर्ष में इन पाच वर्षों में केवल १ ६ फी सदी से १ ६ उन्नति हुई है। फिलीपाइन्स देश में प्रारंभिक शिक्षा अनिवार्य है, किन्तु वह पूरी तरह अमल में नहीं लाई जाती। जहा अध्यापकों का वेतन पबलिक फंड से दिया जाता है, वहा शिक्षा मुफ्त दी जाती है।

माई लार्ड, मैंने इन सब बातों की आलोचना कर कौंसिल को इसलिए कष्ट नहीं दिया कि मैं बीती हुई बातों के लिए

समय हिसाब लगाया गया कि स्कूल में जाने योग्य लडकों में २८ फी सदी लडके स्कूल जाते थे। इस समय ६० फी सदी से भी अधिक औसत है। जापान एक दरिद्र देश है और फिर भी उसने इतना अधिक काम कर के दिखा दिया है। इसके साथ ही जापान ने अपनी सेना और सामुद्रिक बल बढाने में भी बडा स्वार्थत्याग किया है जिसकी संसार में चारो ओर दुन्दुभि बज रही है। जापान में पहले यद्यपि अनिवार्य शिक्षा का नाम को प्रचार हो गया था किन्तु वह पूरी तरह काम में नहीं लाई गई। १८६० में लडको को स्कूलो में भेजने का पूरा प्रयत्न किया गया और अलग अलग अवस्था के अनुसार अनिवार्य शिक्षा देने का समय ३ से ४ वर्ष तक कर दिया गया। १६०० में अनिवार्य शिक्षा का समय हर जगह ४ वर्ष कर दिया गया और यथा सयम प्रारम्भिक शिक्षा मुफ्त दी जाने लगी।

रशिया में जहा की शिक्षा सबंधी बातें कुछ अंशो में भारतवर्ष से मिलती जुलती हैं वहा प्रारम्भिक शिक्षा पश्चिमीय दृष्टि से देखने पर बहुत ही बुरी दशा में है। गवर्नमेन्ट ने १८६४ और १८९१में कानून बना कर शिक्षा की उन्नति करनी चाही, किन्तु अधिक सफलता नहीं हुई। फिर भी वहा गत २५ वर्षो में जनसमूह की शिक्षा की भारतवर्ष की अपेक्षा अधिक उन्नति हुई है। १८८० में रशिया में कोई २३००० प्राइमरी स्कूल थे। १६०६ में उनकी सख्या ६० हजार से भी अधिक हो गई। १८८० में स्कूल में जाने वाले लडको की सख्या ११ ४ लाख यानी सारी-जनसंख्या की १ २ फी सदी थी। ठीक इतने ही फी सदी लोगो को १८८२ में भारत वर्ष में शिक्षा दी जाती थी। गत २५ वर्षों में रशिया में

विद्यार्थियों की संख्या ११ ४ लाख से ५७ लाख होगई है। अर्थात् इस समय सारी जनसंख्या के ४ ५ फी सदी लोग प्रारम्भिक शिक्षा पा रहे हैं। इस तरह रशिया में १ २ फी सदी से ४ ५ फी सदी उन्नति हुई है, किन्तु उतने ही समय में भारतवर्ष में १ ७ फी सदी से केवल १ ६ फी सदी उन्नति हुई है। रशिया में प्रारम्भिक शिक्षा यद्यपि अनिवार्य नहीं किन्तु प्रायः मुफ्त दी जाती है।

अब मैं फिलिपाइन्स देश की बात कहता हूँ। यह देश बहुत से टापुओं का बना है और विदेशियों के अधीन है। उन्नीसवीं शताब्दी के अन्तमें यह देश स्पेन के अधिकार में से निकल कर युनाइटेड स्टेट्स के हाथ में आया। इतने ही थोड़े दिनों में वहां प्रारम्भिक शिक्षा की बहुत अधिक उन्नति हुई है। स्पेन के अधिकार में भी फिलीपाइन वालों में शिक्षा का अच्छा प्रचार था। १९०३ में वहां २००० प्राइमरी स्कूल थे और १॥ लाख विद्यार्थी पढते थे। पांच वर्ष में स्कूलों की संख्या दुगनी हो गई है और विद्यार्थियों की संख्या ३ लाख ६० हजार है। उस देश की जनसंख्या लगभग ७० लाख है। इस जनसंख्या के हिसाब से १९०३ में २ फी सदी लोगों को शिक्षा दी जाती थी, ५ वर्ष बाद वही २ फी सदी से ५ फी सदी से भी अधिक हो गई, किन्तु भारतवर्ष में इन पांच वर्षों में केवल १ ६ फी सदी से १ ६ उन्नति हुई है। फिलीपाइन्स देश में प्रारम्भिक शिक्षा अनिवार्य है, किन्तु वह पूरी तरह अमल मे नहीं लाई जाती। जहां अध्यापकों का वेतन पबलिक फंड से दिया जाता है, वहां शिक्षा मुफ्त दी जाती है।

माइ लार्ड, मैंने इन सब बातों की आलोचना कर कौंसिल को इसलिए कष्ट नहीं दिया कि मैं बीती हुई बातों के लिए

पश्चात्ताप करना उचित समझता हूँ, किन्तु इसलिए कि वर्तमान और भविष्य बातें भूतकाल की बातों के साथ मिलान करने से बड़ी अच्छी तरह हल की जा सकती हैं ' बीती ताहि बिसारि दे ' यह कहावत निस्सन्देह बड़ी अच्छी है किन्तु कभी भविष्य की बातों को अच्छी तरह समझने के लिए पुरानी बातों को याद करना आवश्यक होता है। माई लार्ड, मैं इस बात के विश्वास करने का साहस करता हूँ कि इस कौंसिल में कोई भी पुरुष ऐसा नहीं है जो सारे देश में प्रारम्भिक शिक्षा के प्रचार की आवश्यकता या महत्व को स्वीकार नहीं करता। मुझे विश्वास है कि मेरे माननीय मित्र महाराज वर्द्धवान भी इस देश के लोगों को सर्वदा मूर्खता और अन्धकार में पड़े रहना अच्छा नहीं समझेंगे। अभी तक संसार भर में जनसाधारण में पूरी तरह शिक्षा प्रचार करने के लिए एक ही सिद्धान्त आविष्कार हुआ है अर्थात् शिक्षा को अनिवार्य करना। और मेरी समझ में यदि हमारी यह बलवती इच्छा है कि इस देश के लोगों को भी शिक्षा के वैसे ही लाभ प्राप्त हों जैसे अन्य देश के लोगों को मिल रहे हैं, तो हमें उन देशों का अनुकरण करना चाहिये। फिर अनिवार्य शिक्षा के साथ साथ शिक्षा मुफ्त देनी चाहिये क्योंकि बिना ऐसा किये बेचारे गरीब लोगों को अधिक कष्ट होगा। निस्सन्देह इस शिक्षा सम्बन्धी प्रस्ताव पर वादानुवाद करते समय हमसे कहा जायगा कि अनिवार्य शिक्षा का प्रचार करने के लिए अभी देश तैय्यार नहीं है। जब जब किसी तरह के सुधार करने का प्रस्ताव किया जाता है तब तब उसके विपक्ष में सदा यही बात कही जाती है कि अभी देश तैय्यार नहीं है। मैं स्वीकार करता हूँ कि इस विषय का

सावधानी और बड़े विचार के साथ होना चाहिये किन्तु मुझे इस बात का भी पूरी तरह निश्चय है कि अब इस कार्य्य के आरम्भ करने में अधिक विलम्ब नहीं करना चाहिए।

अब मैं निश्चित रूप से इस विषय पर अपने विचारों को कौंसिल के सामने उपस्थित करूँगा। और मैं आरम्भ ही में जताए देता हूँ कि मैं केवल लड़कों को अनिवार्य शिक्षा देने का पक्षपाती हूँ, लड़कियों को नहीं। आज कल भारतवर्ष में कुछ अंशों में लड़कों की अपेक्षा लड़कियों को शिक्षा देने की अधिक आवश्यकता है किन्तु इस काम को पूरी तरह करने में इतनी अधिक कठिनाइयां हैं कि देश में लोग अपनी इच्छा से लड़कियों को जो शिक्षा दे रहे हैं उसी से हमें कुछ काल तक सन्तोष करना चाहिए। हां, हमें लोगों को स्त्रीशिक्षा देने के लिए पहिले से अधिक उत्तेजित करना चाहिए। अब हमें इस प्रश्न पर विचार करना चाहिए कि हम लड़कों को अनिवार्य शिक्षा किस तरह दे सकते हैं। मैं यह बतला चुका हूँ कि इंगलैंड की सारी जनसंख्या के १५ फी सदी लोगों को प्रारम्भिक शिक्षा दी जाती है। वहां शिक्षा देने का समय ६ से ७ वर्ष तक है। मेरी समझ में यहां जापान की तरह अनिवार्य शिक्षा देने के लिए केवल ४ वर्ष का समय नियत होना चाहिए यानी ६ वर्ष की उम्र से लेकर १० वर्ष की उम्र तक। हमारे देश की सारी पुरुषसंख्या में ऐसे लड़कों का औसत ११ और १२ फी सदी के बीच में है। यानी जब हमारे देश में लड़कों को अनिवार्य्य शिक्षा देने का पूरी तरह प्रचार हो जायगा तो उस समय देश की सारी पुरुषसंख्या के लग भग १२ फी सदी लड़के प्रारम्भिक स्कूलों में शिक्षा प्राप्त करेंगे। शिक्षा सम्बन्धी गत पञ्चवार्षिक रिपोर्ट से

की जरूरत हो तो मैं कहूँगा कि १८८० और १८७० में बाहरी माल पर ७॥ फी सदी कर (इमपोर्ट ड्यूटी) लगता था। इस समय ५ फी सदी लगता है। जब ७॥ फी सदी कर लगता था तो उस समय भी वह आय बढ़ाने के लिए कर लगता था और अब भी ऐसा ही समझा जायगा। अब बाहर के माल पर ५ फी सदी की जगह ७॥ फी सदी कर लगाने पर गवर्नमेन्ट को २॥ करोड़ की आमदनी अधिक होगी। पांचवें यदि सन (जूट) पर ५ फी सदी कर लगाया जाय तो इससे हर साल १ करोड़ की आमदनी होगी और यह हर तरह से एक आदर्श कर होगा क्योंकि इसे विदेशियों को देना पड़ेगा इस लिए कि सन संसार भर में और कहीं उत्पन्न नहीं होता। बाहर जाने वाली चीजों पर कर लगाने के लिए और भी चीजें बताई जा सकती हैं। अन्त में जब दशा बहुत ही खराब हो जाय और कहीं से भी रुपया न मिले और किसी तरह काम न चले (किन्तु मेरी समझ में ऐसा होना सर्वथा असम्भव है) तो उस समय मैं नमक पर ॥) और अधिक टैक्स लगाने का परामर्श दूंगा और इससे १॥) करोड़ से भी अधिक आय होगी, क्योंकि मैं इसे अधिक दुखदाई नहीं समझता कि मेरे देशवासी कुछ कम नमक खाय, किन्तु मैं इसे बड़ी भारी विपत्ति समझता हूँ कि मेरे देशवासी सर्वथा मूर्ख बने रह कर अंधकार में पड़े रहें और लौकिक और पारलौकिक उन्नति से वञ्चित रहें।

माई लार्ड, मैं साफ साफ कहता हूँ कि इस प्रस्ताव को मैंने इस आशा से उपस्थित नहीं किया कि कौंसिल इसे स्वीकार कर लेगी। जिस तरह कि यह कौंसिल बनी हुई है उससे यह आशा नहीं है कि इसमें कोई प्रस्ताव जब तक

उसे गवर्नमेन्ट पहले से पसद न कर ले स्वीकार किया जा सके और वतमान विषय पर तो मैं स्वीकार करता हूँ कि गवनमेन्ट से यह प्रार्थना करना युक्तियुक्त नहीं है कि वह विना अच्छी तरह विचार किए इस प्रस्ताव को स्वीकार कर ले। इसके अतिरिक्त यदि गवनमेन्ट इस प्रस्ताव के पक्ष में होती तो इस विषय मे बिना सेक्रेटरी आफ स्टेट से परामर्श किए वह निश्चित रूप से कुछ नहीं कर सकती थी। इस लिए मुझे जरा भी आशा नहीं है कि मेरा प्रस्ताव स्वीकार किया जायगा। किन्तु चाहे गवर्नमेन्ट इस प्रस्ताव को स्वीकार करने में असमर्थ हो किन्तु वह सब बातों पर शीघ्र अच्छी तरह विचार करने का वादा कर सकती है। हर दशा में मैं हृदय से आशा करता हूँ कि गवनमेन्ट दो बातें नहीं करेगी एक तो यह कि अनिवाय और मुफ्त प्रारम्भिक शिक्षा देने के सिद्धान्त के विरुद्ध निश्चित रूप से अपना मत प्रकाश नहीं करेगी और दूसरे यह कि इस प्रस्ताव को यह कह कर अस्वीकार नहीं करेगी कि आर्थिक दशा अच्छी न होने के कारण यह प्रस्ताव स्वीकार नहीं किया जा सकता।

माई लार्ड, इस उक्ति में बहुत कुछ सत्य भरा पड़ा है कि जब इच्छा होती है तो काय्य करने का साधन भी मिल जाता है। मेरी समझ में यह अनिवाय और मुफ्त शिक्षा का प्रश्न सब से अधिक महत्व का प्रश्न है। इसी प्रश्न पर लाखों लडकों का जो शिक्षा का सुन्दर फल चखना चाहते हैं बुरा भला निभर है। सुन्दर प्रतिभा, अच्छी योग्यता और ऊंचा चरित्र कुछ भी विना शिक्षा के नहीं प्राप्त होता। वास्तव में यही एक ऐसा प्रश्न है जिससे भविष्य में हमारे एक राष्ट्र होने का घनिष्ट सम्बन्ध है। माइ लार्ड, चाहे आज का

प्रस्ताव उठा कर यहीं अलग रख दो किन्तु मुझे विश्वास है कि यह एक ऐसा विषय है जिसमें अवश्य हमारी जीत होगी। सारे सभ्य ससार की व्यवस्था, ब्रिटिश प्रजातंत्र राज्य की सहानुभूति और हमारी स्वाभाविक आकांक्षाएं जिन्हें श्रीमान् ने एक से अधिक बार ठीक बतलाया है-ये सब बातें इस प्रस्ताव के पक्ष में हैं। यह प्रश्न कौंसिल के सामने बार बार उपस्थित किया जायगा जब तक कि पूरी तरह से हल न हो जाय। माई लार्ड, मैं सच्चे मन से आशा करता हूँ कि गवर्नमेन्ट वर्तमान अवस्था को ठीक ठीक समझेगी और समय के अनुसार चलेगी। मेरी छोटी समझ में इस समय गवर्नमेन्ट को अपना कर्तव्य पालन करना आवश्यक है। उसे राजनीतिज्ञता भी दिखानी चाहिए, ऐसी राजनीतिज्ञता जो धीरे धीरे किन्तु बिना चूके अपनी प्रजा का सब से बड़ा हित साधन करने में तत्पर रहती है।

चतुर्थ भाग



फुटकर

श्रीमान् दादा भाई नौरोजी

[सन् १९०५ ई० के सितम्बर मास में मिस्टर दादा भाई नौरोजीकी ८१वीं वर्षगांठ मनाई जाने के समय बम्बई में एक सर्वसाधारण सभा के सभापति का आसन ग्रहण करते हुये लोक मान्य मिस्टर गोखले ने निम्न लिखित वक्तृता दी]

भद्र स्त्री और पुरुषो! आप लोगोंने मुझे इस समय सभा का सभापति बनाया है। इस सत्कार के लिये मैं सच्चे हृदय से आप लोगों को धन्यवाद देता हूं। इस महोत्सव में इतने भारी पद ग्रहण करने से मैं अपना अहोभाग्य समझता हूं। किसी देश में एक साधारण व्यक्ति की वर्षगांठ के उत्सव को जब इस प्रकार जनता मनाये तो वह उत्सव उस देश के लिये अपूर्व उत्सव है। और उस उत्सव की शोभा सौगुनी बढ़ जाती है जब प्रत्येक मतावलम्बी अपना सत्कार दिखलाने के लिये उसमें सम्मिलित हो। मिस्टर दादाभाई को अपने दीर्घ और यशस्वी जीवन में उस प्रेम के बहुत से सबूत मिले होंगे जिस प्रेम की दृष्टि से इस देश के हरएक मजहब के लोग उन्हें देखा करते हैं परन्तु मुझे सन्देह है कि उनके सत्कार के उपलक्ष में चाहे बड़ी से बड़ी खुशी क्यों न मनाई गई हो परन्तु क्या वह खुशी उनके वर्ष गांठ के इस वार्षिक उत्सव की खुशी का मुकाबला कर सकती है जो केवल बम्बई ही में नहीं बल्कि हिन्दुस्तान के दूसरे हिस्सों में भी मनाई जा रही है। सज्जनो इस महती सभा का क्या प्रयोजन है? इसका क्या कारण है कि मिस्टर दादाभाई ने थोड़े ही

समय में विना किसी जाति पाति के झगडे के अपने लाखों देशवासियों के हृदयों में वह स्थान जमा लिया है जो राजों और महाराजों को भी दुर्लभ है हम उनका मान इसलिये नहीं करते कि वे हमारे समय के अथवा ५० वर्ष पूर्व से सब से बडे राजनीतिज्ञ हैं वरिक इसलिये कि उनमें हमारे देश के उच्च और उत्तम विचार विद्यमान हैं और इसलिये कि वे भविष्य में जातीय उद्देशों के पथ प्रदर्शक हैं। उन्होंने इस अवस्था को उसी समयसे प्राप्त कर लिया है जब हम में से बहुत तो पैदा भी न हुये होंगे और हममें से कोई भी ऐसा न मिलेगा जिसपर जातीयताके कामोंमें उनकी शिक्षा और उदाहरण का प्रभाव न पडा हो। सज्जनों ८० वर्ष पूर्व जब मिस्टर दादाभाई का जन्म हुआ था किसको मालूम था कि वह संयुक्त भारतवर्ष के सब से बडे और विश्वस्त नेता (मुखिया) निकलेंगे। *उस समय ऐसी भविष्य वाणी करने वाला मनुष्य पागल समझा जाता।"

सन् १८२५ ई० में मरहठों के राज्य का अंत हुआ था। यह वह समय था जब कि अंग्रेजी शासकों ने जिनके अग्रसर एल फिन्स्टन साहब सदा माने जायेंगे, पहिले ही पहिल अपनी बुद्धिमता और उदार राजनीति से राज्य स्थापित करने का काम अपने हाथ में लिया था। और इस ओर के लोगों के दिल स्वभावत गुस्से और असतोष से भरे हुये थे और उनको इस बात की व्यर्थ आशा भी थी कि हमारी गवर्मेन्ट किसी न किसी दिन फिर स्थापित होगी। इस समय पश्चिमीय शिक्षा

*उनका प्रभाव अपने देशवासियों पर ऐसा ही है जैसा कि संसार के महात्माओं का उन लोगों पर है जिनके जीवन की आशायें उनकी शिक्षाओं से बढ़ गई है।

प्रणाली का प्रादुर्भाव मुश्किल से हुआ था। और १८३३ के चार्टर एक्ट का कुछ नाम या निशान भी नहीं था और जिस प्रकार इस बात का किसी को ख्याल भी नहीं हो सकता कि एशिया के सब प्रदेश एक दूसरे से सगठित हो जांयगे उसी प्रकार उस समय किसी को भी पता नहीं था इस बड़े देश के इतने सूबे होते हुये भी सब लोगों के एकही उद्देश और एक ही भाव होंगे। मेरी समझ में यह अंग्रेजी शासकों की बुद्धि मत्ता और उदार राजनीतिका परिणाम है कि जो बात पहिले ख्याल में भी नहीं आती थी वह प्रत्यक्ष मूर्तिमान् देख पड़ती है। मिस्टर दादाभाई और उनके साथ के काम करनेवाले, पुराने सुधारकों को ही गौरव प्राप्तहोना चाहिये कि उन लोगों ने देश की अवस्था को खूब समझा और अपने देश भाइयों की आवश्यकताओं पर विचार किया और दिलोजान से परिश्रम करके उनको पूरा दिखा दिया।

उस समय के कार्य्यकर्त्ताओं का एक समुदाय इस कार्य्य-क्षेत्र से ऊझल हो गया और दूसरे में से थोड़े से अब भी, हमें रास्ता दिखलाने के लिये जीवित हैं। परमात्मा उन्हें दीर्घायु करे। परन्तु इन सब वर्षों में दादाभाई हरेक कामों में, अग्रसर रहे हैं और न तो अवस्था और निराशा ने उनके उत्साहों पर धक्का पहुंचाया और न उन लोगोंकी अनउपस्थति ही ने देश वासियों के प्रति उनके प्रेम को कम कर दिया। जिस प्रकार पिता अपने पुत्र की रक्षा करता है उसी प्रकार, उन्होंने इस राजनैतिक आन्दोलन की खबरदारी की जिसकी शुरूआत छोटी थी और जिसने अब विशाल रूप धारन किया है। उसी की विजय और हार पर उनके जीवन की विजय और हार थी और उन्होंने इस आन्दोलन के प्रत्येक रूप को

देखा है। वे उस समय भी इस आन्दोलन के परिपोषक थे जिस समय उसके लिये लोगों को आशा और दृढ विश्वास था और उन्होंने उस समय भी आन्दोलन से अपने को अलग नहीं किया जिस समय उनके लिये निराशा ही निराशा दिखलाई पड़ती थी। इसलिये आज दादाभाई की जन्मगांठ मनाते समय हम उस महान व्यक्ति के प्रति अपना सत्कार प्रगट करते हैं जो ५०वर्ष से भी अधिक से हमारे झगडे और उद्देशों की साक्षात मूर्ति रहे हैं और उस मंगलदाता परमात्माको धन्यवाद देते हैं जिसने इस महान पुरुष को इतने दिनों तक जीवित रक्खा है जिसने अपना सब कुछ मातृभूमि की सेवा में अर्पण कर दिया है।

सज्जनो! दादाभाई में कितनी मधुरता, सादापन, सहन शीलता, आत्मसंयम, देशानुराग, प्रेम और उच्च उद्देशों की पूर्ति की आकांक्षायें भरी हैं। ज्योंहीं कोई इन गुणों का स्मरण करता है त्योंहीं उसे मालूम होता है कि वह मानो एक महान व्यक्ति के सामने खड़ा है। निस्सन्देह मिस्टर रानाडे के कथनानुसार तीस करोड पुरुषों में से यदि एक भी ऐसा महान् पुरुष उत्पन्न हो तो उस जाति को बड़ी आशा रखनी चाहिये।

सज्जनो! बम्बई के इतनी भारी जनसंख्या के सन्मुख मिस्टर दादाभाई नौरोजी के व्यक्तिगत गुणों का वर्णन करना मुझे निरर्थक मालूम होता है। अपने समय को उनकी मुख्य २ शिक्षाओं के कहने में खर्च करूंगा जिनके विषय में थोड़े दिनों से तर्क वितर्क किया जा रहा है। जो २ लाभ अंगरेजी शासन से हम लोगों को प्राप्त हुये हैं उनको पूर्ण रीति से मानने के

लिये मिस्टर दादाभाई से बढ़कर कोई दूसरा व्यक्ति तैयार नहीं है।

प्रथम २ उन्हीं को यह बात जँची और अपने दीर्घ जीवन में बराबर आप अपने शासकों को सूचना देते चले आये हैं कि अगरेज़ी शासन के लाभों को दो बड़ी बुराइयां तहस नहस करे डालती है एक तो द्रव्य सम्बन्धी और दूसरी नीति सम्बन्धी। द्रव्य सम्बन्धी बुराई यह है कि बिना किसी लाभ के प्रत्येक वर्ष बहुतसा धन यहां से बाहर चला जाता है और नीति सम्बन्धी बुराई यह है कि बड़े और उत्तर दायित्व के ओहदों में शामिल न किये जाने के कारण जाति की शक्ति क्षीण होती जा रही है। मैं समझता हूं कि इन दोनों बातों में मिस्टर दादा भाई का कथन अखण्डनीय है। जो मिस्टर दादाभाई इन वर्षों में बराबर आन्दोलन करते चले आये हैं कि बिना किसी लाभ के बहुत सा धन प्रतिवर्ष देश के बाहर जा रहा है इसमें केवल यूरोपियन अफसरों की पेन्शन और अङ्गरेज़ी सेना का खर्चा या और दूसरे खर्च जो इङ्गलैण्ड में इण्डियन गवर्मेन्ट के नाम पर किये जाते हैं शामिल नहीं हैं बल्कि वह लाभ जो यूरोपियन व्यापारी पैदा करके इङ्गलैण्ड देश के लिए बाहर भेजते हैं, और अङ्गरेज़ी वकीलों डाक्टरों और कर्मचारियों की बचत भी शामिल है। उनका कथन है कि कमसे कम तीस करोड़ रुपया प्रतिवर्ष बाहर चला जाता है। इङ्गलैंड का हिन्दुस्तान के साथ राजनैतिक सम्बन्ध होने की वजह से लोग भले ही कहें कि इतना रुपया जाना उचित है परन्तु अर्थशास्त्र की दृष्टि से देखने पर मालूम होता है बिना किसी फायदे के इतना धन देश से निकल जाता है। अगरेज कर्मचारियों की जगहों पर हिन्दुस्तानी कर्मचारी साधारणतः नियुक्त किये जा सकते हैं

परन्तु ऐसा नहीं किया जाता परिणाम यह होता है कि प्रचुर धन इस देश का बिना किसी लाभ के बाहर चला जाता है। हिन्दुस्तान यदि धनी भी होता तो भी इस प्रकार प्रतिवर्ष इतने द्रव्य का बाहर जाना बड़े घबराहट की बात थी। परन्तु सब इस बात को मानते हैं कि हिन्दुस्तान संसार के दरिद्र देशों में स एक है और इसी लिये मिस्टर दादाभाई का कहना है कि इतने धन के चले जाने से देश में बचत नहीं हो सकती। और चूंकि कारीगरी धन पर बद्ध है और धन बचत से एकत्रित होता है अतः इतने रुपये प्रतिवर्ष बाहर चले जाने की वजह से देश की कारीगरी नहीं बढ़ सकती। अब रही बात हम लोगों के बड़े और उत्तरदायित्व के उहदों में न लिये जाने की इस विषय में उनका कहना बिल्कुल साफ है। जब कि हम भिन्न २ ऊंचे पदों में नियत किये जाने का आन्दोलन करते हैं तो इससे हमारा यह अभिप्राय नहीं है कि थोड़ी सी जगहें हमारे देशभाइयों को और मिल जायं-यदि ऐसा भी होता तो भी नाक भौं सिकोड़ने की कोई बात नहीं। बल्कि वस्तुतः हमारी इच्छा है कि गवर्नमेंट की जिम्मेदारियों में हम भी सम्मिलित किये जायं। हम चाहते हैं कि हम अपने ही देश में ऐसी २ जगहों में काम करें जिस से हमारी शक्ति और आचरण की वृद्धि हो और कार्य्य के आरंभ करने की योग्यता आवे और सचमुच इसी से उन लोगों की भिन्नता मालूम होती है जो शासन करते और जो केवल आज्ञा का प्रतिपालन करते हैं। तब भी बहुत से छिद्रान्वेषी कहते हैं कि मिस्टर दादाभाई थोड़े दिनों से अति कटु शब्दों का प्रयोग कर रहे हैं जो अंगरेज़ी कर्मचारियों को उत्तेजित करनेवाले हैं। सज्जनों! मेरी इच्छा है कि वे सभ्य जो इस बात की शिकायत

करते हैं एक या दो बातों पर ध्यान दें। प्रत्येक व्यक्ति को मालूम है कि मि० दादाभाई ससार के शांतिप्रिय मनुष्यों में से एक है और जब ऐसे शाँति प्रिय पुरुष को कडे शब्दों का प्रयोग करना पडे तो यह समझना चाहिये कि सचमुच कुछ ऐसी अवस्थायें आ पडी हैं कि जिनकी वजह से उन्हें कडे शब्दों से काम लेना पडा है। और उनके कडे शब्दों का दोष उन पर नहीं है वरिक उन पुरुषों पर है जो उन्हें ऐसा करने के लिये विवश करते हैं। मिस्टर दादाभाई के आरम्भिक और बीचवाले लेखों को देखिये। मैं विना किसी हिचक के कह सक्ता हू कि कोई एक भी शब्द नहीं निकाल सक्ता जो कडा कहा जा सके। यदि हाल में उन्होंने ऐसे शब्दों का प्रयोग किया जो कुछ लोगों को कडे प्रतीत होते हों तो इसका यही कारण है कि इतने वर्षों के उनके लेखों पर कुछ भी ध्यान नहीं दिया गया दूसरे उन्हें मालूम होगया है कि कुछ वर्षों से अगरेजी शासन प्रणाली क्रमश गिरती जा रही है। बहिनो व सज्जनो—इसके अलावा दादाभाई ऐसे वृद्ध और देश के लाभ के लिये तन मन धन अर्पण करनेवाले मनुष्य को तो सब बातें सच २ कह देना चाहिये और बनावटी लच्छेदार बातों का प्रयोग नहीं करना चाहिये। जिनके करने की आशा आप से और हम से कभी २ की जा सकती है। मेरी समझ में मिस्टर दादाभाई केवल अपने देशवासियों ही के नहीं वरन् शासकों के भी पथ प्रदर्शक कहे जा सकते हैं। और यदि गुरू सचाई को सुन्दर कोमल शब्दों से ढकने की कुछ भी चिन्ता न करें तो उनपर कौन दोषारोपण कर सकता है। सज्जनो ? अगरेजों के शिकायत करने की मुझे कुछ भी परवाह नहीं है। मुझे परवाह उन अपने

परन्तु ऐसा नहीं किया जाता परिणाम यह होता है कि प्रचुर धन इस देश का बिना किसी लाभ के बाहर चला जाता है। हिन्दुस्तान यदि धनी भी होता तो भी इस प्रकार प्रतिवर्ष इतने द्रव्य का बाहर जाना बड़े घबराहट की बात थी। परन्तु सब इस बात को मानते हैं कि हिन्दुस्तान संसार के दरिद्र देशों में से एक है और इसी लिये मिस्टर दादाभाई का कहना है कि इतने धन के चले जाने से देश में बचत नहीं हो सकती। और चूंकि कारीगरी धन पर बद्ध है और धन बचत से एकत्रित होता है अत इतने रुपये प्रतिवर्ष बाहर चले जाने की वजह से देश की कारीगरी नहीं बढ सकती। अब रही बात हम लोगों के बड़े और उत्तरदायित्व के ओहदों में न लिये जाने की इस विषय में उनका कहना बिल्कुल साफ है। जब कि हम भिन्न २ ऊंचे पदों में नियत किये जाने का आन्दोलन करते हैं तो इसमें हमारा यह अभिप्राय नहीं है कि थोड़ी सी जगहें हमारे देश भाइयों को और मिल जाय-यदि ऐसा भी होता तो भी नाक भौं सिकोड़ने की कोई बात नहीं। बल्कि वस्तुत हमारी इच्छा है कि गवर्नमेंट की जिम्मेदारियों में हम भी सम्मिलित किये जांय। हम चाहते हैं कि हम अपने ही देश में ऐसी २ जगहों में काम करें जिस से हमारी शक्ति और आचरण की वृद्धि हो और कार्य्य को आरंभ करने की योग्यता आवे और सचमुच इसी से उन लोगों की भिन्नता मालूम होती है जो शासन करते और जो केवल आज्ञा का प्रतिपालन करते हैं। तब भी बहुत से छिद्रान्वेषी कहते हैं कि मिस्टर दादाभाई थोड़े दिनों से अति कटु शब्दों का प्रयोग कर रहे हैं जो अंगरेजी कर्मचारियों को उत्तेजित करनेवाले हैं। सज्जनों! मेरी इच्छा है कि वे सभ्य जो इस बात की शिकायत

करते हैं एक या दो बातों पर ध्यान दें। प्रत्येक व्यक्ति को मालूम है कि मि० दादाभाई ससार के शातिप्रिय मनुष्यों में से एक हैं और जब ऐसे शाँति प्रिय पुरुप को कडे शब्दों का प्रयोग करना पडे तो यह समझना चाहिये कि सचमुच कुछ ऐसी अवस्थायें आ पडी हैं कि जिनकी वजह से उन्हें कडे शब्दों से काम लेना पडा है। और उनके कडे शब्दों का दोष उन पर नहीं है वल्कि उन पुरुषों पर है जो उन्हें ऐसा करने के लिये विवश करते हैं। मिस्टर दादाभाई के प्रारम्भिक और बीचवाले लेखों को देखिये। मैं विना किसी हिचक के कह सक्ता हू कि कोई एक भी शब्द नहीं निकाल सक्ता जो कडा कहा जा सके। यदि हाल में उन्होंने ऐसे शब्दों का प्रयोग किया जो कुछ लोगों को कडे प्रतीत होते हों तो इसका यही कारण है कि इतने वर्षों के उनके लेखों पर कुछ भी ध्यान नहीं दिया गया दूसरे उन्हें मालूम होगया है कि कुछ वर्षों से अगरेजी शासन प्रणाली क्रमश गिरती जा रही है। बहिनो व सज्जनो—इसके अलावा दादाभाई ऐसे वृद्ध और देश के लाभ के लिये तन मन धन अर्पण करनेवाले मनुष्य को तो सब बातें सच २ कह देना चाहिये और बनावटी लच्छेदार बातों का प्रयोग नहीं करना चाहिये। जिनके करने की आशा आप से और हम से कभी २ की जा सकती है। मेरी समझ में मिस्टर दादाभाई केवल अपने देशवासियों ही के नहीं वरन् शासकों के भी पथ प्रदर्शक कहे जा सकते हैं। और यदि गुरू सचाई को सुन्दर कोमल शब्दों से ढकने की कुछ भी चिता न करें तो उनपर कौन दोषारोपण कर सकता है। सज्जनो ? अगरेजों के शिकायत करने की मुझे कुछ भी परवाह नहीं है। मुझे परवाह उन अपने

परन्तु ऐसा नहीं किया जाता परिणाम यह होता है कि प्रचुर धन इस देश का बिना किसी लाभ के बाहर चला जाता है। हिन्दुस्तान यदि धनी भी होता तो भी इस प्रकार प्रतिवर्ष इतने द्रव्य का बाहर जाना बड़े घबराहट की बात थी। परन्तु सब इस बात को मानते हैं कि हिन्दुस्तान संसार के दरिद्र देशों में से एक है और इसी लिये मिस्टर दादाभाई का कहना है कि इतने धन के चले जाने से देश में बचत नहीं हो सकती। और चूंकि कारीगरी धन पर बद्ध है और धन बचत से एकत्रित होता है अतः इतने रुपये प्रतिवर्ष बाहर चले जाने की वजह से देश की कारीगरी नहीं बढ़ सकती। अब रही बात हम लोगों के बड़े और उत्तरदायित्व के उहदों में न लिये जाने की इस विषय में उनका कहना बिल्कुल साफ है। जब कि हम भिन्न २ ऊंचे पदों में नियत किये जाने का आन्दोलन करते हैं तो इससे हमारा यह अभिप्राय नहीं है कि थोड़ी सी जगहें हमारे देश भाइयों को और मिल जाय—यदि वैसा भी होता तो भी नाक भों सिकोड़ने की कोई बात नहीं। बल्कि वस्तुतः हमारी इच्छा है कि गवर्नमेंट की जिम्मेदारियों में हम भी सम्मिलित किये जायं। हम चाहते हैं कि हम अपने ही देश में ऐसी २ जगहों में काम करें जिस से हमारी शक्ति और आचरण की वृद्धि हो और कार्य्य को आरंभ करने की योग्यता आवे और सचमुच इसी से उन लोगों की भिन्नता मालूम होती है जो शासन करते और जो केवल आज्ञा का प्रतिपालन करते हैं। नये भी बहुत से छिद्रान्वेषी कहते हैं कि मिस्टर दादाभाई थोड़े दिनों से अति कटु शब्दों का प्रयोग कर रहे हैं जो अंगरेज़ी कर्मचारियों को उत्तेजित करनेवाले हैं। सज्जनों! मेरी इच्छा है कि वे सभ्य जो इस बात की शिकायत

करते हैं एक या दो बातों पर ध्यान दें। प्रत्येक व्यक्ति को मालूम है कि मि० दादाभाई संसार के शांतिप्रिय मनुष्यों में से एक हैं और जब ऐसे शाँति प्रिय पुरुष को कड़े शब्दों का प्रयोग करना पड़े तो यह समझना चाहिये कि सचमुच कुछ ऐसी अवस्थायें आ पड़ी हैं कि जिनकी वजह से उन्हें कड़े शब्दों से काम लेना पड़ा है। और उनके कड़े शब्दों का दोष उन पर नहीं है बल्कि उन पुरुषों पर है जो उन्हें ऐसा करने के लिये विवश करते हैं। मिस्टर दादाभाई के आरम्भिक और बीचवाले लेखों को देखिये। मैं बिना किसी हिचक के कह सक्ता हूँ कि कोई एक भी शब्द नहीं निकाल सका जो कड़ा कहा जा सके। यदि हाल में उन्होंने ऐसे शब्दों का प्रयोग किया जो कुछ लोगों को कड़े प्रतीत होते हों तो इसका यही कारण है कि इतने वर्षों के उनके लेखों पर कुछ भी ध्यान नहीं दिया गया दूसरे उन्हें मालूम होगया है कि कुछ वर्षों से अगरेजी शासन प्रणाली क्रमश गिरती जा रही है। बहिनो व सज्जनो—इसके अलावा दादाभाई ऐसे वृद्ध और देश के लाभ के लिये तन मन धन अर्पण करने वाले मनुष्य को तो सब बातें सच २ कह देना चाहिये और बनावटी लच्छेदार बातों का प्रयोग नहीं करना चाहिये। जिनके करने की आशा आप से और हम से कभी २ की जा सकती है। मेरी समझ में मिस्टर दादाभाई केवल अपने देशवासियों ही के नहीं वरन् शासकों के भी पथ प्रदर्शक कहे जा सकते हैं। और यदि गुरू सचाई को सुन्दर कोमल शब्दों से ढकने की कुछ भी चिंता न करें तो उनपर कौन दोषारोपण कर सकता है। सज्जनो? अगरेजों के शिकायत करने की मुझे कुछ भी परवाह नहीं है। मुझे परवाह उन अपने

देशवासियों के कहने की है जो देश के लिये कुछ भी न करते हुये विना किसी हिचक के कह डालते हैं कि कड़े शब्दों का प्रयोग करके मिस्टर दादाभाई नौरोजी देश के हित की हत्या कर रहे हैं। सज्जनो मिस्टर दादाभाई चाहे मृदु शब्दों का प्रयोग करें चाहे कठिन शब्दों का प्रयोग करें, जो दादाभाई को नहीं सुनता उसे हम अपना नहीं कह सकते। जो उद्दंडता से उनपर घृणा करके अपना हाथ साफ करते हैं वे एक तरह से उनका वध करते हैं।

भद्र स्त्री और पुरुषो! मैं आप लोगों को अब रोकना नहीं चाहता। प्रथम इसके कि मैं अपने वक्तव्य को समाप्त करूं मेरी इच्छा है कि उपदेश के दो एक शब्द अपने नवयुवक भ्रातागणों के सामने रक्खूं। मेरे प्यारे नवयुवको विचारिए तो सही कि मिस्टर दादाभाई को पैदा कर परमात्मा ने कैसा सुन्दर आदर्श आपके सामने रक्खा है। इस महान व्यक्ति के प्रति हृदय में उत्पन्न हुआ आप लोगों का जोश यदि उसके नाम पर तालियों के पीटने ही पर सीमा बद्ध रहा तो (स्मरण रखिये) आज के उत्सव के उद्देश की पूर्ति मुश्किल से होगी। मेरी इच्छा है कि उनके जीवन से लभ्य शिक्षाओं पर विचार कीजिये और यथाशक्ति उन्हें कार्य्यरूप में परिणित करने का प्रयत्न कीजिये ताकि एक न एक दिन वे आप में सलग्न हो जाय। सज्जनो भिन्न २ समय में भिन्न २ जातियों में सब को प्यार करने वाले और बुद्धिमान परमात्मा आवश्यकतानुसार निर्बल और बुरे मार्ग पर जाते हुये मनुष्यों को रास्ता दिखलाने के लिये महान पुरुष प्रदान किया करते हैं। इसमें कुछ भी शंका नहीं है कि इन्हीं महान पुरुषों में से दादाभाई को परमात्मा ने हमारे देश वासियों के मध्य भेजा है। मेरी समझ में ऐसा बड़ा देशभक्त

कदाचित ही किसी दूसरे देश में पैदा हुआ हो।

यद्यपि हममें से कोई भी उनके गौरव को प्राप्त नहीं कर सकता है और उनका ऐसा अदम्य संकल्प, परिश्रम करने की प्रचंड शक्ति, और मस्तिष्क हममें से बहुत थोड़ाको सुलभ हो सकता है परन्तु उनकी तरह हमलोग बिना किसी जाति पाति के टंटे के अपने देश को तो प्यार कर सकते हैं और उस बड़े उद्देश के लिये जिसकी पूर्ति के लिये वे चिरकाल से इतनी दृढ़ता के साथ परिश्रम करते चले आये हैं हम लोग भी कुछ न कुछ बलिदान अवश्य कर सकते हैं। नतीजा यह निकला कि अपनी मातृभूमि के लिये बलिदान करने की शिक्षा मिस्टर दादाभाई के जीवन से प्राप्त की जा सकती है। और यदि ये हमारे नव युवक इस (महामंत्र) का अपने जीवनों में कुछ भी परिशीलन करना प्रारम्भ करदें तो देखने से भविष्य चाहे अंधकार मय ही मालूम पड़ता हो किन्तु उससे अवश्य ही भला होगा।

भद्र स्त्री और पुरुषो! आपने बड़ी धीरता से मेरे व्याख्यान को सुना इसके लिये मैं आप लोगों को हृदय से धन्यवाद देता हूं।

मि० महादेव गोविन्द रानाडे

(६ जुलाई सन् १९०१ ई० को बम्बई के तत्कालीन गवर्नर श्रीमान् लार्ड नार्थकोट की अध्यक्षता में बम्बई की स्मारक सभा में मिस्टर गोखले ने मिस्टर महादेव गोविन्द रानाडे पर निम्न लिखित वक्तृता दी।)

श्रीमान् इन दिनों यदि किसी हिन्दुस्तानी को उसके प्रिय कृतज्ञ और दुखपीड़ित देशवासियों से स्मारक मिलना चाहिये तो वह हिन्दुस्तानी परलोकवासी निःसन्देह रानाडे ही है। ४० वर्ष तक उन्होंने अपूर्वश्रद्धा और दृढता के साथ हम लोगों के लिये केवल एक ही क्षेत्र में नहीं वरन् सब कार्य्य क्षेत्रों में परिश्रम किया और कठिन से कठिन निराशाओं में भी अपने सिद्धान्त पर अटल रहे। जो काम उन्होंने हमारे लिये किये हैं जो आदर्श व्यक्तिगत तथा सामाजिक जीवन के लिये उन्होंने हमारे सम्मुख रक्खे हैं और मातृभूमि के लिये भले प्रकार जीवन अर्पण करने का जो उच्च उदाहरण उन्होंने हमें दिखलाया है। इन सब की गणना हमारे देशवासियों के अमूल्य वस्तुओं में सदा की जायगी।

इसमें कोई सन्देह नहीं कि मिस्टर रानाडे ने अपने काम के अधिकतर भाग को उस प्रचण्ड बुद्धि से किया है जिसे परमात्मा ने उन्हें पूरे तोर पर दी थी। परन्तु अकेले इस प्रचण्ड बुद्धि से काम न चलता यदि साथ ही साथ उनमें धीरता के साथ अपूर्व परिश्रम, कठोर आत्म-संयम और नैतिक शक्ति न होती। यदि किसी व्यक्ति में केवल येही शक्तियां विद्यमान हों तो भी वह अपने देशभाइयों में बड़ामान प्राप्त कर सकता है।

इस प्रस्तावना का अभिप्राय यह है कि मिस्टर रानाडे के स्मारक चिन्ह बनाने के लिये सब लोगों से चंदा इकट्ठा करना चाहिये। मेरी समझ में ऐसा ठीक भी है क्योंकि रानाडे में जाति पक्षपात नहीं था, वे दूसरे समाजों की अच्छी बातों को मानने के लिये उद्यत थे और उनसे मिलजुल कर एक ही उद्देश की पूर्ति के लिये काम करते थे। उनके जीवन में एक यह भी उद्देश था कि भिन्न २ समुदायों के लोग जातीयता के ख्याल से एक ही प्लेटफार्म पर खड़े हों और यह कहें कि हम सब हिन्दुस्तानी हैं और हिन्दू, मुसलमान, पारसी, ईसाई कहलाना हमारा गौड़ उद्देश है। मिस्टर रानाडे के विचार-सम्प्रदायीक और संकीर्ण नहीं थे।

उनकी यह इच्छा थी कि मनुष्य के प्रत्येक कामो में उन्नति हो और सब समुदायों का भला हो। सर्वोपरि जो बात वे हमें सिखलाना चाहते थे वह यह थी कि हम मनुष्य का गौरव उसके मनुष्य होने के कारण करें।

हम सब लोगों को मालूम है कि कितनी दृढ़ता के साथ मिस्टर रानाडे उस सिद्धान्त पर काम करते रहे जिस उन्होंने अपने सन्मुख रक्खा था। उनके जीवन का वह एक उच्च मिशन था परन्तु उसकी पूर्ति के लिये जो २ आपत्तियां उन्हें उठानी पड़ीं वे कम नहीं थी। उन्हें शारीरिक कष्ट तो उठाना ही पड़ा इसके अतिरिक्त उन्हें मानसिक कष्ट भी झेलने पड़े। उन्होंने इतने बड़े बोझे को सहन किया। चूं तक भी नहीं किया और न कभी आराम की इच्छा की, ८० वर्ष पूर्व इसी स्थान में मिस्टर तेलंग के विषय में कहते हुये मिस्टर रानाडे ने कहा था कि सामाजिक परिवर्तन के समय सुधारकों को बड़ी कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है।

मिस्टर रानाडे को भिन्न २ कार्य क्षेत्रों में--इस-प्रकार के कष्टों का सामना करना पडा-और उससे जो दुख उन्हें पैदा हुआ उसे सहन किया। सामाजिक और धार्मिक विषयों के अलावा राजनैतिक विषयों-में भी दुख उठाना पडा। एक ओर तो शासकों के उदार कामों और कठिनाइयों का- विचार था और दूसरी ओर देश के फायदे का खयाल था। वे ऐसे प्रयत्न करते थे जिनसे किसी को क्षति न पहुंचे और ऐसा करने में उन्हें बड़ी चिन्ता और दुख का सामना करना पडता था। परन्तु मिस्टर रानाडे ऐसी २ तकलीफों को खुशी से सह लेते थे और कहते थे कि भविष्य में इनसे अच्छा फल निकलेगा। एक समय उन्होंने कहा था कि हमें अपने को सहन करना चाहिये इसलिये नहीं कि यह सहन में स्वाद मालूम होता है बल्कि इस कारण से कि इसके अन्तगत नतीजों का गौरव इन दुखों और कठिनाइयों से कहीं बढ़ कर है। मिस्टर रानाडे में दूसरा बड़ा गुण जिसका उल्लेख मैं यहाँ पर करना चाहता हू यह था कि इन्होंने सदैव अपने आचरण का विचार रक्खा और जो नियम एक मरतबा स्थिर कर लिया उस पर जीवन पर्य्यंत अटल रहे। मिस्टर रानाडे से बढ़कर और किसी दूसरे पुरुष को अपने आचरण का इतना ख्याल नहीं था। दर्जे का आत्म संयम जो उनमें था कोई परमात्मा का देन नहीं था बल्कि उन्हीं कठिन नियमों का नतीजा था जिन को वे सदैव अपने जीवन में परिणित करते जाते थे। मैंने प्राय देखा है कि वे सावधानतया उन असहनीय दोषों को सुना करते थे जो उनके विरुद्ध लगाये जाते थे और अपनी प्रशंसाओं की कुछ परवाह भी नहीं करते थे। यह एक भूल की बात है कि उनका स्वभाव ऐसा था कि उन पर कुछ भी

प्रभाव नहीं पडता था। यह सत्य है कि उनके रहने और काम का ढग साधारण मनुष्यों के ढङ्ग से बिल्कुल भिन्न था परन्तु मस्तिष्क अतीव कोमल था और उस पर हरप्रकार के अन्याय का बडा भारी असर पडता था। परन्तु उन्हें यह सब स्वीकृत था। वे कहते थे कि इससे मेरे आचरण को बडा लाभ होगा और इसकी कभी शिकायत उन लोगों से भी कभी नहीं किया जो उनके पास रहते थे। मेरे मित्र सर वालचन्द्र जी ने उनकी उस अपूर्व फुर्ती का उल्लेख पहिले ही कर दिया है। जिससे वे देश के सच्चे काम करनेवालों को जान जाते थे और उन्हें काम करने का उत्साह देते थे। इस विषय में उनकी बुद्धि बडी काम करती थी। परिणाम यह था कि जिस प्रकार ग्रह अपनी २ जगह पर घूमते हुये सूरज से रोशनी और चमक प्राप्त करते हैं उसी प्रकार इस देश के भिन्न २ स्थानों में रहते हुये लाभ करनेवाले मिस्टर रानाडे से शिक्षा और उत्साह प्राप्त करते थे।

उनमें प्रत्येक काम के करने की श्रद्धा भी बडी प्रचण्ड थी। जिसे वे नवयुवकों में हुम २ कर भरने का प्रयत्न करते थे। जिन नवयुवकों को उनसे घना सम्बन्ध था उनके लिये उनके शब्द ही कानून थे और उनकी प्रसन्नता ही ससार में सब से बडा पारतोषिक था। मिस्टर रानाडे में सचमुच एक बडे गुरु के गुण विद्यमान थे। और जब कि ऐसा बडा गुरु हमारे बीच से चल बसा तो क्या हमारे लिये यह सोचना आश्चर्य्य की बात है जो रोशनी भूलते हुये पद चिन्हों को अभी तक मार्ग दिखलाती थी वह बुझ गई और एकाएक अकस्मात् हमारे जीवनों में अन्धेरा छा गया। तथापि हम लोग नम्रता पूर्वक परमात्मा से प्रार्थना करते हैं कि परमात्मन् जिस

प्रकार आपने हमारे देश के लिये मिस्टर रानाडे को दिया था उसी प्रकार समय पर उन्हीं के सदृश दूसरे पुरुष को उत्पन्न करे। इस समय हमारा कर्तव्य यह है कि हम उनके नामकी उपासना करें, उनके उदाहरणों को एकत्रित करें उनकी शिक्षाओं पर दृढ़ रहें और इस बात का विश्वास रक्खें कि हम जाति को अपने भविष्य पर निराश नहीं होना चाहिये जिसने एक रानाडे को उत्पन्न किया है।

(सन् १८०३ ई० को रानाडे की मृत्यु सम्बन्धी सभा, में श्रीमान् गोखले ने निम्न लिखित वक्तृता बम्बई के हिन्दू यूनियन क्लब में दी था।)

श्रीमान् सभापति महोदय, महिलाओ और सज्जनो, गत जनवरी में मेरे मित्र मिस्टर पाद्धे ने हिन्दू यूनियन क्लब की ओर से मुझे लिखा था कि मैं मिस्टर रानाडे की मृत्यु पर इस वर्ष की सभा में उपस्थित होकर व्याख्यान दूं। जिस समय मुझे उनका पत्र मिला तो मैंने विचार किया कि उनकी इस आज्ञा का प्रतिपालन करना मेरा कर्तव्य है; परन्तु उस समय मैं कलकत्ते में था और मार्च के अन्त के पहिले मेरे लौटने की कोई आशा नहीं थी। मैंने अपनी स्थिति लिख भेजी और कहा कि मैं क्लब की सेवा कर सकता हूं यदि सभा की तिथि यदि किसी प्रकार टाल देना उचित समझा जाय। कमेटी ने बड़े आग्रहपूर्वक मेरे कहनेको मान लिया और एक दिन ऐसा निश्चित कर दिया जिस समय मैं आराम के साथ उपस्थित हो सकूं। यही कारण है कि इस समय मुझे उस वक्तृता को देने के लिये खड़ा हुआ देखते हैं जो सचमुच है मास पूर्व ही दे दी गई होती।

भद्र स्त्री और पुरुषो !

मिस्टर पाण्डे के पत्रों के उत्तर में "जी हां" कह देना बडी सुगम बात है परन्तु मैं अपने वक्तव्य में क्या कहूंगा इस विषय पर विचार करना कोई सरल बात नहीं है। आप सब लोगों को मालूम है कि मिस्टर रानाडे बडे कुशाग्र बुद्धि के थे, बडे परिश्रमी थे और उनकी विवेचन शक्ति बडी प्रबल थी महान आत्मा लगातार बिना एक दिन ठहरे ३५ वर्ष पर्यंत लगातार पढता, सोचता लिखता, बोलता और काम करता रहा। उनके विषयमें वक्तृता देने के लिये सामिग्रियों का बडा ढेर है। वे वक्ता का घबडा देनेवाली हैं। मिस्टर रानाडे के जीवन की भिन्न२ अवस्थाओं पर एक दरजन लेक्चरों का देना सुगम है परन्तु इस समय उनके विषय में एक आम खींच देना सुगम नहीं है। अतएव हम कह सकते हैं कि मिस्टर रानाडे हमारे समय के बडे सच्चरित्र महात्मा और उनके साथ का रहना बडा पवित्र और आचरण पर प्रभाव डालनेवाला था, अथवा यों कहिये कि वे एक बडे देश भक्त थे। उनके हृदय में देश-प्रेम उमडा पडता था। वे बिना थकावट के हिन्दुस्तान की भलाई के लिये प्रयत्न करते जाते थे।

वे एक बडा उदाहरण हैं जिसका इस देश के लोगों को अनुकरण करना चाहिये, अथवा यह कहिये कि वे एक बडे सुधारक थे जिनकी सर्वव्यापिनी दृष्टि हमारे समय के ऊपर से नीचे तक के कुल अंग पर पडती थी और उससे न तो राजनीतिक न सामाजिक, न धार्मिक, न औद्योगिक, न आध्यात्मिक और न शिक्षा सम्बन्धी कोई बात छूटने पाती थी। अथवा यह कहिये कि वे बडे विद्वान् गुरु या एक हमारे समय के एक बडे कार्य्यकर्त्ता थे। हम उनकी सम्मतियों

श्रोर शिक्षाओं को और उन कार्य पद्धतियों को एकत्रित कर सकते हैं जो भिन्न २ कार्यक्षेत्रों में प्रिय थीं और उन पर विचार कर सकते हैं। इस प्रकार हम एक दरजन वक्तृताये दे सकते हैं और तब भी हमारे विषय की समाप्ति नहीं हो सकती। मिस्टर रानाडे के इन सब गुणों को लेते हुये और उनको साधारण तौर से वर्णन करते हुये एक आम स्पीच का देना मेरी सम्मति में बड़ा कठिन काम है। जो कुछ मैं आज कहना चाहता हूं उसमें मैं श्रीयुत रानाडे की जीवनकी घटनाओं या उनके कार्यों की आलोचना करने का उद्योग न करूंगा।

प्रथम तो यह हमारा समय उनके समय से बहुत दूर नहीं है और दूसरे मैं बिल्कुल समीप ही रहता था। अतः मुझ में वह अलहदगी नहीं जिसके बिना आलोचनात्मक विचार नहीं किये जा सकता है। परन्तु इस सामीप्य के कारण जिसको मैं वर्णन करने में असमर्थ हूं मुझे अच्छे २ अवसर हाथ लगे और मैं उनके भीतरी विचार, आशाओं और उद्देशों और उनके उस आकर्षक प्रभाव के उद्गम से भिज्ञ होगया जो उनसे मिलने वाले लोगों पर पड़ता था इन्हीं बातों पर आज मैं बोलना चाहता हूं। मुझे उनके साथ १४ वर्ष तक रहने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। इस बीच में जिन २ गुणोंके कारण मैं आश्चर्य में पड़ जाता था उन्हीं २ गुणोंको यथाशक्ति संक्षिप्तरूपमें बयान करूंगा। यह बताऊंगा कि उनका दृढ़ संकल्प क्या था, और कठिनाइयों और निराशाओं में वह दृढ़ संकल्प किस प्रकार अटल रहा। और अन्त में यह बताऊंगा कि उन्होंने अपने देश के होनहार बच्चों के लिये क्या सन्देशा छोड़ा है ताकि वह फस्ल जिसके लिये

उन्होंने इतना परिश्रम किया काटी जा सके और उपयुक्त समय पर आत्मा से दूर न हो जाये।

मिस्टर रानाडे से मिलने पर पहिली बात जो देखने में आती थी, उनकी स्वच्छ, तीव्र और गहरी देशभक्ति थी, जो उनके विशाल शरीर के भीतर भरी हुई थी। मेरा अनुभव है कि यदि दूसरा और कोई पुरुष इस प्रकार दिन रात अपने देश की भलाई के लिये विचारों में डूबा हुआ मुझे मिला है तो वे मिस्टर दादाभाई नौरोजी हैं। वे भारत के प्राचीन समय को बड़े गौरव और घमंड की दृष्टि से देखते थे। परन्तु वर्तमान और भविष्य में उनकी दृष्टि विशेषरूप से रहा करती थी और यही कारण था कि उन्होंने सुधार के भिन्न २ कार्यक्षेत्रों में अपूर्व और आश्चर्यजनक काम कर दिखाया। मिस्टर रानाडे को पूर्णतः स्पष्ट रूप से मालूम होगया था कि किन २ बड़े २ कामों को हम भारतवर्ष के निवासी अंग्रेजी शासन में कर सकते हैं, वे उन रुकावटों से भी परिचित थे जिनका सामना करते हुए ही देश के लिये वर्तमान अवस्थाओं में काम किया जा सकता है। मैंने सुना है कि जब वे कालिज में थे तब उनके विचार बड़े उद्दण्ड थे। स्वर्गवासी जवेरीलाल भाई ने एक दफा मुझ से कहा था कि मिस्टर रानाडे ने उन दिनों एक लेख लिखा था जिसमें उन्होंने मराठा गवर्नमेन्ट के मुकाबिले में अंग्रेजी गवर्नमेन्ट की खूब धूल उड़ाई थी। उस समय के प्रिंसिपल (इलफिस्टन कालिज के) मिस्टर रानाडे को बड़े मान और प्रेम की दृष्टि से देखते थे। प्रिंसिपल साहब ने उन्हें बुलाकर उनके विचारों की गलतियां समझाईं और कहा, "ऐ नवयुवक जो गवर्नमेंट तुम्हें शिक्षा दे रही है और तुम्हारे देश के लिये इतना कर रही है, तुम्हें उसका

इस प्रकार का अनादर नहीं करना चाहिये । यह कह कर उन्होंने क्रोध में आकर मिस्टर रानाडे की ६ मासकी छात्रवृत्ति बंद कर दी । इस भर्त्सना से मिस्टर रानाडे के चित्तपर बुरा प्रभाव पड़ा । वे जीवन पर्यन्त बड़ी श्रद्धा और प्रेम से रखते रहे अधिक पढ़ने और गुनने से उनके विचार विस्तृत हुये । चिरकाल पश्चात् वे अपना जीवनोद्देश समझ सके और उसे प्राप्त किया। कोई अन्याय, कोई निराशा उनके मार्ग को नहीं रोक सकी । उनके जीवन का केवल मात्र उद्देश यही था कि हिन्दुस्तान इतनी शताब्दियों की सुस्ती से उठे और यहाके लोग सच्चे, न्यायी, स्वाभिमानी बने और उनमें उच्चविचार और जातीयता के लिये काम करने के विचार उत्पन्न हों। उन्होंने मान लिया कि हिन्दुस्तान और इङ्गलेंडका पारस्परिक सम्बन्ध परमात्मा की कृपा से हुआ है और इसी सबब से हमारे उद्देश की पूर्ति होगी । उनका यह सिद्धान्त विघ्नों के पड़ने पर भी नहीं डिगा । यहा तक कि वे उस समय भी इस पर दृढ थे जब कि लोग उनके उद्देशों के तात्पर्य को उल्टा समझ रहे थे वे सदा अपने उद्देश्यों पर दृढ़ रहे । जो उनके समीपस्थ थे उनसे वे प्राय "कहा करते थे इस वर्तमान शासन पद्धति में यद्यपि व्यक्तिगत उन्नति करने तथा व्यक्तिगत योग्यता दिखलाने के लिये कार्य करने का संकीर्ण क्षेत्र है तब भी हमारे देशवासियों का बहुत कुछ भला हो सकता है और यदि अपनी स्थिति पर विचार करके अवसरों को हाथ से न जाने दें तो हमारा भविष्य बहुत अच्छा हो सकता है ।

और उनका यह प्रबल और उत्साहपूर्ण विश्वास ही था जिसके कारण वे सुधार के कार्यक्षेत्र में काम करते रहे।

वे सत्य को चाहनेवाले और असत्य के विरोधी थे परन्तु इन्हीं दो के कारण वे सुधारक नहीं कहलाये । वे स्वभाव में बडे सहनशील थे और जहा तक हो सकता था वहा तक दूसरों की धार्मिक और सामाजिक बातों का खडन करके उनकी आत्मा को दुख नहीं पहुचाते थे। ससार और भारत वर्ष के इतिहास में बडे २ सुधारक हो गये जिन्होने अपने अदर परमात्मा की आवाज से सत्य बात कहने को प्रेरित होकर अपने अत करण के अनुसार काम करते हुये शरीर की आहुति दी है। मेरी राय में ऐसे लोगों का स्थान निराला ही होता है और मनुष्य को शील से जो स्थान लाभ किया जा सकता है वह उन सब में उच्च है।

उन्होंने सुधार इस मतलब से नहीं किये कि उनके अत-करण ने उन्हें ऐसा करने के लिये कहा बल्कि उन्हें दृढ विश्वास था कि बिना सुधार के हमारी जाति स गठन की कोई भी आशा नहीं है। वे पुरुष जो सच्चाई की शिक्षा सच्चाई ही के लिये देते हैं यद्यपि एकही स्थान में एक समय के लोगों के सन्मुख भाषण करते हैं परन्तु सचमुच वे मनुष्यमात्र का भला करते हैं। रानाडे को अपने ही देश में जीवित रहने और, इसी के लिये लाभ करनेमें सतोष था। वे इतिहास और दूसरी जातियों के आचार व व्योहार के पूर्ण पडित थे और इनको पढकर अपने देश के हित के लिये उनसे शिक्षायें लिया करते थे। मिस्टर रानाडे के काम और शिक्षाओं को समझने के लिये मेरी सम्मति में उनके और दूसरे सुधारकों में अतर जान लेना बडा जरूरी है। पस राजाराम मोहन, राय मूर्ति पूजा के विरुद्ध थे क्योंकि उनकी समझ में, मूर्तिपूजा निरर्थक है, झूठी है और इन्हीं कारणों से वे मूर्तियों

पी इतनी बुराई करते थे, मिस्टर रानाडे ने भी मूर्तिपूजा खण्डन की है। क्योंकि लोगों के नीच औरवृथा विश्वास में पड जाने का भय है और यह जाति के धार्मिक और मानसिक उन्नति में एक प्रकार का कांटा है। मेरी इच्छा है कि इसको आप लोग इस बात को अच्छे प्रकार नोट करलें क्योंकि इस से और मिस्टर रानाडे के आचरण से बहुत कुछ सम्बन्ध है और कभी २ इससे उनके मित्र आश्चर्य में पढ जाया करते हैं। आप लोगों को भली भांति स्मरण होगा कि कुछ वर्ष पूर्व प्रार्थना समाज के कतिपय सभासद मिस्टर रानाडे से अप्रसन्न होगये थे क्योंकि वे ठाकुर द्वारे के मन्दिर में तुकाराम, रामदास और एकनाथ महात्माओं की जीवनियों पर व्याख्यान देने के लिये गये थे। यद्यपि उनकी बातें और समाज की शिक्षायें बिल्कुल मिलती जुलती थीं परन्तु चूंकि वे समाज के एक विख्यात सभासद थे अत मूर्तिपूजाक स्थान में आने और वहा व्याख्यान देने के कारण कुछ लाग बिगड गये (एक तरह से) उस समय उनका ऐसा सोचना गलत नहीं था, सम्भवत उनकी जगह मैं भी यही ख्याल करता। परन्तु रानाडे कहते थे कि हमें ता वक्ताओं से काम है जगह की कुछ परवाह नहीं वे चाहते थे कि मेरे विचार मेरे देशवा सियों तक पहुच जायें। मुझे उनके मध्य बोलने का अवसर चाहिये इस बात की कुछभी परवाह नहीं है कि वे कहा एक त्रित हुये हैं।

दूसरी बात जो मिस्टर रानाडे में पाई जाती थी वहयह थी कि वे हमारे समय के हिन्दुस्तानियों से विचार शक्ति में सबसे बढ़े चढ़े थे। उनका दिमाग अच्छे प्रकार तुला हुआ था। व - एक बात को समझ बूझकर और न्याय की दृष्टि से देख

पर ग्रहण करते थे। नतीजा निकालने में कभी भी जल्दी नहीं करते थे। वे अन्दर तक घुस जाते और और नतीजे दृढ़ निकालते थे। उनके सिद्धान्त अधिक पाठन, आलोचन और पूरी मीमांसा पर निर्धारित थे। जब यह एक मरतबा बन जाते थे तो विश्वसनीय होने के कारण सर्वसाधारण पर उनके मानने के लिये बड़ा जोर डाला जाता था। उनकी कुशाग्र बुद्धि जातीयता के सब कामों में दौड़ती थी। उन्हें ख्याल था कि देश की प्रत्येक आवश्यकताओं पर एकमा ध्यान देना चाहिये।

इसी कारण से सभी कामों की ओर उनकी विशेष रुचि थी। जितना परिश्रम उन्होंने राजनैतिक कमजोरियों का दूर करने में, शासकों के अत्याचारों को दूर करने में किया उतनाही परिश्रम उन्होंने स्त्रियों को शिक्षित करने, बालविवाह का रोकने, विधवाओं की शादी करने, अछूत जातियों का उद्धार करने, देश की आर्थिकस्थिति बदलने और पूजा विधान का अधिक पवित्र और सरल और आध्यात्मिक बनाने में किया। इन सब आवश्यकताओं को निपकृण करते हुए उन्होंने इस बात पर अधिक जोर दिया कि नवयुवकों को काम करने का उत्साह अधिक बढ़े ताकि उनके काम पवित्र हों, विचार उच्च हों, और उनका जीवन पराक्रम और अच्छे उद्देशों से पूर्ण हो। उनके विचार बड़े साहस सरगरमी और आमद पूर्वक लोगों के कानों तक पहुंचाये गये। वे इतने प्रौढ़ थे कि कोई अनगिनत दबाव और विचार उनको रोक नहीं सकते थे उनपर अगिनत चाहे कितने ही अन्याय और आक्षेप किये जाते थे परन्तु उनके सिद्धान्तों पर किसी प्रकार की [illegible] पहुंचने पाती थीं।

को इतनी बुराई करते थे, मिस्टर रानाडे ने भी मूर्तिपूजा खण्डन की है। क्योंकि लोगों के नीच औरवृथा विश्वास में पड जाने का भय है और यह जाति के धार्मिक और मानसिक उन्नति में एक प्रकार का काटा है। मेरी इच्छा है कि इसको आप लोग इस बात को अच्छे प्रकार नोट करलें क्योंकि इस से और मिस्टर रानाडे के आचरण से बहुत कुछ सम्बन्ध है और कभी २ इससे उनके मित्र आश्चर्य में पढ जाया करते हैं। आप लोगों को भली भांति स्मरण होगा कि कुछ वर्ष पूर्व प्रार्थना समाज के कतिपय सभासद मिस्टर रानाडे से अप्रसन्न होगये थे क्योंकि वे ठाकुर द्वारे के मन्दिर में तुकाराम, रामदास और एकनाथ महात्माओं की जीवनियों पर व्याख्यान देने के लिये गये थे। यद्यपि उनकी बातें और समाज की शिक्षायें बिल्कुल मिलती जुलती थीं परन्तु चूंकि वे समाज के एक विख्यात सभासद थे अत मूर्तिपूजा के स्थान में जाने और वहा व्याख्यान देने के कारण कुछ लाग बिगड गये (एक तरह से) उस समय उनका ऐसा सोचना गलत नहीं था, सम्भवत उनकी जगह मैं भी यही ख्याल करता। परन्तु रानाडे कहते थे कि हमें ता वक्तृताओं से काम है जगह की कुछ परवाह नहीं वे चाहते थे कि मेरे विचार मेरे देशवासियों तक पहुच जायें। मुझे उनके मध्य बोलने का अवसर चाहिये इस बात की कुछभी परवाह नहीं है कि वे कहा एकत्रित हुये हैं।

दूसरी बात जो मिस्टर रानाडे में पाई जाती थी वहयह थी कि वे हमारे समय के हिन्दुस्तानियों से विचार शक्ति में सबसे बढे चढ़े थे। उनका दिमाग अच्छे प्रकार तुला हुआ था। वे हर एक बात को समझ बूझकर और न्याय की दृष्टि से देख

पर ग्रहण करते थे। नतीजा निकालने में कभी भी जल्दी नहीं करते थे। वे अन्दर तक घुस जाते और ओर नतीजे दृढ़ निकालते थे। उनके सिद्धान्त अधिक पठन, आलोचन और पूरी मीमांसा पर निर्धारित थे। जब यह एक मरतबा बन जाते थे तो विश्वसनीय होने के कारण सर्वसाधारण पर उनके मानने के लिये बड़ा ज़ोर डाला जाता था। उनकी कुशाग्र बुद्धि जातीयता के सब कामों में दौड़ती थी। उन्हें ख्याल था कि देश की प्रत्येक आवश्यकताओं पर एकसा ध्यान देना चाहिये।

इसी कारण से सभी कामों की ओर उनकी विशेष रुचि थी। जितना परिश्रम उन्होंने राजनैतिक कमज़ोरियों को दूर करने में, शासकों के अत्याचारों को दूर करने में किया उतनाही परिश्रम उन्होंने स्त्रियों को शिक्षित करने, बालविवाह को रोकने, विधवाओं की शादी करने, अछूत जातियों का उद्धार करने, देश की आर्थिकस्थिति बदलने और पूजा विधान को अधिक पवित्र और सरल और आध्यात्मिक बनाने में किया। इन सब आवश्यकताओं को निरूपण करते हुये उन्होंने इस बात पर अधिक ज़ोर दिया कि नवयुवकों को काम करने का उत्साह अधिक बढ़े ताकि उनके काम पवित्र हों, विचार ऊँचे हों, और उनका जीवन पराक्रम और अच्छे उद्देशों से पूर्ण हो। उनके विचार बड़े साहस सरगरमी और आग्रह पूर्वक लोगों के कानों तक पहुंचाये गये। वे इतने प्रौढ़ थे, कि कोई अनर्गल प्रलाप और विचार उनको रोक नहीं सकते थे उनपर व्यक्तिगत चाहे कितने ही अन्याय और आक्षेप किये जाते थे परन्तु उनके सिद्धान्तों पर किसी प्रकार की खराबियां नहीं पड़ने पाती थीं।

आप लोगों में से कदाचित् जानते होंगे कि २५ वर्ष हुये दक्खिन में बड़ी अशान्ति थी। वासुदेव बलवन्त नाम का एक पूनानिवासी बहुत से उजड्ड लोगों को लेकर खुल्लम खुल्ला गवर्नमेंट के विरुद्ध उठ खड़ा हुआ और वह निरपराधी लोगों को लूटने लगा। सर रिचर्ड टेमपिल की गवर्नमेंट ने ख्याल किया कि पूना के बड़े २ लोग भी इसमें सहानुभूति प्रगट करते और सहायता देते हैं क्योंकि वासुदेव बलवन्त पूना का रहने वाला एक ब्राह्मण है। उन्होंने मिस्टर रानाडे पर भी सन्देह किया। अवश्य ही यह सन्देह बड़ा ही भयानक था और नितान्त अनुचित था क्योंकि रानाडे पूना के समर्य्याद आन्दोलन् के वे माने हुये मुखिया थे और यह सब को मालूम था कि वासुदेव बलवन्त के भीषण उपायों के सर्वथा विरुद्ध थे। तब भी मई सन् १८७९ ई० में किसी बदमाश ने पूना के दो स्थानोंमे आग लगादी। गवर्नमेंट ने एकदम मिस्टर रानाडे का तबादला धूलिया में कर दिया। उनका तबादला पहिले ही से नासिक को हो चुका था परन्तु पूना से अधिक दूर होने के कारण धूलिया अधिक सुरक्षित ख्याल किया गया। यद्यपि अभी छुट्टियों के दिन बाकी थे तब भी उनके पास हुकुम भेजा गया कि व पूना को छोड़कर एकदम धुलिया को रवाना हो जाय। गवर्नमेंट की यह कारर्वाई इतनी विचित्र थी कि हाईकोर्ट ने भी अन्त में इस तबादले का विरोध किया। बात तो यह थी कि मिस्टर रानाडे ने स्वयं ...को गिरफ्तार किया और उस का बयान लिया। ... पहुचने पर उनके खानगी जातीय पत्र व्यवहार एक ... तक बड़ी खबरदारी के साथ देखे गये आश्चर्य की ... तो यह थी कि उनके पास पूनावालों की ओर से

ऐसे पत्र आने लगे जिसमें बड़े २ डाकुओं के होनेवाले अत्याचारों की रिपोर्ट थी। मिस्टर रानाडे को फौरन मालूम होगया पुलिसवाले ऐसे २ पत्र यह जानने के लिये भेजते हैं आया मुझ से वासुदेव से कोई सम्बन्ध है या नहीं है परन्तु निर्भीक होकर उन्होंने ऐसे पत्रों को खुलिया पुलिस के हवाले कर दिया। एक मासके पश्चात् जो बर्ताव उनके साथ किया जाता था उससे ऊब गये और उन्होंने इस विषय में, एक अङ्गरेज़ी अफ़सर से बात चीत की। वे सिविल सर्विस के एक सदस्य थे और सर्वसाधारण के साथ पूरी सहानुभूति प्रगट करने के लिये वे इस प्रान्त में प्रसिद्ध हैं।

उस अफ़सर ने इस कृत्य पर शोक प्रगट किया और मिस्टर रानाडे को भरोसा दिया कि गवर्नमेन्ट को अब पूरा विश्वास होगया है कि जो शंका तुम पर की गई थी वह सर्वथा निर्मूल है। यदि मिस्टर रानाडे की जगह दूसरा मनुष्य होता तो जब कभी उसे इस घटना के विषय में बात चीत करने का समय मिलता तो वह कुछ न कुछ बुरे शब्द अवश्य प्रयोग में लाता। परन्तु मुझे स्मरण है इस घटना को मुझ से बयान करते हुये उन्होंने सावधानी से कहा "वर्तमान अवस्थाओं में ऐसे मत भेद पड़ा जाया करते हैं" और फिर हमें यह बात भी भूल जानी चाहिये कि यदि हम उनके स्थान पर होते तो कदाचित् हमसे और भी बड़ी भूल हो जाती।

उनके न्याय का एक बड़ा उदाहरण है और इस बात पर पूरा सबूत है कि चाहे उनके साथ कितनी बुराई क्यों न की जाय परन्तु अंग्रेजी शासन से उनका विश्वास विचलित नहीं हो सकता था। दूसरे प्रकार की एक और घटना है जो सिद्ध करती है कि हरेक प्रश्न की अन्तर्गूढ़ बातों को सोचने का

उनका कैसा अच्छा अभ्यास था यह घटना नो वर्ष पूर्व हुई थी जब कि हम लोग कांग्रेस कान्फ्रेन्स में सम्मिलित होकर लौट रहे थे। उस समय रानाडे की अनुपस्थिति में अवसर पाकर एक अंगरेज ने सोलापुर स्टेशन में उनके बिस्तरे को सेकन्ड क्लास से फर्स्ट क्लास में फेंककर उनकी जगह पर अपना अधिकार जमा लिया और इस प्रकार उनका अपमान किया था।

मिस्टर रानाडे को जब यह सूचना मिली तो वह चुपके से अपनी गाडी में गये और कुछ भी बिना बुरा भला कहे डाक्टर भन्डारकर के साथ जो हम लोगों के साथ थे दूसरी जगह पर बैठ गये। जब कि सोने का समय आया तो डाक्टर भन्डार कर—जो दोनों में हल्के थे—ऊपर वाले सन्दूक में में चले गये और अपनी जगह मिस्टर रानाडे को दे दी। पूना पहुंचकर उन अंग्रेज बहादुर को जो असिस्टेन्ट जज थे पता चला वेभद्र पुरुष जिनका अपमान उन्होंने कियाथा हाई कोर्ट के जज रानाडे थे और ऐसा मालूम हुआ कि उन्होंने मुआफी मांगनी चाही। उन को अपने पास आता हुआ देखकर मिस्टर रानाडे ने अपनी पीठ फेर ली और लम्बे हुये। दूसरे दिन मैंने पूछा कि क्या अब इस मामले में कोई कारवाई करना चाहते हैं परन्तु उन्होंने उत्तर दिया कि मेरा विश्वास ऐसे उपायों में बिलकुल नहीं है। यह तो केवल बात की बात है और कुछ भी हो यह मामला ऐसा नहीं है कि जिसके लिये लड़ा जाय। इसके अतिरिक्त उन्होंने मुझ से प्रश्न किया "इन मामलों में क्या हमारे अन्तःकरण शुद्ध हैं। इन दिनों हम लोग अछूत जातियों के साथ जो हमारे देशवासी हैं कैसा बर्ताव करते हैं इस समय जब कि उन्हें और हम मिलजुल कर देश के लिये

काम करना चाहिये हम लोग अपने प्राचीन बड़प्पन को तिलां-जुली देकर उनको नीचे ही नीचे गिराते जा रहे हैं।

यदि शासकों के भाई बिरादरी हमारे साथ इस प्रकार पेश आवें तो उन्हें हम शुद्ध अन्त करण से किस प्रकार दोषी ठहरा सकते हैं।" उन्होंने आगे चलकर कहा इसमें कुछ भी सन्देह नहीं कि ऐसी २ घटनायें बड़ी दुख-उत्पादक और लज्जास्पद हैं परन्तु यदि हम इन असहनीय घटनाओं से भी कुछ लाभ उठा सकते हैं तो यह है कि हम उस काम में सच्चे हृदय से और भी लग जाय जो हमारे सामने उपस्थित है।

मिस्टर रानाडे में दूसरा गुण यह था कि वे बड़े धुरन्धर काम करने वाले थे। यदि कोई पुरुष उन कामों की समालोचना करने बैठे जो इस महान आत्मा ने अपने जीवन में किये थे—तो उसे बड़ा आश्चर्य और डर मालूम होने लगेगा। उनका दिमाग बराबर शिक्षा प्राप्त करने में लगा रहता और वे बड़े जोश और उत्साह के साथ जो इस देश में देखी नहीं गई दूसरों को यही शिक्षा प्रदान करते थे। उनमें करने की शक्ति केवल प्रबल ही नहीं थी बल्कि उन्हें उसमें आनन्द आता था और उसी में वे डूबे रहा करते थे। उसी पर वे जीवित थे और घूमते फिरते और उसी पर उनका जीवन निर्भर था।

वे हमेशा यही कहा करते थे कि इन दिनों निरुत्साहपन हममें सब से बड़ी बुराई है। विरुद्ध रायों और निरर्थक दूसरे विषयों में लगी हुई शक्तियों को तो वे सह लेते थे परन्तु निरुत्साहता उनके लिये असहनीय थी और इससे उन्हें बड़ा शोक होता था। वे धार्मिक उत्तरदायित्व के साथ प्राय वे सभी काम में हाथ डालते थे। विचार करके देखिये कि जीवन

में उन्होंने कितना काम किया। आफिस का काम करने के लिये उनके पास बहुत था। परन्तु इससे उनके दूसरे कामों में बाधा नहीं पड़ी। दूसरे काम तो उन्होंने इतने किये जितने ६ आदमी कर सकते थे। दर्शन, अध्यात्मविद्या, समाज शास्त्र इतिहास राजनीति और अर्थशास्त्र में उनकी समान रुचि थी। वे इन विषयों के पूर्ण पण्डित थे और समय २ हर विषय का अध्ययन भी करते जाते थे। यह बात सभी को मालूम है कि उन्होंने राजनीति में सार्वजनिक सभा पूना के नेता बनकर २५ वर्ष तक काम किया। उन्नति की दशा में जितने अच्छे २ काम सभा के या तो रानाडे ने स्वयं अपने हाथों से किये या उनकी सम्मति से किये गये। सभा का त्रिमासिक पत्र १७ वर्ष निकला। उसके दो तिहाई सफों में रानाडे ही के लेख रहा करते थे। उनकी निगरानी में सभा देश की राजनीतिक और संस्थाओं से बढ़ी चढ़ी थी और कई वर्षों में गवर्नमेन्ट में उसकी ख्याति भी विशेष रही।

सुधार के कामों में उस दिन से लेकर जिस दिन उन्होंने कालिज छोड़ा मृत्युपर्यन्त बड़ी कोशिश की। लिखने में, बोलने में, सुप्रबन्ध में, सलाह देने में सहायता देने में और अन्य सुधार सम्बन्धी कामों में बराबर भाग लेते रहे। सोशल कान्फ्रेंस के वे जन्मदाता थे और धार्मिक कामों में भी उनकी लगातार रुचि रहा करती थी उनके थोड़े से धर्मोपदेश ऐसे अच्छे थे कि उनसे अच्छे दूसरे धर्मोपदेश मुझे सुनने का सौभाग्य नहीं प्राप्त हुआ।

वे विचारशील भी बड़े थे। और अर्थशास्त्र सम्बन्धी विषयों पर कभी २ लिखा करते थे। भारतवर्ष सम्बन्धी अर्थशास्त्र के उनके लेख उनलोगों के बड़े लाभ के हैं जो इस विद्या को

न्मती रूप में भारतवर्ष में लगाना चाहते हैं। इन्डस्ट्रियल कान्फ्रेन्स कुछ वर्षों तक पूना में होती रही। और इन्डस्ट्रियल प्रदर्शिनी लार्ड री के समय में हुई थी। आप दोनों के संस्थापकों में से एक थे। बहुत औद्योगिक और व्यापारिक संस्थायें जो पूना में गत २० वर्ष में स्थापित की गई अधिकतर उनके परसाद, शिक्षा और सहायता से हुईं। उन्होंने मरहठों का इतिहास भी लिखा है यद्यपि वह अपूर्ण है।

जब बम्बई में थे तो यूनिवर्सिटी संबन्धी मामलों में भी आप अधिक भाग लेते थे। भूतपूर्व चेन्सलर मि० मसलिस घेन्डी ने उनके सिन्डीकेट के कामों की प्रशंसा बड़े ज़ोरों से की है। इन कामों के अलावा मिस्टर रानाडे का पत्र व्यवहार भी हिन्दुस्तान भर में उनके बहुत से मित्रों और अनुयायियों से पूर था। कई बार तक तो छोटे २ घरेलू मामलों से लेकर राजनीतिसम्बन्धी आदि विषयों में एक दिन में २० से भी अधिक पत्रों का उत्तर देना पड़ता था। हिन्दुस्तान के प्रत्येक काम करनेवाले से उनका लगाव था। जब कभी ऐसे भले आदमी से भेंट होती तो वे फूले न समाते, उनके कामों की प्रशंसा करते और उसके बाद उनसे सदैव पत्र व्यवहार किया करते थे। हम केवल उनके किये हुये कामों को देखकर इतने आश्चर्य युक्त नहीं होते जितना कि उनके उत्साह को देखकर होते हैं जिससे वे काम करते थे।

वक्ता और लेखकोंने महात्मा रानाडे के बारे में बहुधा यह लिखा है कि वे बड़े प्रबल आशावादी थे जिसको लोग उनकी मानसिक शक्ति का एक अङ्ग बताते हैं।

इसमें कोई सन्देह नहीं कि थोड़ा बहुत यह ठीक भी है। उनका स्वभाव सचमुच आशापूर्ण था। यही कारण था कि

यदि हिन्दुस्तान के किसी भाग में कुछ भी उन्नति दिखलाई पड़ती थी तो उसे झट इस्तेमाल के लिये नोट करलिया करते थे। उनके आशावादी होने का कारण कुछ तो यह भी था कि वे दूसरे पुरुषों की अपेक्षा दूर तक की बात देखते थे। उनका देखना पहाड़ पर से चीजों के देखने के समान था और अन्य पुरुषों का देखना धरातल ही में खड़े होकर वस्तुओं का देखना था। परन्तु मेरा तो यह विश्वास है कि मिस्टर रानाडे के बड़े आशावादी होने का कारण यही था कि वे बड़े काम करने वाले थे। वेही लोग निराशा का पाठ पढ़ाने लगते हैं जिन्हें काम करना नहीं आता या जिन्हें काम करने की शक्ति और गोरव नहीं मालूम है। मिस्टर रानाडे का दृढ़ विश्वास था कि यदि हमारे देश वासी सरगरमी से काम करें तो हमारा भविष्य हमारे हाथ में है उनका विचार था कि काम करना जातीय उत्थान का कारण है और जब तक जीवित रहें तब तक खूबी से काम करते रहें। यदि उन्हें कहीं निराशा दिखलाई पड़ती तो वे हताश हिम्मत कभी नहीं होते थे। १२ वर्ष व्यतीत हुये सोशल कानफ्रेन्स और उसकी अप्रियता के विषय में बातचीत करते हुये मैंने एक दफा उनसे पूछा कि बहुत से लोग कहते हैं कि ऐसी २ निर्जीव और थोथी सभाओं को करना और प्रस्तावों को पास करने से कुछ नतीजा नहीं है इसीलिये वे अपना सम्बन्ध इससे तोड़ते जाते हैं परन्तु आप इसमें इतने दत्तचित्त क्यों हैं।" इस पर मेरी ओर घूम कर मिस्टर रानाडे ने कहा "यह काम निर्जीव नहीं है बल्कि उनका उत्साह निर्जीव है।" थोड़ी देर रुक कर उन्होंने मुझ से फिर कहा कुछ वर्षों तक ठहरो, समय आ रहा है कि यही प्रश्न वे लोग कांग्रेस के विषय में भी करेंगे

जिसके लिये उनको इतना उत्साह है हमारे देशवासियों में यह बुराई है कि वे एक ही कार्य में बहुत दिनों तक एकाग्र चित्त से किसी कार्य्य में नहीं लगे रह सक्ते। स्वयं तो मिस्टर रानाडे का यह अनुभव था कि फल मिलने के पहिले धैर्य्य और अध्यवसाय आवश्यक हैं। सन् १८९१ ई० में जो बात उन्होंने मुझ से कही थी वह मेरे दिमाग में गड गई है। उस वर्ष सोलापुर और बीजापुर के प्रान्तों में अकाल पड गया था। सार्वजनिक सभा में जिसका मे मंत्री था, उन जिलों की हालतों पर बहुत से समाचार एकत्रित किये गये थे और वहां की हालत गवर्नमेंट के सन्मुख भी उपस्थित की गई। वह एक प्रकार स्मारक था जिसके लिये हम लोगोंने बडा दिमाग और परिश्रम खर्च किया था। गवर्नमेंट ने केवल दो सतर का उत्तर लिख भेजा कि पत्र के समाचार मालूम हुये। जब हमलोगों को इस प्रकार का उत्तर मिला तो मुझे बडी निराशा हुई। दूसरे दिन सायंकाल में मिस्टर रानाडे के साथ घूमन के लिये गया और पूछा "इतने परिश्रम करने और प्रार्थना भेजने की कोनसी आवश्यकता है जब गवर्नमेंट इससे अधिक और नहीं कहना चाहती कि पत्र के समाचार ज्ञात हुये।" उन्होंने उत्तर दिया हमारे देश के इतिहास में हमारे स्थान को तुम लोग निरूपण नहीं करते। वे गवर्नमेट के पास नाम मात्र को भेजे जाते हैं। ये एक प्रकार से सवसाधारण के सन्मुख उपस्थित किये जाते हैं ताकि उनको मालूम होजाय कि इस समय क्या करना चाहिये नतीजे की कुछ भी परवाह न करके ऐसा काम कई वर्ष किया जाना चाहिये क्योंकि इस प्रकार की राजनीति हमारे देश के लिये बिल्कुल नवीन है। इसके अतिरिक्त यदि गवर्नमेंट इन बातों को नोट करले जो हम कहते

हैं तो भी यही समझना चाहिये कि गवर्नमेंट ने बहुत कुछ किया।

दूसरी विचित्र बात उनके कार्य में यह थी कि वे छोटे से छोटे परन्तु जरूरी काम करने के लिये सदैव तैय्यार रहा करते थे। शिवालय बनाने में उन्होंने राज के काम करने का कभी भी हठ नहीं किया, वे मन्दिर को तैयार करने के लिये ईंट और पत्थरों को कंधे पर ढोने के लिये उद्यत थे। सर्व साधारण के लाभ के कर्त्तव्य पालन में यदि उन्हें नीचा भी देखना पड़े तो उसके लिये तैयार थे। सन् १८८५ ई० को पूना जाने के कुछ महीने पीछे मुझे एक ऐसी विचित्र घटना देखने में आई उस वर्ष म्यूनिसिपल बोर्डों में लार्ड रिपन की गवर्नमेन्ट के उदार कानून के अनुकूल नवीन परिवर्तन हुये थे। चुनाव की प्रथा पहिले पहिल प्रचिलित की गई थी। पूना के लोग इस से बड़े प्रसन्न थे। उस वर्ष से पहिले म्यूनिसपिलटी का काम अफसरों के हाथ में था। मिस्टर रानाडे की इच्छा थी कि अपने शहर के मामलोंके देख भाल में बोर्ड का काम सर्वसाधारण करें। अभाग्यवश पूना के एक बड़े रईस स्वर्गवासी मिस्टर कुन्टे ने बड़े जोरों के साथ अफसर वाली प्राचीन प्रथा का समर्थन किया। मिस्टर रानाडे और मिस्टर कुन्टे में सहपाठी होने की वजह से बड़ी मित्रता थी, मिस्टर कुन्टे के प्राचीन प्रथा के समर्थन करने से रानाडे ने उन्हें एक अच्छी फटकार जमाई थी मिस्टर कुन्टे एक बड़े वक्ता थे। उन्होंने शीघ्र ही सर्वसाधारण के खिलाफ बहुतसी सभायें की। थोड़ी देरके लिये लोगों में बड़ा जोश उमड़ा और ऐसा मालूम होता था कि गवर्नमेन्ट इस झगड़े से कुछ और ही ख्याल करेगी। इसलिये

मिस्टर रानाडे ने मिस्टर कुन्टे को रजामद करलेने की चेष्टा की। इस अभिप्रायसे वे मिस्टर कुन्टे की एक सभा में गये यद्यपि उन्हें मालुम था कि मिस्टर कुन्टे प्रत्येक सभा में मिस्टर रानाडे की धूल उड़ाया करते हैं। यह सभा जिसमें मिस्टर रानाडे गये रास्ते पथ में की गई थी। यह एक मकानका हाल (बड़ा व भरा) था। हम सब लोग फर्शपर बैठे थे। और मिस्टर कुन्टे हाल के एक कोने से बोलरहे थे। दरवाजा दूसरे सिरे में था। मिस्टर कुन्टे थोड़े ही देर बोले थे कि मिस्टर रानाडे कमरे के भीतर आते हुये दिखलाई पड़े। वे अन्दर आकर हम सब लोगों की तरह दरवाजे के समीप फर्श पर बैठ गये। मिस्टर कुन्टे ने उनकी ओरसे और वास्तव में सब की ओर से मुंह फेर लिया। थोड़ी देर दीवाल की ओर मुंह करके बोलते रहे और फिर एक दम से चुप होगये। उनके बैठने पर मिस्टर रानाडे अपनी जगह छोड़कर उनके पास आ बैठे। जब सभा विसर्जित हुई तो मिस्टर रानाडे ने मिस्टर कुन्टे से उनकी गाड़ी पर बैठकर बाहर घूमने की आज्ञा ली। मिस्टर कुन्टे ने इस पर नाक भौ चढ़ाकर कहा "मैं तुम्हारी गाड़ी पर नहीं जाना चाहता"। ऐसा कहकर वह अपनी गाड़ीमें बैठ गये। मिस्टर रानाडे चुपके २ उनके पास गये और कहा' यदि 'आप मेरी गाड़ी में बैठकर नहीं जाना चाहते हो तो मैं आपकी गाड़ी में बैठकर आपही के साथ चलूंगा'। ऐसा कहकर वे मिस्टर कुन्टे की गाड़ी में बैठ गये। अब मिस्टर रानाडे से भाग बचकाना मिस्टर कुन्टे के लिये असभव होगया। वे दोनों बड़ी देर तक गाड़ी में बैठ बढे इधर उधर घूमा किये और लौटनेके पहले हरेक बातें पूर्णरूपसे निपट गई। मिस्टर कुन्टे

का क्रोध शांत हो गया और उन्होंने सर्वसाधारण की मुखालफत करना छोड़ दिया।

अभी तक तो मैंने मिस्टर रानाडे की सर्वव्यापिनी मौन गति देशप्रेम और कार्य्यानुराग के विषय में कहा है। अब मैं दो चार शब्दों में उनके स्वभाव की उत्कृष्टता अथवा उनका पवित्र स्वभाव वर्णन करूँगा जो उनकी मस्तिष्क शक्तियों से भी बढ़कर था और जिसकी वजह से भारतवर्ष भर में उनके देशवासी उन्हें प्रेम भाव से देखते थे और उन पर, अनुराग रखते थे। नवयुवक यदि उनके सन्मुख आ जाते तो यह समझते कि हम साक्षात् परमात्मा के सामने आये, एक शब्द भी बुरा उच्चारण करने की कौन कहे जब तक साथ रहते बुरे विचार मनमें नहीं आने देते थे। इसमें कोई अत्युक्ति नहीं है। मेरे अनुभव में आज भी यदि कोई पुरुष उन्हीं के सदृश प्रभाव डालनेवाला है तो वह मिस्टर दादा भाई नौरोजी हैं। मिस्टर रानाडे के बड़े गुणों में सर्वोच्च गुण यह था कि उनमें स्वार्थ बिल्कुल नहीं था। मैं कह चुका हूं कि उन्होंने बराबर भिन्न २ कार्य्य क्षेत्रों में काम किया परन्तु न तो उन्होंने नेक नामी की कुछ परवाह की और न इस बात का विचार किया कि मुझे इस या उस काम में शाबासी मिलनी चाहिये या नहीं। प्रत्येक काम में चाहे वह राजनैतिक हो अथवा किसी प्रकार का हो उनको किसी को आगे करके करने में ही आनन्द आता था, उनकी हार्दिक इच्छा यह थी कि काम करनेवालों का नम्बर बढ़ता जाय। मैं समझता हूं कि मैंने कभी किसी से मिस्टर रानाडे को यह कहते नहीं सुना कि मैंने यह काम अथवा वह काम किया है। ऐसा मालूम होता था उत्तम पुरुष एक वचन उनके शब्द कोष में

था ही नहीं, नम्रता पूर्वक अपने जीवन के अंत दिन तक अपने को शिक्षित करना भी उनका दूसरा बड़ा गुण है। स्वभाव ही से उनका हृदय बड़ा कोमल था और किसी प्रकार के अन्याय या कमीनेपन का असर उनके हृदयपर नहीं पड़ता था। परन्तु उन्होंने अपने को इतना शिक्षित कर लिया था कि हरएक शांति को धारणकर सक्ते थे। उनकी स्वाभाविक मानसिक वृत्ति शान्ति तथा प्रफुल्लित थी और इसका एक कारण तो यह था कि उन्हें यह बात ज्ञात थी कि जो कुछ होरहा है वह ठीक ही है और दूसरे परमात्मा की इच्छा पर उनको अटल विश्वास था।

तब भी यदि वे किसी से बहुत अप्रसन्न होजाते, उनको किसी में निराशा होती या और दूसरे कारणोंमे उनका भीतरी खेद होता तो वे लोग जो उनका अच्छी प्रकार नहीं जानते थे उनके चेहरे से उनके दुःख का नहीं मालूम कर सक्ते थे। उनके अन्य पुरुष को जाने दीजिये उनके पार्श्ववर्तीने भी उन लोगों के प्रति शिकायत नहीं सुनी जिन्होंने उनको हानि पहुंचाई हो। वे चाहते थे कि यदि समाचार पत्रों में मेरी बुराई निकले तो लोग उसे मुझे अवश्य सुनाएं। किसी न किसी रूप में वे लगातार सर्वसाधारण के सामने रहे अतः प्रत्येक दिन प्रायः उनके कामों की समालोचनायें होती थीं चाहे वे भली हों अथवा बुरी हों। मुझे ज्ञात है कि यदि कोई समाचार उनकी प्रशंसा में होते हों तो पूरा न पढ़ते परन्तु अपने विरुद्ध समालोचनाओं को अवश्य सुनते। चूंकि उनकी आंखें कम जोर थीं इसलिये कभी २ समाचार पत्र मैं ही उन्हें सुनाता था। वे देखते थे कि इसमें कोई ऐसी बात तो नहीं है जिसे मैं ग्रहण कर सकूं। यदि जो कुछ उनके प्रति कहा गया था

उससे उन्हें दुःख होता तो यह दुःख एक प्रकार से उनके आचरण उच्च बनाता था। उनके एक गुण को मैं उल्लेख इस समय में और करना चाहता हूं। वे सर्वसाधारण की विशेषतः निर्बल और पीड़ित लोगों की सहायता के लिये उद्यत रहा करते थे। नीच से नीच आदमी दिन में किसी समय उनसे मिल सका था। ऐसा कोई नहीं था जिसके पत्र का उत्तर उसे न मिला हो। वे सब की बातों को ध्यान से सुनते चाहे उसकी सहायता वे कर सकें अथवा न कर सकें। इसको वे धर्म का एक अंग समझते थे।

सन् १८९७ ई० की अमरावती कांग्रेस होजाने पर इस ओर लौटते समय उस रात को गाड़ीमें केवल हमीं दो आदमी थे। प्रात ४ बजे गाड़ी में किसी को गाता हुआ सुनकर मैं एक दम चौंककर उठ बैठा। आँख खोलने पर मैंने देखा कि मिस्टर रानाडे तुकाराम के दो अभंग बार बार गा रहे हैं और हाथों की ताल दे रहे हैं। आवाज तो स्वरीली नहीं थी परन्तु जिस जोश से वे गा रहे थे वह इतना उत्तेजक था कि मेरे रोंगटे खड़े हो गये और मैं भी बैठकर सुनने लगा।

जे का रंजले गांजले। त्यासी ह्मणे जो आपुले।
तोचि साधू ओलखावा। देव तेथेंचि जाणावा॥
करि मस्तक ठेंगणा लागे संताच्या चरणा।
जरि ह्मावा तुम देव। तरि हा सुलभ उपाय॥

वही सच्चा साधू है और परमात्मा भी उसी में मिलता है जो दीन दुखियों की सहायता करता है इसलिये यदि तुम परमेश्वर से मिलना चाहते हो तो उसका सुगम मार्ग यही है कि तुम नम्र हो और साधुओं की संगत करो।

जब कि मैं इन पदों को सुन रहा था तो मैं अपने दिल में

यह कहे बिना न रह सका कि मिस्टर रानाडे इसी शिक्षा को आदर्श मानकर उसका अनुशीलन करते हैं। यह देखने में तो सीधी सादी है परन्तु इसका तत्त्व जीवन के लिये बड़ा गौरव प्रद है। वह घड़ी मेरे जीवन की अमूल्य घड़ी थी और वह दृश्य सचमुच मुझे कभी भी विस्मरण नहीं होगा।

भद्र स्त्री और पुरुषों! रानाडे के जिन गुणों से मुझे बड़ा आश्चर्य होता था उन गुणों को मैंने बयान किया। मेरी समझ से ३० वर्ष तक उन्होंने हमारे उच्च विचार और उच्च आकांक्षायें सामने रक्खीं और चिरकाल तक ऐसा महात्मा मिलना कठिन है। इस नवीन शताब्दी के प्रारंभ में मिस्टर रानाडे का इस प्रकार मरना हमारे लिये बड़े खेद का विषय है इसका प्रारम्भ निराशा और दुख की जगह आशा और दिलासा से पूर्ण होना चाहिये था। वह आवाज़ जो इतनी गंभीर, इतनी उदार और इतनी आशा पूर्ण थी लुप्त हो गई। सच पूछिये तो उसकी बड़ी आवश्यकता अब इस समय थी। एक प्रकार की निराशा हमारे वर्तमान बड़े २ काम करने वालों के मस्तिष्कों में घुनघुना रही है मैं इसे मानता भी हूं कि वर्तमान समय की दशा ऐसी है जिसे देखकर हमारा विश्वास डिग जाय और निराशा करना उचित जान पड़े मध्य और नीच जातियों के लोग भारतवर्ष भर में क्रमशः पतित होते जा रहे हैं और जिस भारी संग्राम में हम लोग इस समय संलग्न हैं उसमें भी कई स्थानों में हम हार रहे हैं। परन्तु मेरी समझ में इससे क्या होता है यदि हम इन निराशाओं के वशीभूत होते हैं तो हम उस काम के योग्य नहीं जिसे मिस्टर रानाडे ने किया और उस संपत्ति के अधिकारी नहीं हैं जो वे लिये छोड़ गये हैं। आप लोगों को स्मरण होगा ७०

हम लोग किस प्रकार रोये। इस देश में इसके पहिले इतना सर्वव्यापी दुःख कभी नहीं देखा गया। ऐसा मालूम होता था कि शोक की एक विशाल लहर देशभर में फैल गई और उसका असर ऊच नीच धनी और दरिद्र लोगों पर एकसा पडा। परन्तु यदि हम उनकी मृत्यु पर शोक ही शोक प्रगट करते हैं तो उनके प्रति हमारे कर्तव्य की पूर्ति नहीं होती। हमें विशेषत नवयुवकों को उनके जीवन के पवित्र और हम पर यह सदेश की ओर ध्यान आकर्षित करना चाहिये, जिन सिद्धान्तों के लिये जीवन पर्यन्त उन्होंने काम लिया वे ये हैं—सब के लिये समानता, और मनुष्य का गौरव मनुष्य होने के कारण मानना—

इन सिद्धान्तों की पूर्ति अत में अवश्य होगी चाहे उसकी वर्तमान दशा कैसी ही खराब क्यों न हो। हम सब उनकी पूर्ति के लिये प्रयत्न कर रहे हैं परन्तु जीवन का सच्चा गौरव तो 'मातृभूमि के लिये काम करने और उस पर सब कुछ न्योछावर करने पर निर्भर है'। यही सदेशा है जो मिस्टर रानाडे हमारे लिये छोडे गये हैं। मेरे मित्रो! हमारी मातृभूमि की आधुनिक दशा चाहे जैसी हो परन्तु उसके लिये सब से अच्छे काम और बलिदान जिन्हें हम कर सकते हैं उसके लिये करें। एक समय था जब यह उत्कृष्ट धर्म, विज्ञान, भाषा कलाकौशल और दूसरी वस्तुओं का जो एक जाति में बडे महत्व का है—भंडार थी।

यह बडी पैतृक सपत्ति हमारी है, यदि हम इस बात को स्मरण रक्खें यदि हम उस उत्तरदायित्व को समझें जो हम पर है, यदि हम सच्चे हों और अपने स्वर्गवासी नेता के उत्साह के साथ उसके लिये जीवित रहना और कार्य्य करना

अपना उद्देश समझें तो कोई सवय नहीं जान पड़ता कि उसका भविष्य उसके भूत के सदृश क्यों न हो जाय।

---

* २४ जुनाइ सन् १६०४ में रानाडे पुस्तकालय और साउथ इन्डियन एसोसियशन मिलपुर की आधार शिला रखने के समय गोखले की वक्तृता।

श्रीमान् सभापति महाशय और भद्र पुरुषो—पहिले पहिल मुझे इस स्मारक के संचालकों को हार्दिक धन्यवाद देना चाहिये जिन्होंने इसकी नींव डालने के लिये मुझे बुलाकर मेरा बड़ा आदर किया है। जब कि मुझे यह मालुम हुआ कि आप लोगों की यही इच्छा है कि इस काम को मैं करूं मैं आपसे सचसच कहता हूं उस समय मुझे बड़ा आश्चर्य हुआ और यह सोचने लगा कि आप लोग मुझपर इतने दयालु क्यों हैं। किसी बात पर विचार न करके यह काम मुझे ही सौंपा है यद्यपि इस काम के करने के लिये मुझसे अधिक योग्य पुरुष वर्तमान हैं जिनके बाल देश की सेवा करते २ सफेद हो गये हैं और जिनके लिये यह काम बाट जोह रहा था।

मैंने देखा कि आप लोगों के प्रबन्ध में खलबली डालने और आप लोगों को प्रचण्ड दुख में डाले बिना इस काम से मुझे छुटकारा मिलना असंभव है यही कारण है कि इस समय आप लोग मुझे अपने मध्य में देख रहे हैं। यदि इसमें केवल मेरी ही बात होती तो मैं न आता। सज्जनो चूंकि मैं एक मरहठा हूं और १२ वर्ष तक जो इस देश के विद्याध्ययन करने के लिये आवश्यक हैं—नम्रता और आदरपूर्वक शिक्षा मैंने उनके पास रहकर ग्रहण की है दक्षिण प्रान्त की इस राजधानी में उनके स्मारक को देखकर मुझे ० है।
बाम्बे की तरफ वाले हम लोग भी

रहे हैं। पहिले बम्बई में २००००) रुपया इकट्ठा हो गया है और वह मेरी समझ में उनकी एक मूर्ति बनाने में लगाया जायगा। पूना में एक लाख से भी अधिक रुपया जमा हुआ है जिससे हम लोग अर्थशास्त्र की शिक्षा सम्बन्धी एक पाठशाला खोलने वाले है। लोगों को अर्थशास्त्र की शिक्षा देना और देश की शिल्पकला को उन्नति देना इसके उद्देश होंगे। इसके अलावा सोशल कान्फ्रेन्स मेमोरियल अहमदाबाद में है जो दो वर्ष पूर्व ही बन चुका है। उसका उद्देश मिस्टर रानाडे के सामाजिक सुधारों को करते रहना है। इस प्रकार हम लोग मिस्टर रानाडे के प्रति अपनी बड़ी और अमर कृतज्ञता को प्रकाशित करने के लिये जो कुछ थोडा बहुत हम से होसकता है कर रहे है।

हम पर उनके कार्य तथा विचारों का प्रभाव पड़ा यह दिखलाना हमारा कर्तव्य है कि उनकी स्मृति हमारे विचारों के लिये सबसे मूल्यमान वस्तु है।

परन्तु सज्जनो आप लोगों का इस प्रकार मिस्टर रानाडे के स्मरणार्थ यदि एक स्मारक का बनवाना आवश्यक समझना मेरी समझ में एक महत्वपूर्ण बात है। यह इस बात को सूचित करता है कि एक नया उत्साह नवीन जीवन के पानी की सतह पर तैर रहा है और घाटी में मुर्दा हड्डियों में धीरे२ जान डाल रहा है। आज इस स्मारक के उठाने का क्या मतलब है? मेरी राय में तो इसका यही कारण है कि मिस्टर रानाडे का नाता एक सूबे या एक ही जाति से नहीं था बल्कि सारे देश और भारतवर्ष की सब जातियों से था, जो काम उन्होंने देश के लिये किया उसमें स्थान या भाषा की भिन्नता भी बूतक नहीं है और वह प्रेम और आदर की दृष्टि से देखा जाता

है मिस्टर रानाडे को इतना गौरव कैसे मिला ? उनके काम करने का ढग क्या था कि उनके देशवासी उन्हें इतना चाहने लगे। निस्सन्देह हम सब जानते है कि मिस्टर रानाडे बडे योग्य, बडे सज्जन, बडे सोचनेवाले, बडे पडित और बडे काम करनेवाले थे और उनका घरेलू जीवन बडा पवित्र था।

केवल इन्हीं कारणों से वे अपने देश वासियों के इतने प्यारे हो सकते थे जैसाकि इस एकत्रित समाज से मालूम पड रहा है और यदि किसी मनुष्य के मरने के बाद भी लोग उसकी स्मृति रक्षा तथा आदर करने के लिये एकत्रित हों तो हमें मान लेना पडेगा कि वह व्यक्ति अवश्य ही उच्च जीवन का रहा होगा और उसने हमारे हृदय में बहुत ही उंचास्थान प्राप्त करलिया मै कह चुका हू कि मिस्टर रानाडे बडे योग्य और सज्जन पुरुष थे। परन्तु वे इससे भी अधिक थे। वे उन मनुष्यों में थे जो निबल और भूल करनेवाले मनुष्यों को रास्ता दिखलाने के लिये समय समय पर भिन्न २ देशों में जन्म लिया करते है। वे एक काम करनेवाले पुरुष थे— नवीन धर्म पुस्तक के सिखलानेवाले थे उन्होंने हमारे विचारों में जान डाल दी और हमारे दिलोंको आशा से भर दिया। उन्होंने हमारे ध्यान को उन नवीन बातों की ओर आकर्षित किया जो परमात्मा की कृपा से आविर्भूत हुई। उन्होंने उनके मतलब बतलाये। इस बात की सूचना दी कि हम क्या लाभ उठा सकते है उनका हमारा उत्तरदायित्व समझाया और बतलाया कि जो काम हमें करना चाहिये यदि हम उससे न भागें तो हमारे सामने एक बडी अच्छी फसल आनेवाली है। उन्होंने यही सदेसा हमारे पास तक पहुचाया। उनमें बडे २ गुण थे। उनकी बुद्धि बडी तीव्र थी, उनके दिलमें सदैव देश-

प्रेम तरंग मार रहा था, उनकी आत्मा शुद्ध और प्रबल थी, उनमें काम करने की बड़ी शक्ति थी, उनमें बड़ा धैर्य था और कामसे कभी नहीं थकते थे, और परमात्मा ने जिस उद्देश के लिये उन्हें पैदा किया उसमें उनका अटल विश्वास था। इन गुणों से भूषित मिस्टर रानाडे ने अपने देशवासियों के विचार, आशाओं और उद्देशों को नवीन करने का भार अपने सिर पर लिया। ३५वर्ष पर्यन्त वे एकही कार्यक्षेत्र नहीं वरन् देश के हरेक कामों में कार्य करते रहे। उनकेहृदय की एक मात्र अभिलाषा यही जीवन भर रही कि हिन्दुस्तान की भी गणना संसार की अन्य जातियों में होने लगे और ऐसा होना चाहिये भी था क्योंकि प्राचीन समयमें उसका बड़ा गौरवथा। उसके स्त्री पुरुषों के रहन सहन और विचार उच्च हों और वे जातीयता के बड़े २ काम करने लगें। मेरी समझ में हमारे सामने उपस्थित काम को तथा उन हालतों को जिनमें उसे किया जाना चाहिये मि० स्टर रानाडे से बढ़कर कोई दूसरा व्यक्ति स्पष्ट रूप से नहीं जान सका।

एक पुरातन राष्ट्र का स्पर्श दूसरी पुरातन जाति से हुआ है जिसकी सभ्यता यद्यपि जड़वाद पर निर्भर है तथापि अधिक उद्योगशील है और यदि हम अपना पतन नहीं चाहते तो यह आवश्यक है कि अपने चारों ओर की अच्छाइयों को ग्रहण करलें परन्तु साथही साथ अपनी अच्छी बातों को न भूल जाँय। मेरी समझ में मिस्टर रानाडे से बढ़कर किसी अन्य पुरुष को प्राचीन समय के लिये न विशेष प्रेम ही था और न आदर ही था। उन्होंने एक दफा कहा था "कि हम यदि चाहें तो भी हमारा नाता प्राचीन काल से नहीं टूट सकता। यदि हम तोड भी सकें, तो भी हमें नहीं तोडना

चाहिये।" परन्तु वे केवल प्राचीन ही से नहीं सन्तुष्ट थे। उन के लिये देशकी वर्तमान और भविष्य अवस्थायें भूत से अधिक महत्व वाली थीं। और यद्यपि देशका बीता हुआ इतिहास हमें हमारी कमजोरियों को दिखलाकर कमियोंको बतला कर तथा शक्तियों की असपूर्णता और उन्नति के इतिहास से प्रमाणित नियमों को प्रकाशित कर हमारे कर्तव्य पथपर हमें सहायता देता है तथा जीवन सग्राम में डटे रहने को हमें उत्साहित करता है तथापि जीवन का मुख्य लाभ वर्तमान कर्तव्यों को पूरा करने से भविष्य के लिये क्षेत्र तय्यार करने पर निर्भर है। -

इसी जोश में वे लगातार पढ़ा किये, लगातार सोचा किये, लगातार विचारा किये, अपने पठन को असली रूप में लगाने को लगातार प्रयत्न करते रहे और लगातार उन प्रश्नों के हल करने पर ध्यान डटाये रहे जो उनके देशवासियों के सन्मुख उपस्थित थे। यदि किसी दूसरे को भी उसी उत्साह से काम करते देखते तो फूले न समाते। ऐसे आदमी को चाहे वह कहीं हो वे नोट कर लेते थे, उससे सम्बन्ध रखते, हरएक बात से उसे दिलासा देते और पश्चात् उसे कभी नहीं भूलते थे। यही कारण था कि हिन्दुस्तान के सब प्रान्तों के काम करनेवाले उनकी सलाह लेते और ऐसे २ स्थान नियत कर लिये जहां उनके विचारों का प्रचार हो सके और वे उनको सफलता और निराशा में शान्त्वना देते थे। इन सब गुणों के साथ ही साथ उनकी शरीर-कान्ति भी बड़ी मोहनी थी जिसके बिना कोई मनुष्य बड़ा नेता या बड़ा शिक्षक नहीं हो सकता। जो उनके सन्मुख आता वही उनकी आत्मा के बड़प्पन और उदारता से भर जाता। लोग समझते कि हम

पवित्रता, प्रेम और भक्ति के मैदान में और एक प्रकार से साक्षात परमात्मा के सामने आ गये हैं अत उनके विचार बुरे विषयों की ओर नही प्रवृत्ति होने पाते थे।

सज्जनो! ऐसे २ मनुष्य परमात्मा के चुने हुये मनुष्य जिनको वह इस ससार में अपने उत्तम उद्देश की पूर्ति के लिये भेजते है और जब वे मरजाते है तो दुख का अनुमान कोई नहीं कर सकता। यही कारण था तीन वर्ष से ज्यादा हुये जब मिस्टर रानाडे का देहान्त हुआ तो हम में से बहुतों को ऐसा मालूम होता था कि हमारे जीवना पर एकबारगी अंधेरा छा गया है और दुख देश भर में छा गया और और ऊंचे नीचे, धनी और दरिद्र सब प्रान्तों और सब जातियों पर इसका भयकर असर एकसा पड़ा। और हमारे देश की उस कृतज्ञता को प्रकाशित करने के लिये और यह दिखलाने के लिये वे हमारी भलाई के लिये जीवित और काम करते रहे भिन्न२ स्थानों में स्मारक बनवाने के प्रयत्न होने लगे।

सज्जनो! मुझे यह देख कर बड़ी प्रसन्नता है कि मद्रास का स्मारक पुस्तकालय के रूप में होगा। उनके स्मरणार्थ इससे बढ़कर और कोइ दूसरा स्मारक आप लोग निश्चित नहीं कर सकते थे। जहा तक मैं जानता हू हमारे समय के लोगों ने ज्यादाही मिस्टर रानाडे का समय पुस्तकों में कटा। यह बात मानी हुई है कि रानाडे से बढ़कर किसी दूसरे ने न तो पढ़ने में इतना लाभ ही उठाया और न. पढ़े हुये को असली काम ही में पूर्ण रूप से लगाया।

जो विषय इस पुस्तकालय से सुगम किये जाने का विचार होरहा है उन विषयों की ओर अपने को लगाते हुये नवयुवकों को देखकर जो सतोष और आशा होती वह दूसरी बातों में

उन्हें नहीं हो सकती थी। जहा तक मेरा ख्याल है आप लोगों का पुस्तकालय साउथ इन्डियन एसोसियेशन के सबन्ध में है और पात्र भिन्न २ विषयों में यानी इतिहास अर्थशास्त्र, राजनीति, शिल्पकला और विज्ञान में उन्नति देना इसका उद्देश है। इनमें से तीन विषयों में तो वे स्वयं बढे चढे थे और जरूरत है कि नवयुवक उनका अध्ययन करें। शिल्पकला और विज्ञान में शिक्षित समुदाय के अधिक भाग को सतोषजनक सफलता मिलना असभव है। इसके लिये उस विषय की ऊ चे दरजे की विशेष योग्यता की आवश्यकता है और ऐसी विशेष योग्यता केवल बहुतही थोडे व्यक्तियों में पाई जाती है।

मुझे पूर्ण आशा है कि जब इसका काम पूर्णरूप से प्रारभ होजायगा तो इसमें कुछ ऐसे निकलेंगे जो इन विषयों का अध्ययन जीवन पर्यन्त करेंगे। इतिहास अर्थशास्त्र राजनीति की ओर तो नवयुवकों में से बहुतों का ध्यान आकर्षित होगा। आप लोगों ने भाषा, धर्म और तत्व शास्त्र के अध्ययन को छोड दिया है। यह ठीक नहीं है मेरा मतलब यह नहीं है कि आप लोग इन विषयो की ओर घृणा की दृष्टि से देखते हैं। बिल्कुल नही—बल्कि आपकी राय में जिन विषयों के अध्ययन का प्रबन्ध आप लोग कर रहे है उनकी ओर कुछ भी तवज्जह नहीं की गई इसलिये उनकी उन्नति विशेष रूप से होनी चाहिये। सज्जनो, हम लोग खुल्लमखुल्ला इस बात को मानते हैं कि उस पुरुष को बडी कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है जो आजकल सब समाचारों का पता लगाना चाहता है। आजकल एक विषय पर इतनी पुस्तकें निकलती हैं और उन का समुदाय इतना बढता जाता है कि किसी भी व्यक्ति के

सर जी० एम० मेहता

४ मई सन् १८९५ ई० को प्रान्तीय आठवीं कान्फ्रेंस में जिसकी बैठक बेलगाव में हुई थी यह प्रस्ताव स्वीकृत किया गया था कि जो काम मि० मेहता ने बड़ी कठिनाइयोंका मुकाबला करके गत सुप्रीम कौन्सल में अपने देश के लिये किया था उसके लिये वे इस कान्फ्रेंस के इतिहास में चिरस्मरणीय रहेंगे यह-कान्फ्रेंस सभापति को इस बात का अधिकार देती है कि वे इस भाव का एक मानपत्र तयार कर और उनकी सलाह से समय और स्थान निश्चय कर उसे उन्हें समर्पण करें।

(ऊपर लिखित प्रस्ताव उपस्थित करते हुये प्रोफेसर जी० के० गोखले ने निम्नलिखित वक्तृता दी थी)

सभापति महोदय और भद्र पुरुषो! जो प्रस्ताव मैं आप लोगों के सन्मुख अगीकारार्थ उपस्थित करनेवाला हू उसके पेश करने में मुझे केवल प्रसन्नता नहीं है, बल्कि मेरा हक भी है और मुझे पूर्ण विश्वास है कि जब यह सभापति की ओर से आपके सामने रक्खा जायगा तो आप लोग उत्साह और एक स्वरसे इसका अनुमोदन करेंगे।

भद्रपुरुषो! मिस्टर मेहता की कुशाग्र बुद्धि और उनके वे काम जो उन्होंने २५ वर्ष सार्वजनिक जीवन में अपने प्रान्त के लिये ही नहीं सारे देश के लिये किये हैं। इतने विख्यात हैं कि उनके नाम से सचमुच घर २ का बच्चा भली भाँति भिज्ञ है। उनकी प्रबलबुद्धि, निर्भीक स्वतन्त्रता, गौरव और

विवेचन शक्ति ने उनको प्रेसीडन्सी के सार्वजनिक जीवन का नेता और बम्बई के सार्वजनिक जीवन का एक अपूर्व अगुआ बना रक्खा है।

सज्जनो! जब किसी व्यक्तिको इतना उच्च सन्मान मिल जाता है तो स्वर्गवासी लारियट के शब्दों में उसपर तुलनाओं की भरमार होने लगती है, मेरी समझ में मि० मेहता की कौन कहे यही हाल सबका होता है। मनुष्य और वस्तुओं की आलोचना करने में पूर्ण पण्डित मेरे एक मित्र ने बम्बई में मि० तेलग, मि० मेहता और मि० रानाडे के विषय में कहा था कि मि० तेलग स्पष्टवादी और सुशिक्षित, मि० मेहता प्रबल कुशाग्र बुद्धि और मि० रानाडे अति गम्भीर और नवीन बातों के निकालनेवाले थे। सज्जनो, मेरी समझ में तुम मुझसे सहमत होगे कि यह आलोचना सत्य है। परन्तु यदि कुछ लोग यह कहें कि मि० मेहता बड़े बुद्धिमान और तेज हैं तो इससे यह नतीजा न निकालना चाहिये कि अन्य गुणों की उनमें कुछ न कुछ कमी है। मुझे तो ऐसा मालूम होता चला आया है कि उनमें मि० मंडलीक की स्वतन्त्रता और आचरणशक्ति, मि० तेलग का स्पष्टार्थ और विद्या और मिस्टर रानाडे की अच्छी समझ और नवीन बातों का निकालना ये सभी गुण विद्यमान थे। इन गुणों का परिचय सदा मिलता रहा परन्तु जैसा गत सुप्रीम कौन्सिल में मिला वैसा कभी नहीं मिला। सज्जनो, गत कौंसिल में मिस्टर मेहता द्वारा सपादित कार्यों का सविस्तार निरूपण मैं नहीं करूँगा। पहिली बात तो यह है कि वे अभी तक हमारी आँखोंके सामने घूम रहे हैं और दूसरे वक्ता ने बम्बई की सार्वजनिक सभा में उनकी व्याख्या स्पष्टतया कर दी है, एक बात तब भी मैं अवश्य कहूँगा कि उन्होंने गत

मुबाहसों में सिद्ध कर दिया कि वे कौंसिल और दूसरी संस्थाओं में अंग्रेजों का मुकाबिला कर सकते हैं। जिन लोगों ने उन मुबाहसों को पढ़ा है वे मुझसे सहमत होंगे कि मिस्टर मेहता की दलीलों ने प्रत्यक्ष रूप में उन्हें निपुण तार्किक सिद्ध कर दिया है और वजटवाली स्पीच से मालूम होता है कि वे अपने सिद्धान्तके बड़े पक्के थे और उनकी वक्तृताओं में बड़ा मसाला भरा हुआ करता है। उस समय गवर्नमेंट की ओर से एक के बाद दूसरे मेम्बर मिस्टर मेहता को पछाड़ने के लिये उठे। फौजी सभासद सर चार्लस इलियट, सर एनटनी मैकडानेल, सर जेम्स वेस्टलेन्ड हरएक ने बारी बारीसे मिस्टर मेहता का सामना किया। यह इस बात को सिद्ध करता है कि जिस पक्ष को मिस्टर मेहता ने पकड़ा वह पक्ष गवर्नमेन्ट की दृष्टिमें कितना मजबूत था। सर जेम्स वेस्टलेंडने मिस्टर मेहता को पछाड़ने की कोशिश में अपने को लाञ्छित किया। जब मिस्टर मेहताने बड़े जोरोंसे सिविल सर्विस की बुराइयां कीं तो वे चिढ़ गये और खिसिया कर कहने लगे कि मिस्टर मेहता एक नवीन जोश कौंसिलमें पैदा कर रहे हैं उनपर कटु शब्दोंके प्रयोग का लाञ्छन लगाया। जब दोनों की वक्तृतायें छप गईं तो सर्व साधारण स्वयं देख सकते थे कि किसके वचन कठोर थे। जिस धीरतासे मिस्टर मेहता ने उस समय काम लिया उसकी प्रशंसा कलकत्ता के स्टेट्समेन ने भी मुक्तकंठ से की है। मुबाहसे भर में अपने को अपने विरोधियों का मुकाबिला करने वाला सिद्ध किया है। मद्रास समाचार पत्र के एक सम्वाददाता ने क्या ही खूब कहा है कि मिस्टर मेहताने दलील का उत्तर दलील में, झिड़क का जवाब झिड़क में, मजाक का मजाक में और हँसी का उत्तर हँसी में दिया। सज्जनों, हम यह सुनकर

यडा अहङ्कार है कि हमारे प्रतिनिधि ने इतनी सफलता प्राप्त की। हमें यह भी देखकर घमंड है कि हमारे मित्रों ने कलकत्ते में डब्लू सी बनर्जी की अध्यक्षता में कांग्रेस ने अपना सभा स्थल रखते हुए भी अपनी कृतज्ञता प्रगट करने के लिये उन्हें एक मानपत्र दिया। हममें से जो मिस्टर मेहता से परिचित हैं वे इस बातको जानते हैं कि वे इन मानपत्रों की कुछ भी पर्वाह नहीं करते। हम जानते हैं कि जिन कार्यों को उन्होंने सम्पादन किया है वे स्वय पुरस्कार रूप हैं। तब भी उनके प्रति इस समय हमारा कर्तव्य है और उस कर्तव्य की पूर्ति इसी प्रकार हो सकती है कि हम सभापति महोदय को इस बात का अधिकार दें कि वे हम लोगों की कृतज्ञता मिस्टर मेहता के सन्मुख उसी प्रकार से प्रकाशित करें जैसा इस प्रस्ताव में लिखा है।

विद्यार्थी और राजनीति।



(माननीय मि० गोखले ने बम्बई विद्यार्थी-भ्रातृमडल के सामने ६ अक्टूबर १९०६ को यह व्याख्यान दिया था —)

सज्जनो,

इस समय हमारे सामन अत्यत चिन्ताजनक और महत्व-पूर्ण समस्याओं में से एक समस्या यह है कि हम अपने नव युवकों को किस प्रकार ऐसी बुद्धिमत्तापूर्ण और देशभक्तिपूर्ण सलाह दें कि उनका जीवन उत्कृष्ट उद्देश्यों की पूर्ति में और मातृभूमि की सेवा के लिये घोर गम्भीर परिश्रम करने में बीते। एक ओर तो हमें चाहिये कि उन विशुद्ध आवेगों और उदार जोशों को, जो नवयुवकों के हृदय ही में उत्पन्न होते है, निर्बल न होने दें किन्तु ज्यों का त्यों प्रबल बनाये रक्खें। दूसरी ओर हमे चाहिये कि उनके मनमें सब बातों के उचित परिमाण में देखने का उत्तरदायित्व का, और देश की वास्तविक आवश्यकताओं को ठीक २ समझने का भाव उत्पन्न करें। यह दुहरा काम यों तो सदा ही और सर्वत्र ही कठिन होता है पर हमारे देश की वर्तमान अवस्था असाधारण विषम कठिनाइयों से परिपूर्ण है। हमारे चारों ओर ऐसी शक्तियां कार्य कर रही है जो हम सब से यही कहती हैं कि "अब न तो बैठने का, और न खड़े रहने का

किन्तु आगे बढने का समय है"। जिस हवा में हम सांस लेते हैं वह स्वयं परिवर्तन की अभिलाषा से भरी हुई है। पुराने विश्वास विध्वस हो रहे हैं। परिस्थिति के अनुसार विचारों मे नये २ परिवर्तन आवश्यक हो गये हैं। जब चारों ओर यह हलचल मच रही है जिसे लोग 'अशान्ति' के नाम से ठीक ही सम्बोधन करते हैं तब यह आशा नहीं की जा सकती थी कि हमारे विद्यार्थी अपने पुराने स्थान पर खडे रहेंगे जरा भी आगे न बढेंगे।

उनका आगे बढना तो साधारण बात है परन्तु जिस मार्ग पर उनमें से बहुत से लोग चल रहे हैं उस पर हमें अत्यन्त गम्भीरतापूर्वक ध्यान देना चाहिये और उसकी खूब कडी परीक्षा करनी चाहिये। यह तो एक साधारण स्वयसिद्ध बात है कि आज के विद्यार्थी कल के नागरिक होंगे। इसलिये जो विचार और आकांक्षाए उनके मन को निश्चयपूर्वक किसी ओर झुकावें वे देश के लिये अत्यन्त महत्वपूर्ण हैं। हम सबको गम्भीरतापूर्वक विचार करना चाहिये कि यह विचार और आकांक्षाए उनको अपने भविष्य दायित्वों के लिये कहा तक योग्य बना सकती हैं।

एक शिकायत जो इतनी पोच है कि उसपर विचार करने की बिलकुल आवश्यकता नहीं है बहुधा सुनने में आती है। लोग निन्दा के तौर पर कहते हैं कि भारतीय विद्यार्थी अपने उचित समय से पहिले ही राजनीति में अनुराग करने लगते हैं और इस स्थिति को मिटा देना परमावश्यक है। हम मानते हैं कि भारतीय विद्यार्थी बहुत जल्दी राजनैतिक प्रश्नों में दिलचस्पी लेने लगते हैं पर जो लोग इसको बुरा

समझते हैं और इसको मिटा देना आवश्यक या सम्भव समझते हैं वह यह भूल जाते हैं कि यह अवस्था इस देश की असाधारण राजनैतिक स्थिति का अवश्यभावी परिणाम है और जब तक राजनैतिक स्थिति ऐसी ही है तब तक यह अवस्था कभी मिट नहीं सकती। आत्मशासित जातियों को राजनीति क्षेत्र में देशभक्ति से ही नहीं किन्तु उत्तरदायित्व से भी काम लेना पड़ता है। वहाँ जिन नवयुवकों में देशभक्ति का भाव होता है पर दायित्व का भाव नहीं होता वह व्यावहारिक राजनीति से दूर रहते हैं। इसके विपरीत भारतीय विद्यार्थी के लिये राजनीति एक संग्राममात्र है जिसमें उसके देशभाई अपनी मातृभूमि का पक्ष लेकर विदेशी शासन के प्रतिनिधि विदेशी अफसरों से जूझ रहे हैं। यहाँ पर देश के शासन प्रबन्ध के सम्बन्ध में बड़ों के लिये भी उत्तरदायित्व के भाव के लिये कोई स्थान नहीं है। जब हमारे नवयुवकों के निग्रह के लिये दायित्व इत्यादि के कोई भाव ही नहीं हैं तो उनके समीप राजनीति केवल देशप्रेम की बात है और राजनीति में अनुराग देशानुराग ही है। विद्यार्थियों की सारी गम्भीरता, आत्ममर्यादा, वीरता और देशभक्ति का बराबर तकाजा है कि वह राजनीति से अर्थात् देश के मामलों से अनुराग रक्खें। स्वय इङ्गलिस्तान ने हमारे देश में वह विचार प्रचलित किये हैं जो हमें देशभक्ति, स्वतन्त्रता, स्वराज्य की महिमा और उपयोगिता बतलाते हैं और जो यह भी बतलाते हैं कि सब स्वराज्य प्राप्त जातियां गुलामी से सन्तुष्ट रहनेवाली जातियों को पूर्ण अपमान की दृष्टि से देखती हैं। हमारी वर्तमान राजनीति केवल यही है कि साधारण जनता मे इन विचारों का प्रचार करें और अपनी वर्तमान अवस्था को,

विचारों के अनुसार परिवर्तन करने का प्रयत्न करें। यह अवश्यम्भावी है कि देश की अत्यन्त भावुक आत्माओं पर इन विचारों का अत्यन्त अधिक प्रभाव पड़े।

दायित्व के पद प्राप्त करने से ही हमारी राजनैतिक सम्मतियों और निर्णयों में अधिक स्थिरता आ सकती है और हमारी देशभक्ति की चञ्चलता रुक सकती है जिन मामलों में, जैसे म्युनिसिपैलिटियों के मामलों में जनता को उत्तरदायित्व के अधिकार मिल चुके हैं उनसे विद्यार्थियों को उचित समय के पूर्व कोई अनुराग नहीं होता। आजकल तो हम शासन के कोरे समालोचक मात्र हैं, शासन के कार्य में हमारा कोई भाग नहीं है। पर जैसे २ यह अवस्था बदलेगी और प्रत्न शासन में हमें अधिकाधिक भाग मिलेगा तैसे तैसे हमारी राजनीति भावुकता की दशा से आगे बढ़कर दायित्व की अवस्था को पहुचेगी और राजनीति से विद्यार्थियों का वर्तमान असमयोचित अनुराग कम हो जायगा।

पर वर्तमान अवस्था में यह अवश्यम्भावी है कि वह अपने समय के पहिले ही राजनैतिक मामलों में दिलचस्पी लेने लगें, आप उन्हें किसी तरह रोक ही नहीं सकते। पर इसका यह अर्थ नहीं है कि वह चाहे जिस स्थान से और चाहे जिस प्रकार से राजनैतिक विचार ग्रहण कर लें। वरन् मेरा दृढ़ है कि वर्तमान समय की एक बड़ी भारी आवश्यकता है कि हमारे कालेजों में नवयुवकों की राजनैतिक शिक्षा का सुप्रबन्ध हो। राजनीति को और विशेषत सामयिक राजनीति को भयकर और कुछ अशों में, निषिद्ध विषय मानने की वर्तमान नीति का परिणाम यह हुआ है कि विद्या'

थियों को महत्वपूर्ण प्रश्नों पर सम्मति स्थिर करने में अपने शिक्षकों से कुछ सहायता नहीं मिलती। इस विषम स्थिति में नि सहाय होकर उनको जैसे तैसे सम्मति स्थिर करनी पड़ती है। इस विषय म उनके जीवन के नाजुक समय में उनकी ओर हमारा जो कर्तव्य है उसका पालन हम नहीं कर रहे ह। हमारी इस कर्तव्यविमुखता के परिणाम बड़े घोर और महत्वपूर्ण हुए हैं और होने ही चाहिये।

मुझे बड़ी प्रसन्नता है कि भारतीय विद्यार्थियों और भारतीय आकांक्षाओं के सर्वोत्तम मित्र और हितैषी, दिल्ली के पादरी मि० एन्ड्रूज ने हाल में समाचारपत्रों को एक पत्र भेज कर मेरे विचारों का समर्थन किया है। वह कहते हैं कि "आजकल के भारतीय विद्यार्थी की राजनीति का तीन चौथाई भाग ऐतिहासिक और आर्थिक प्रश्नों का बना हुआ है। इतिहास और अर्थशास्त्र के अध्यापकों का कर्तव्य है कि अपने विषय पढ़ाते समय इन प्रश्नों को सहानुभूति और बुद्धिमानी से समझावें। इस तरह कालेजों म ही अच्छी राजनैतिक सम्मतिया बन जायँगी।" इसम सन्देह नहीं कि भिन्न भिन्न अध्यापकों की सम्मतिया भिन्न भिन्न होंगी पर वास्तविक महत्व की बात यह नहीं ह कि विद्यार्थियों के सामने सी सम्मतिया पेश की जाती हैं किन्तु यह है कि उनके नैतिक भावों को शिक्षा मिले और उनको ... पर सावधानी और दीर्घदृष्टि से विचार करने की यही हमारा मुख्य उद्देश्य है और राजनैतिक शिक्षा मुख्य लाभ है। विद्यार्थियों के लिये राजनीति असम्भावना यही सिद्ध करती है ... नैतिक शिक्षा परमावश्यक है। मेरी ...

विद्यार्थियों को और विशेषत कालेज के विद्यार्थियों को राजनैतिक मामलों का यथार्थ ज्ञान प्राप्त करने की और उनपर ठीक सम्मति स्थिर करने की सब सुविधाएं होनी चाहिये। उनको इन सब मामलों पर कालेज मे स्वतत्रतापूर्वक वादविवाद करने का प्रोत्साहन देना चाहिये। सार्वजनिक पुरुषों को जिनकी सम्मति आदर के योग्य हैं वादविवादों में सम्मिलित होने के लिये कभी कभी बुलाना चाहिये। राजनैतिक विषयों पर व्याख्यान सुनने के लिये और दर्शक की हैसियत से राजनैतिक सभाओं म जाकर लाभ उठाने के लिये उनको पूरी स्वतन्त्रता होनी चाहिये।

यह तो हुई राजनैतिक शिक्षा की बात पर मेरी सम्मति है कि विद्यार्थियों को राजनैतिक आन्दोलन में व्यावहारिक भाग न लेना चाहिये। राजनैतिक आन्दोलन के दो भाग हैं; एक का सम्बन्ध जनता से है और दूसरे का सरकार से। जनता की ओर राजनैतिक आन्दोलन का उद्देश्य विस्तीर्ण और सुव्यवस्थित सार्वजनिक सम्मति और भाव उत्पन्न करना है। सरकार की ओर उसका उद्देश्य उस सम्मति या भाव के बल से शासन में वाछित परिवर्तन कराना है। हर दशा में यह अत्यन्त उत्तरदायित्व पूर्ण कार्य है और विद्यार्थी लोग जिनकी बुद्धि अपरिपक्व होती हैं इस कार्य म भाग लेने के अयोग्य हैं। राजनैतिक आन्दोलन में विद्यार्थियों के भाग लेने से सार्वजनिक जीवन की शालीनता और उत्तरदायित्व कम हो जाता है। और उसकी सच्ची उपयोगिता में भी अन्तर आ जाता है। इससे विद्यार्थियों के मन अहितकर आवेश से भर जाते हैं और बहुधा कठोर पक्षपात का भाव उत्पन्न हो जाता है जिससे उनके अध्ययन में बाधा पड़ती है और जो उनकी मानसिक

और नैतिक वृद्धि के लिये भी हानिकर है। कालेज के जीवन का वास्तविक कार्य यह है कि ज्ञानोपार्जन और चरित्रसगठन के द्वारा भविष्य जीवन के कर्तव्यों के लिये तैयारी की जाय। जो चार या पाच वर्ष अधिकाश नवयुवक कालेज मे बिताते है वह इस कार्य के लिये ही कम है। मुझे निश्चय है कि नव युवकों से यह कहना बेजा न होगा कि "जब तक आप अपना अध्ययन समाप्त न कर लें और देश के सार्वजनिक जीवन में अपना स्थान न ग्रहण कर लें तब तक जरा धैर्य और आत्म निग्रह से काम लीजिये और राजनीति मे कोई व्यावहारिक भाग न लीजिये' ।

मैं समझता हूँ कि अब हमारी ऐसी अवस्था हो गई है कि हमें इस मामले मे दृढतापूर्वक अपने कर्तव्य का सामना करना चाहिये। सब को विदित है कि हाल मे देश मे एक नये राजनैतिक पथ का प्रचार हुआ है जिसने समस्त भारत के नवयुवकों के मन पर प्रबल अधिकार जमा लिया है । नये पथ की बहुत सी शिक्षाए तो सवमान्य हैं, जैसे कि देशानुराग हमारे जीवन का मूलमंत्र होना चाहिये, देश के लिये स्वार्थ त्याग करने में हमें परम आनन्द मनाना चाहियें जहा तक हो सके अपने पैरों खडे होना चाहिये, दूसरों का मुह न ताकना चाहिये। इन सिद्धान्तों का उपदेश पहिले भी दिया गया था पर नये पथ ने सैकडों सभाओं और सैकडों पत्रों के द्वारा ऐसे तीव्र आवेश के साथ उपदेश दिया कि चारों तरफ जोश फैल गया। पर जहा नये पथ ने यह बहुमूल्य कार्य किया वहा साथ साथ देश में बहुत सी अहितकर राजनैतिक शिक्षा भी फैलाई। पहिले पहिल इस शिक्षा का प्रयोग देश के पुराने सार्वजनिक जीवन की जड खादने के लिये किया गया ।

जब एक बार एक कार्य के लिये उसका प्रयोग आरम्भ हो गया तब धीरे २ सर्वत्र ही उसका प्रयोग होने लगा । नई शिक्षा के प्रचारकों की प्रधान भ्रान्ति यह थी कि वह देश के पूर्व इतिहास की उपेक्षा करते थे और विदेशी शासन के अस्तित्व को सब बड़े २ दुर्गों की जड़ मानते थे हमारे पुराने सार्वजनिक जीवन, सार्वजनिक आन्दोलन का मूलमन्त्र यह था कि हम अंगरेजी शासन को स्पष्ट और राजभक्तिपूर्वक स्वीकार करते थे क्योंकि हम जानते थे कि देश के भिन्न २ समुदायों को धीरे २ एक राष्ट्र में परिणत करने के लिये और भिन्न २ क्षेत्रों में बराबर उन्नति करने के लिये जिस शान्ति और सुव्यवस्था की आवश्यता है वह अंगरेजी शासन की बदौलत ही मिल सकती है। पर नये पथ ने घोषणा की कि अंगरेजी शासन में विश्वास करना निरा लड़कपन है और उसके छत्र के नीचे वास्तविक उन्नति की आशा करना दुराशामात्र है। अपने दुःखों और शिकायतों के विषय में अधिकारियों के पास प्रार्थनापत्र भेजने का स्वत्व इङ्गलिस्तान के निवासियों ने बड़े सग्राम के बाद प्राप्त किया था पर नये पथ ने इसको कोरी भिखमगी बताया और इसकी घोर निन्दा की। उसने कहा कि हमें बायकाट से काम लेना चाहिये, सारे देश में बायकाट का प्रचार होने से हमारी सारी अभिलाषाएँ पूरी हो जायगी।

यह शिक्षा नई थी, देखने में सच्च मालूम होती थी, चित्ताकर्षक थी और स्वराज्य प्राप्त करने का सरल मार्ग बतलाने का दावा करती थी, इसलिये कुछ दिन बड़ी तेजी से इसका प्रचार हुआ। माना कि देश में अंङ्गरेजी सरकार मौजूद थी पर नये पथ ने कहा कि हम इसकी पूर्ण उपेक्षा करेंगे, इस

के अस्तित्व की ओर कुछ ध्यान ही न देंगे और आशा की कि बदले में सरकार हमारी उपेक्षा करेगी, हमारे अस्तित्व की ओर ध्यान न देगी। लार्ड कर्जन के शासन के अन्तिम वर्षों में सर्वसाधारण के हृदय मंडल में जो निराशा रूपी अन्धकार छा गया था उससे नई शिक्षा के प्रचार में बड़ी सहायता मिली। वर्षों आन्दोलन के पश्चात् भी भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस को राजनैतिक सुधार कराने मे, कम से कम ऊपर से देखने में जो असफलता हुई थी उससे भी नई शिक्षा के फैलाने में बड़ी आसानी हुई। सर्वसाधारण में राजनैतिक बुद्धि की न्यूनता तीसरा कारण था। राजनैतिक मामलों मे, और सच पूछिये तो सब ही सार्वजनिक मामलों में हमारे बहुत कम आदमी स्वयं विचार करने का कष्ट उठाते हैं। जैसे दूसरों के बनाये हुये कपड़े पहिनना आसान है वैसे ही दूसरों की स्थिर की हुई सम्मति ग्रहण करना भी आसान है। नये पथ के अधिकांश अनुयायी विद्यार्थी थे। पथ के बहुत से वयोवृद्ध अनुयायियो का तो भ्रम अब दूर हो गया है और वह अपने कार्यक्रम की असम्भवता को समझ गये हैं पर मुझे डर है कि विद्यार्थीगण के मन पर नई शिक्षा का प्रभाव पूर्ववत् बना हुआ है। इसीलिये आज मैंने इस विषय पर कुछ कहना अपना कर्तव्य समझा है।

मेरा खयाल है कि हमारे उन् सार्वजनिक कार्यकर्ताओं ने जो नये पंथ से होनेवाली हानि को अच्छी तरह समझते हैं अभी तक इस सम्बन्ध में विद्यार्थियों की ओर अपने कर्तव्य का पालन नहीं किया। उनकी अकार्यशीलता का कारण निस्सन्देह उनकी यह समझ है कि मामला बड़ा नाजुक है पर परिणाम उतना ही शोचनीय हुआ है जितना कि ज—

भूल कर कर्तव्यविमुखता करने से होता। मेरा विचार है कि लोग हमारे विषय में चाहे कुछ भी क्यों न समझें, अब हमारा धर्म है कि सब बातें साफ २ कहें। देश की ओर हमारा जो कर्तव्य है, नवयुवकों की ओर हमारा जो कर्तव्य है उसका यही तकाजा है। जैसा कि मैं पहिले कह चुका हूं, नये पंथ की स्वावलम्बन विषयक शिक्षा सर्वमान्य है। पर सरकार के प्रति हमारा क्या भाव होना चाहिये ? इस विषय में नई शिक्षा का प्रतिवाद करना आवश्यक है। जैसा कि मेरे मित्र बाबू भूपेन्द्रनाथ वसु ने उस दिन कलकत्ते में कहा था, आप जिस प्रकार सूर्य की उपेक्षा नहीं कर सकते उसी प्रकार सरकार की उपेक्षा भी नहीं कर सकते। दूसरे, यदि आप सरकार की उपेक्षा करना चाहते हैं तो क्या सरकार भी आपकी उपेक्षा कर जायगी ? क्या वह आप से कुछ न बोलेगी ? पर सच बात तो यह है कि आपकी इस तरह की बेसिर पैर की बातचीत से उत्तेजित होकर सरकार कठोर दमननीति प्रयोग करती है जिससे देश की सारी कार्यशीलता को जोर का धक्का लगता है। नये मत के कुछ नेता तो इतने आगे बढ़ गये हैं कि वह कहते हैं कि हमको पूर्ण स्वाधीनता के लिये उद्योग करना चाहिये। यदि कोई पुरुष घर पर बैठे २ स्वप्न देखना ही कर्तव्य मानले और अन्य स्वप्नों के साथ देश के लिये पूर्ण स्वाधीनता एवं सब प्रकार की पूर्णता के स्वप्न देखे तो मुझे कुछ नहीं कहना है। पर यदि वह उपदेश कि हमें पूर्ण स्वाधीनता प्राप्त करने के उद्योग में लग जाना चाहिये तो दूसरी बात है। इस दशा में हमारा कर्त्तव्य होगा कि हम अपनी पूरी शक्ति से उसका विरोध करें। आप अपने चारों ओर जरा दृष्टि डाल कर देखिये तो आपको स्वयं मालूम हो

जायगा कि पूर्ण स्वाधीनता का आन्दोलन हमको कैसी आपत्ति में डाल देगा । और २ किन्तु शान्तिपूर्वक उन्नति करने के हमारे वर्तमान अवसरों और सुभीतों को वह नाश कर देगा या अनिश्चित काल तक स्थगित कर देगा ।

नये पथ की शिक्षा से हमारे जोशीले और भोले भाले विद्यार्थियों को ही सबसे अधिक हानि पहुंची है और पहुंचेगी । यदि हमारे में देश में कोई नवयुवकों से स्वाधीनता की बात चीत करे तो उनके मन में बहुत करके दो ही विचार स्पष्टतापूर्वक उत्पन्न होंगे, एक तो यह कि विदेशियों को देश से कैसे निकालें और दूसरा यह कि कितनी जल्दी निकाल दें । इन दो महान् प्रश्नों के सामने और सब बातें अविचारणीय प्रतीत होंगी । सब जानते हैं कि ऐसे विचारों के वशीभूत हो जाने से गम्भीर जोशीली तबियत के आदमी कैसी जोखिम में जा गिरेंगे । सब से बुरी बात तो यह है कि ऐसे विचारों का आदमी जितना ही अधिक गम्भीर, जोशीला और कार्यशील होगा वह उतनी ही बड़ी आपत्ति में फसेगा । पूर्ण स्वाधीनता के पोषक कभी २ कहते हैं कि हम अपने उद्देश्य की सिद्धि के लिये केवल शान्तिपूर्ण उपायों का अवलम्बन करेंगे । सम्भव है कि वह यही चाहते हों पर सरकार तो अपने शासन का विध्वंस देखना नहीं चाहती और उनको शान्तिपूर्वक उद्योग न करने देगी ।

मैं आप के सामने जो विचार प्रस्तुत कर रहा हूं वह बड़े ही साधारण हैं और सब पर प्रकट हैं । ऐसी बातें लिये मानों क्षमा प्रार्थना करनी चाहिये । आज इन याद दिलाना आवश्यक हो गया है, इससे यही

कि हमारे देश में लोगों की राजनैतिक बुद्धि कितनी जल्दी भ्रम में पड़ सकती है। हमारे नवयुवकों को अच्छी तरह समझ लेना चाहिये कि अभी बहुत दिन तक हमारे देश में अङ्गरेजी शासन रहेगा और कोई शासन स्थापित नहीं हो सकता। उसको नष्ट करने की हमारी सारी चेष्टायें उल्टा हमें ही हानि पहुचायेंगी। दूसरे यदि वह अपनी न्यायबुद्धि से काम लेना चाहें तो उन्हें स्वीकार करना होगा कि यद्यपि इस शासन में विदेशी शासन के अवश्यभावी दोष वर्तमान है तथापि यह देश की उन्नति का एक बड़ा साधन सिद्ध हुआ है इसके स्थिर रहने से वह शान्ति और व्यवस्था भी स्थिर रहेगी जो देश की वर्तमान दशा में, केवल इसी पर अवलम्बित है और जो हमारे सारे हितों के साधन के लिये, हमारी बढ़ती हुई राष्ट्रीयता के लिये, परमावश्यक है। शासक ने वचन दिया है कि हम आपके साथ समानता का बर्ताव करेंगे। हमें आशा है कि धीरे धीरे हमको समानता का पद मिल जायगा। हमने वर्तमान शासन को स्वीकार कर लिया है और राजभक्ति का वचन दिया है। स्वीकृति और राजभक्ति के बल पर हमें कुछ अधिकार मिल गये हैं और आगे चलकर और भी अवश्यमेव मिलेंगे। स्वार्थ और सत्यता दोनों का ही तकाजा है कि हम इस शासन को नाश करने के विचारों को मन में स्थान न दें और इसकी ओर अपना व्यवहार राज भक्तिपूर्ण रक्खें।

राजभक्ति एक कार्यशील भाव है। इसका अर्थ केवल यही नहीं है कि हम राजा या सरकार से शत्रुता न करें किन्तु यह भी है कि जब उसपर कोई आपत्ति आवे तब उसकी सहायता

एक बात स्पष्ट है। वह यह है कि हमारा धर्म है और अधिकार है कि हम इसी समानता की प्राप्ति के मार्गपर अग्रसर रहें और किसी अन्य मार्ग का चिन्तन न करें। हम इस मार्ग के सिरे पर, अपने वर्तमान स्थान से बहुत दूरी पर, एक भवन की कल्पना कर सकते हैं जिसमें फरासीसी और डच लोग (हालेंड देश के निवासी) अंगरेजों के साथ बैठते हैं। उस भवन तक पहुचने का बल हम कभी प्राप्त करेंगे या नहीं? यदि हम वहा तक पहुच भी गये तो भवन के भीतर प्रवेश करने पावेंगे या नहीं? हमारी यात्रा किसी और मार्ग में तो समाप्त न हो जायगी? इन प्रश्नों का उत्तर भविष्य ही देगा। घोर परिश्रम के बाद अपना चित्त प्रफुल्लित करने के लिये या वहा तक पहुचने के लिये आवश्यक बल का अनुमान करने के लिये हम चाहे समय २ पर उस भवन की ओर (समानता, स्वतन्त्रता के भवन की ओर) देख लिया करें पर "दूरवर्ती भविष्य में हमारा भाग्य क्या होगा"? इस विषय पर अत्याधिक चिन्ता करना न तो बुद्धिमानी है और न आवश्यक है।

मैं कह चुका हूं कि हमको अङ्गरेजों के साथ दो प्रकार की समानता प्राप्त करनी है—एक तो व्यक्तिगत और दूसरी शासन सम्बन्धी। यों तो पहिले प्रकार की समानता की प्राप्ति कठिन है पर उतनी कठिन नहीं है जितनी कठिन दूसरी प्रकार की समानता की प्राप्ति है। इस समय भी देश में बहुत से भारतवासी हैं जो योग्यता और चरित्रबल में अंगरेजों से किसी तरह कम नहीं हैं। पर साम्राज्य के दूसरे प्रदेशों के समान जनसत्तात्मक स्वराज्य की प्राप्ति जनसाधारण की आवश्यक योग्यता और चरित्रबल पर निर्भर है क्योंकि जनता

के औसत बल के आधार पर ही स्वराज्य का भवन स्थिर रह सकता है। हमें शोकपूर्वक स्वीकार करना होगा कि आज हमारे देश के जनसमूह का योग्यताबल और चरित्रबल का औसत और देशों की अपेक्षा बहुत ही कम है। इसलिये हमारे सामने सबसे आवश्यक काम यह है कि हम इस औसत बल को बढ़ाने का प्रयत्न करें ताकि वह फरासीसी और डच औसतों की भांति अंगरेजी औसत के बराबर हो जाय। इस क्षेत्र में जोशीले से जोशीले देशभक्त के करने के लिये काफी काम है। सच तो यह है कि जिधर देखिये उधर ही यह दृश्य दिखाई देता है कि करने के लिये काम तो बहुत है पर सच्चे कर्मवीर बहुत कम हैं। पतित जातियों को उठाकर शेष जनता के बराबर बिठाना, प्रत्येक बालक-बालिका के लिये प्रारम्भिक शिक्षा, समवाय समितियों का स्थापन, खेती और शिल्प की शिक्षा का प्रचार, देश की आर्थिक दशा का सुधार, उच्चशिक्षा, औद्योगिक उन्नति, देश के भिन्न भिन्न समुदायों में अधिक घनिष्ठ सम्बन्धों की स्थापना—यह एवं अन्य कार्य हमारे सामने हैं और प्रत्येक कार्य के लिये दीक्षित कर्मचारियों की सेना की आवश्यकता है। क्या इस आवश्यकता की पूर्ति न की जायगी? प्रतिवर्ष जो हजारों नवयुवक हमारे विश्वविद्यालयों से निकलते हैं क्या उनमें थोड़े से भी ऐसे नहीं हैं जो उच्च आध्यात्मिक भावों से प्रेरित हों और उन भावों के अनुसार स्वार्थहीन कर्म करें? यह हमारी मातृभूमि का कार्य है। यह सारी मनुष्य जाति का कार्य है। जिस जागृति की हम बातचीत किया करते हैं और जिस पर हम सब का प्रफुल्लित होना उचित ही है यदि उसके

बाद भी यह काम कार्यकर्त्ताओं के अभाव के कारण अ
हो रह गया तो समझना होगा कि भारतमाता को उ
पुत्रों से सच्ची सेवा का उपहार पाने के लिये अभी १
एक पीढ़ी तक प्रतीक्षा करनी होगी ।-